मुस्लिम संतों के चरित

१—जाफ़र सादिक़

तपस्वी जाफर सादिक़ इस्लाम-धर्म के प्रचारक हज़रत पैग़म्बर मुहम्मद साहब के दौहित्र थे। वे संतसमाज के शिरोमणि थे। लोगों की उन में अत्यन्त श्रद्धा थी। वे धर्म-मार्ग के सच्चे नेता, एकेश्वरवादियों के गुरु, इस्लामी संप्रदाय के आचार्य, प्रभु-भक्तों में अग्रगण्य, तपस्वी, प्रेमी और वैरागी थे, साथ ही साथ वे तत्त्व-शास्त्र में, शास्त्र का उत्तम विवेचन करने में और कुरान के गूढ़ तत्त्व के समझने में अद्वितीय थे।

उनके समय में अरब का ख़लीफ़ा मंसूर था। उनकी ख्याति से ईर्षालु होकर मंसूर ने उनका वध करने के लिए उन्हें पकड़वा मँगाया। मन्त्रियों ने बहुत कुछ समझाया कि ऐसे संसार-त्यागी, तपस्वी महात्मा पर हाथ उठाना घोर पाप होगा; किन्तु उसने एक न मानी। ख़लीफा की आज्ञा थी कि सादिक़ के आने पर मैं अपना मुकुट उतारूँगा, ठीक उसी समय वधिक उसका शिरच्छेद कर दे।

तपस्वी सादिक़ आए। मंसूर ने उनका आदर-पूर्वक स्वागत किया। उन्हें उच्चासन दिया। स्वयं नम्रता-पूर्वक वह सामने बैठा। वधिक

ख़लीफ़ा का यह परिवर्तन देखकर चकित था। मंसूर ने तपस्वी सादिक़ से पूछा—मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?

सादिक़ बोले—बस यही कि फिर कभी मुझे बुलाकर मेरी तपस्या में विघ्न न डालना।

ख़लीफ़ा ने उनकी बात स्वीकार कर उन्हें आदर-पूर्वक विदा किया।

ख़लीफ़ा के इस परिवर्तन का कारण प्राचीन लेखक तो यह बताते हैं कि ख़लीफ़ा के साथ एक महाभयानक सर्प था, जिसे देखकर वह ज्ञान-शून्य और मूर्च्छित हो गया था। चाहे जो हो महात्मा जाफ़र सादिक़ का तप एक कुपथ-गामी को सत्पथ पर लाने के लिये अवश्य समर्थ था।

सादिक़ बहुत ही विनम्र थे। तपस्वी दाऊद ताई ने एक बार उनसे प्रार्थना की—मेरा अन्तःकरण वासनाओं से मलिन हो रहा है; कृपाकर मुझे उपदेश दें।

उत्तर में सादिक बोले—आप सरीखे वैरागी को मैं उपदेश दूँ ? मुझे तो स्वयं चिन्ता है कि क़यामत के दिन हज़रत मुहम्मद साहब मेरी ओर संकेत करके कहेंगे कि तूने मेरा अनुकरण क्यों नहीं किया ? वंश-परंपरा के कारण ही कोई उपदेशक नहीं बन सकता। उसके लिए चाहिए सदाचार-परायणता।

ऐसा उत्तर सुनकर दाऊद की आँखों में आँसू भर आए। वे बोले—स्वयं पैग़म्बर साहब के एक वंशज, महामान्य तपस्वी जब इतने अभिमान-रहित हैं तब मेरे जैसा तुच्छ प्राणी अपने आचरण का क्या अभिमान करे ?

एक दिन सादिक़ ने अपने बन्धुओं से कहा—"आओ, हम लोग परस्पर ऐसा निश्चय करें कि, हममें से जो क़यामत के दिन मुक्ति प्राप्त करे, वह परमेश्वर से अपने अन्य साथियों के लिए क्षमा प्रार्थना करे। यह सुनकर दूसरे मित्र बोले—हमारे लिए आपको क्षमा प्रार्थना करने की आवश्यकता ? क़यामत के दिन आपके नाना तो

संसार के समस्त प्राणियों के लिए क्षमा-याचना करने वाले हैं; वे आपको तो भूलेंगे ही कैसे ? उत्तर में सादिक़ ने कहा—मैं तो अपने चरित्र के कारण, क़यामत के दिन, अपने नाना की ओर आँख उठाकर देखने में भी शरमाऊँगा।

एक दिन किसी व्यक्ति ने सादिक़ को उनके उच्च वंश का स्मरण दिलाकर स्वाभिमान-पूर्वक रहने को कहा। उत्तर में उन्होंने कहा—इसमें अभिमान कैसा ? यह तो अहोभाग्य मात्र है। जब मनुष्य अभिमान त्याग देता है तो उसमें ईश्वरीय प्रकाश अवतरित होता है। मनुष्य को अपने कुल-जाति की प्रतिष्ठा और अभिमान ईश्वर की महिमा में लय कर देना चाहिए।

एक आदमी की रुपयों की थैली चोरी गई। उसने भ्रम-वश चोर समझकर सादिक़ को पकड़ लिया। सादिक़ ने पूछा—तुम्हारी थैली में कितने रुपये थे ?

उसने बताया—एक हज़ार। सादिक़ ने अपने पास से उसे एक हज़ार रुपये दे दिये। कुछ समय बाद असली चोर पकड़ा गया, तब तो वह व्यक्ति सादिक के रुपये लौटाने के लिए दौड़ा आया।

सादिक़ ने उससे कहा—दी हुई वस्तु मैं वापस नहीं लेसकता।

सादिक के महान् व्यक्तित्व का परिचय पाकर वह व्यक्ति अपने पूर्वकृत्य पर पछताने लगा।

एक दिन एक व्यक्ति ने आकर तपस्वी सादिक से कहा—मैं ईश्वर का दर्शन करना चाहता हूँ।

सादिक़ बोले—परमेश्वर ने कहा है—"मैं दिखाई नहीं पड़ूँगा।" क्या इसे तुम भूल गये ? बहुत समझाने पर भी जब वह व्यक्ति नहीं माना तो सादिक़ ने उसे हाथ-पाँव बँधवाकर नदी में डलवा दिया। थोड़ी देर पानी में रखवाकर उसे बाहर निकलवा लिया। उस व्यक्ति ने समझा, यह महात्मा कैसा ? यह तो दलील करने पर ही ऐसी सज़ा

देता है। डर के मारे वह आजिज़ी करने लगा; किन्तु सादिक़ ने उसे फिर पानी में डुबवाया। बाहर निकलने पर उसने फिर गिड़गिड़ाकर क्षमा प्रार्थना की। अंत में जब वह ख़ूब गहरे पानी में डुबाया गया तो सर्वथा निराश होगया। घोर निराशा में उसे एक ईश्वर ही सहायक सूझा। प्रभु का नाम लेकर वह प्रार्थना करने लगा। सादिक़ ने उसे बाहर निकलवाकर पूछा—क्यों, ईश्वर को देखा?

उसने उत्तर दिया—जब तक मैंने दूसरे का आश्रय ले रखा था तब तक बीच में एक आवरण था; किन्तु जब एक उसी ईश्वर का आश्रय समझकर मैं उसकी शरण में गया और उसके लिए व्याकुल होगया तो मेरे हृदय का द्वार खुल गया और मुझे हृदय में प्रभु के दर्शन हुए, मन की अशांति दूर होगई।

सादिक़ बोले—ठीक है, जब तक तुम मुझे पुकारते थे, तुम मिथ्यावादी थे। अब तुम्हारे हृदय के द्वार उन्मुक्त होगए हैं। अब इन्हें बंद न होने देने की सावधानी रखना। मनुष्य को और दूसरे सब आश्रय छोड़कर एक ईश्वर का आश्रय लेना चाहिए।

उपदेश-वचन

१—जिस पाप के आरंभ में ईश्वर का भय और अंत में ईश्वर से क्षमा-याचना होती है, वह पाप भी साधक को ईश्वर के समीप ले जाता है; किन्तु जिस तपश्चर्या के आरंभ में अहंभाव और अंत में अभिमान होता है, वह तप भी तपस्वी को ईश्वर से दूर ले जाता है।

२—अहंकारी साधक को 'साधक' नहीं कहा जा सकता। वह तो महा अपराधी है, परन्तु प्रभु की प्रार्थना करने वाला एक पापी भी 'साधक' है।

३—सहनशील ऋषि और कृतज्ञ धनवान में श्रेष्ठ कौन? सहनशील ऋषि। धनवान चाहे जितना भला हो, पर उसका मन लक्ष्मी

में लिप्त रहता है; किंतु एक ऋषि का हृदय तो लगा रहता है अपने प्रभु में!

४—विना पश्चात्ताप के सच्ची साधना का आरंभ नहीं होता। इसीलिए ईश्वर-साधना का पूर्व अंग है पश्चात्ताप।

५—ईश्वर-स्मरण के समय तो पश्चात्ताप के विचारों को भी दूर कर देना चाहिए। यही नहीं, ईश्वर-स्मरण के समय दूसरे सब विचारों और पदार्थों को दूर कर देना चाहिए जिससे सब इष्ट वस्तुओं का स्थान एक ईश्वर ग्रहण कर ले।

६—ईश्वर ने कहा है—मैं अपनी स्वाभाविक करुणा से मनुष्य को उसकी इच्छा से भी विशेष देता हूँ।

७—जो मनुष्य जीवन-निर्वाह के लिए नीति-पूर्वक व्यवहार करता है, वह भी ईश्वर की महिमा को समझता है। परन्तु, जो मनुष्य ईश्वर के निमित्त ही जीवन-निर्वाह करता है वह तो ईश्वर को प्राप्त करता है।

८—अमावस्या के घोर अंधकार में काले पत्थर पर बैठी चींटी की भाँति ईश्वर मानव-हृदय में गूढ़-रूप से विद्यमान है।

९—जिस समय लोग मुझे 'उन्मत्त' और 'मस्त' कहकर मेरी निंदा करेंगे तभी मेरे मन में गूढ तत्त्व-ज्ञान का उदय होगा।

१०—ऐसे चार प्रकार के मनुष्यों से सचेत होकर रहना—(१) मिथ्याभाषी—उसकी संगति से ठगाना होगा, (२) मूर्ख—शुभेच्छु होने पर भी उससे अहित ही होगा, (३) कृपण—अपने स्वार्थ के लिए वह दूसरे को अवश्य हानि पहुँचायेगा, (४) नीच—आपत्ति के समय दूसरे का नाश करेगा।



२—आविस

तपस्वी आविस करणी महापुरुष मुहम्मद पैग़म्बर के समकालीन थे। वे 'करण' नामक देश के निवासी थे। हज़रत मुहम्मद पैग़म्बर से उनका प्रत्यक्ष मिलाप नहीं हुआ था; तथापि दोनों का पारस्परिक परिचय था और दोनों के चरित्रों में बहुत समानता थी। तपस्वी आविसकरणी को एकान्त-वास प्रिय था। उनके कुटुम्ब में एकमात्र उनकी वृद्धा, अंधी, धर्म-परायण माता जीवित थीं। आविस-करणी ऊँट चराकर अपना और अपनी माता का निर्वाह करते थे। हज़रत मुहम्मद को आविस के वैराग्य व धर्म-श्रद्धा पर अपार प्रीति थी। पैग़म्बर साहब ने अपने धर्म-प्रचारक साथी उमर तथा अली को आज्ञा दी कि वे एक बार आविस-करणी से मिलकर, उन्हें उनका सलाम कहें और अपने सम्प्रदाय का प्रचार करने के लिए उनसे निवेदन करें।

हज़रत पैग़म्बर के अवसान-काल उपस्थित होने पर उन्होंने अपने पवित्र वैराग्य-वस्त्र आविस-करणी को देने के लिए कहा था। पैग़म्बर के परलोक-गमन के पश्चात् उमर ने कुफ़ा शहर में आकर खुत्बा (एक प्रकार की प्रभु-प्रार्थना) पढने के बाद, एकत्रित जन-समुदाय से पूछा—तुम लोगों में से कोई करण का निवासी है? कुछ लोगों के हाँ करने पर उमर ने उनसे आविस का हाल-चाल पूछा। उन्होंने कहा—हाँ, हम लोग आविस को जानते हैं, वह तो उन्मत्त होरहा है। उन्हीं से उमर को मालूम हुआ कि आविस सरणा के जङ्गल में ऊँट चराया करते हैं। दिन भर में एक बार सूखी रोटी खाते हैं, गाँव में आते भी नहीं, किसी की संगति नहीं करते, सुख-दुःख की उन्हें चिन्ता नहीं, जब लोग हँसते हैं, तब वह रोते हैं और जब लोग रोते हैं तब वह हँसते हैं।

यह जानकर उमर और अली उनसे मिलने के लिए जङ्गल में गए। आविस नमाज़ पढ रहे थे। आगन्तुकों को देखकर उन्होंने नमाज़

समाप्त कर, उनका स्वागत किया। परस्पर नमस्कार के बाद आगन्तुकों ने जब उनका नाम पूछा तो उन्होंने अपना नाम 'अब्दुल्ला' अर्थात् परमात्मा का दास, बताया। इसपर उमर ने कहा—ईश्वर के तो हम सभी दास हैं, पर आपका नाम तो आविस है न ?

"हाँ" उत्तर मिलने पर उमर ने उनका दाहिना हाथ अपने हाथ में लेकर देखा। उसमें सफेद चिह्न पड़े हुए थे। इन्हीं चिह्नों की पहचान हज़रत पैग़म्बर ने उन्हें बतलाई थी। महापुरुष के इस हाथ को चूमकर उमर ने विनम्रतापूर्वक पैग़म्बर का सलाम कहकर वैराग्य वस्त्र उनको भेंट किये। साथ ही, उसने अपने सम्प्रदाय को आशीर्वाद देने के पैग़म्बर के आग्रह को कह सुनाया। जिसके उत्तर में साधु-स्वभाव आविस ने कहा था—भाई, जिस पर स्वयं पैग़म्बर ने इतनी कृपा प्रदर्शित की है, वह और ही कोई व्यक्ति होगा। मैं तो एक तुच्छ प्राणी हूँ और इन वस्त्रों को तो मैं तभी स्वीकार कर सकता हूँ जब समस्त इस्लामी भाई इन्हें दें।

वार्त्तालाप में उमर ने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया कि उन्होंने पैग़म्बर साहब के एक बार भी दर्शन नहीं किए। आविस ने पूछा—आप तो पैग़म्बर साहब के सखा थे? जिस दिन शत्रुओं ने उनके दाँत तोड़ डाले थे उसी दिन आपने अपने दाँत भी क्यों नहीं तोड़ डाले? इतना कहकर आविस ने अपना दंतविहीन मुख खोलकर उन्हें दिखाया। और वे फिर बोले—मैंने पैगम्बर साहब के स्थूल-दृष्टि से तो दर्शन नहीं किये; किन्तु उनके दाँतों की-सी ही दशा मैंने अपने दाँतों की की है। मन की दुर्बलता के कारण एक साथ तो नहीं, पर एक-एक करके मैंने भी अपने सब दाँत तोड़ लिए हैं।

पैग़म्बर के प्रति आविस की ऐसी भक्ति देखकर वे दोनों चकित व अपने लिए लज्जित से होगए। उनको विश्वास होगया कि इस महापुरुष से वे अभी बहुत कुछ सीख सकते हैं। उन्होंने निवेदन किया—

"आविस, आप हमारे लिये भी ख़ुदा से वन्दगी किया करें।"

आविस ने कहा—विश्वास और प्रेम ये दो विभिन्न वस्तुयें हैं। अकेला विश्वास प्रेम नहीं, तो भी मैं अपनी प्रत्येक प्रार्थना में कहता हूँ—'ऐ ख़ुदा, तू आस्तिक स्त्री पुरुषों के अपराध क्षमा कर।"

तदनन्तर उमर ने आविस से कुछ उपदेश देने का आवेदन किया।

आविस बोले—उमर, तुम प्रभु को तो जानते हो न?

उमर—हाँ।

आविस—तो अब तुम और कुछ भी न जानो तो कोई हानि नहीं।

उमर—और कोई उपदेश?

आविस—उमर, ईश्वर तुम्हें जानता है?

उमर—हाँ।

आविस—तो अब कोई दूसरा तुम्हें नहीं जाने तो कोई हानि नहीं।

उपदेश सुनकर उमर ने उनकी सेवा में कुछ नक़द भेंट रखी। आविस ने उसे लौटाते हुए अपनी जेब में से दो पैसे निकालकर उन्हें दिखाकर कहा—ऊँट चराकर ये दो पैसे पाए हैं। जबतक ये हैं मुझे और की क्या ज़रूरत? तुम दोनों को यहाँ तक आने में बड़ा श्रम हुआ। अब तो तुम जाओ भाई! पर एक दिन फिर मुलाक़ात होगी—क़यामत के दिन, जिसके बाद फिर शायद ही बिछुड़ना पड़े। अभी तो हम सब को अपनी परलोक-यात्रा के लिये साज-सामान जुटाना है। इतना कहकर उन्होंने दोनों को विदा किया। इसके बाद एक बार आविस कुफ़ा शहर में आए थे, पर हयान के अतिरिक्त और किसी से नहीं मिले। हयान ने उनसे अपनी भेंट का हाल कहा है—

आविस की गाथा सुनकर मैं उनसे मिलने के लिए आतुर हो

उठा। कूफ़ा में आकर मैंने उनका पता लगाना शुरू किया। एक दिन मैंने अकस्मात् तपस्वी आविस को कोरात नदी में हाथ-मुँह धोते देखा। उनके सुने हुए लक्षणों को देखकर मैं उन्हें सहज ही पहचान गया। समीप जाकर मैंने उन्हें प्रणाम किया। मेरी ओर नज़र भर देखकर उन्होंने बदले में नमस्कार किया। आविस को उस मुफलिस हालत में देखकर स्नेह-भाव से मेरी आँखों में आँसू आगए। यह देखकर आविस भी रो पड़े और बोले—हरम के पुत्र हयान ! ख़ुदा तुम्हें दीर्घायु करे। तुम किसलिए आए हो ? किसने तुम्हें मेरा पता बताया ?

बिना बताए मेरा और मेरे पिता का नाम जान लेने पर जब मैंने आश्चर्य प्रकट किया तो उन्होंने कहा—जिससे कोई बात छिपी नहीं, वही मुझे तुम्हारा परिचय दे गया। आत्मा ने आत्मा को पहचाना है। श्रद्धा-भक्ति वाले आत्माओं का परस्पर योग अनायास होजाता है।

मैंने उपदेश के लिए प्रार्थना की तो उन्होंने कहा—मैंने तो कभी उपदेशक, वक्ता अथवा विवेचक बनने की अभिलाषा नहीं की। मेरा तो काम ही दूसरा है। मैं तुम्हें क्या उपदेश दूँ ?

मैंने कहा—क़ुरान का एक वचन ही सुनायें। आपके मुख से उसे सुनकर मुझे अपार लाभ होगा।

उन्होंने कहा—"शैतान को छोड़कर ख़ुदा का आश्रय ग्रहण करो।"

इतना कहते-कहते उनकी आँखें भर आईं और वे पुनः बोले—ख़ुदा ने कहा है—"मैंने मनुष्यों और देवों को अपनी उपासना करने के लिए सिरजा है। भू-मण्डल, नभ-मण्डल और उसके बीच के सर्व पदार्थ मैंने विनोद-मात्र के लिए नहीं रचे हैं, तो भी बहुत से लोग इस बात का ध्यान नहीं रखते।" इतना बोलकर वे रुक गए मानों उनसे कोई भयानक अपराध हो गया हो। हे परवरदिगार ! ऐ सुभान अल्लाह ! कहकर, चिल्लाकर वे मूर्च्छित होगए।

थोड़ी देर बाद स्वस्थ होने पर उन्होंने मेरे वहाँ आने का कारण

पूछा। मैंने कहा—आपके स्नेह के द्वारा सुख प्राप्त करने के लिए मैं तो यहाँ आया हूँ।

आविस बोले—मैं तो कोई प्रसिद्ध व्यक्ति नहीं। किन्तु, जो मनुष्य ईश्वर को छोड़कर दूसरे से स्नेह करता है वह क्या कभी सुखी हो सकता है?

उपदेश देने के लिए पुनः विनती करने पर उन्होंने कहा—सोते समय तो यह समझो मौत सिरहाने खड़ी है और जागते समय मौत को आँखों के सामने खड़ी देखो। छोटे से छोटा अपराध करने में भी ईश्वर से डरो। पाप को तुच्छ समझना ईश्वर को भी तुच्छ समझना है।

"मैं भविष्य में कहाँ रहूँ?" पूछने पर उन्होंने बताया—"शाम देश"। उस देश में जीविका निर्वाह में भी मेरी शङ्का को सुनकर वे बोले—जिस हृदय में उदर-निर्वाह की शङ्का प्रबल हो, जिसको इस विषय में ईश्वर का भरोसा नहीं, वह व्यक्ति ईश्वर के मार्ग का उपदेश ग्रहण नहीं कर सकता। ऐसे लोगों के भाग्य में तो दुःख ही बदा है। हे हरम के पुत्र! तेरे पिता चल बसे, आदम, हवा, नूह, इब्राहिम, मूसा और दाऊद आदि अनेक इस लोक को छोड़कर चल दिए, महा-पुरुष मुहम्मद पैग़म्बर भी परलोक सिधार गए और मेरा भाई उमर भी मृत्यु को प्राप्त होगया। पश्चात् "हा, उमर!" कहकर आविस रोने लगे।

मैंने कहा—प्रभु हम सब पर रहम करे। उमर तो अभी जीवित है। आविस बोले—"न, न, मुझे अभी ख़ुदा ने उसकी मृत्यु का समाचार भेजा है। भाई, हम सभी को मौत की फ़ौज में शामिल होना है, इसलिए ख़ूब सँभल-सँभलकर क़दम रखने चाहिए।"

इसके बाद उन्होंने मुझे आशीर्वाद देकर यह उपदेश दिया—"ईश्वरीय ग्रंथ की आज्ञा का पालन करना और सत्पुरुषों के मार्ग का

अनुसरण करना। एक पल भी मौत को मत भूलना। अपने मण्डल में जाकर इसी बात पर उपदेश देना। प्रभु के चाकरों को उपदेश देने में आलस्य न करना।" कुछ ठहरकर वे फिर बोले—"जाओ, हरम के पुत्र, विदा हो। अब तुम मुझे फिर कभी नहीं देख पाओगे और न मैं तुम्हें। बन्दगी के समय तुम मुझे याद करना, मैं तुम्हें याद करूँगा। तुम इस मार्ग से जाओ, मैं उस मार्ग से जाता हूँ।" इतना कहकर वे उठ खड़े हुए। मेरी तो प्रबल इच्छा थी कि उनकी संगति का और अधिक लाभ लूँ। पर वे तो एक ओर चल दिए। जाते समय उनकी आँखें भर आईं, मैं भी रोने लगा। जिस मार्ग पर आविस गए उसे मैं एकटक निहारता रहा। थोड़ी देर में वे अदृश्य होगए। उसके बाद उनका कोई समाचार नहीं मिला।

रबिय कहता है कि एक दिन प्रातःकाल की नमाज़ के समय उसने आविस को देखा था। नमाज़ पूरी करके वे नाम-जप में तल्लीन होगए। दूसरी नमाज़ के समय तक वे नाम-जप करते रहे, और दूसरी नमाज़ के बाद पुनः जप करने लगे और वह भी तीसरी नमाज़ तक चलता रहा। तीसरी नमाज पढ़कर भी वे जप ही करते रहे। इस प्रकार बिना खान-पान और शयन के तीन रात-दिन तक वे नमाज़ और नाम-जप में तल्लीन रहे। चौथी रात्रि को रबिय ने उन्हें कुछ निद्रालु देखा, किन्तु थोड़ी देर में तो वे सहसा खड़े होकर बोले—"हे प्रभु! ये तंद्राभरी आँखें और यह भूखा पेट तो बहुत ज़ुल्म करता है, इनसे छुटकारा पाने के लिये मैं तेरी शरण में आया हूँ।"

उसके बाद सुनने में आया कि आविस बिना सोये रात भर एकासन से बैठे नाम-जप करते रहते थे। उसी अवस्था में एक दिन किसी ने उनसे प्रश्न किया—क्यों आविस! उपासना कैसी चल रही है? उन्होंने उत्तर दिया—मेरे मन को संतोष हो ऐसी तो नहीं। मैं तो बार-बार प्रभु के चरणों में नमस्कार करके कहता हूँ—हे प्रभु, तू

सबसे श्रेष्ठ है। ऐसा कहते-कहते ही यदि मृत्यु होजाय तो कितना उत्तम हो? मेरी तो मनोकामना है कि मैं स्वर्गवासियों की सो उपासना करूँ, किन्तु वैसा न कर सकने के कारण असंतोषी हो रहा हूँ।"

किसी ने आविस से पूछा—कोई मनुष्य उपासना में मस्त है या नहीं, यह कैसे जाना जा सकता है? उन्होंने बताया—कोड़ों की मार पड़ने पर भी उपासक को मालूम न हो तभी समझना चाहिये कि वह उपासना में पूर्णरूप से मग्न है।

किसी दूसरे ने पूछा—आप इस समय क्या सोच रहे हैं? उन्होंने कहा—मैं यह सोच रहा हूँ कि आज का प्रातःकाल तो देख लिया, किन्तु मौत शाम तक प्रभु-वंदना का मौक़ा देगी या नहीं?

किसी ने पूछा—आप कहाँ तक पहुँच गए?' वे बोले—रास्ता बहुत लम्बा है, और मेरी झोली तो खाली है।

एक बार उन्हें तीन दिन निराहार बीत गए। रास्ते में जाते समय उन्हें एक मुद्रा पड़ी दिखाई दी। किसी का खोया हुआ धन समझकर उन्होंने उसे छुआ भी नहीं। भूख के मारे वे पास के पेड़ों की छाल चबाने लगे। इतने में मुँह में रोटी दबाए एक कुत्ता वहाँ आया। कुत्ता रोटी उनके आगे छोड़ गया। आविस ने यह समझकर कि यह रोटी तो किसी दूसरे की है, उसे भी नहीं छुआ। कुत्ता लौटकर आया, संकेत से जब उसने उन्हें रोटी खाने का आग्रह किया तब कहीं उन्होंने उस रोटी को स्वीकार किया।

आविस के पड़ोसियों का कहना है कि वे तो आविस को पागल समझते रहे हैं। उपवास के बाद का भी उनका कोई नियम नहीं था। खजूर बेचकर वे अनाज ख़रीदते और उसे खाते। जो अनाज बच जाता उसे ग़रीबों को बाँट देते। वे फटे-पुराने कपड़े पहनते। सवेरे के नमाज़ के समय वे बाहर निकलते और शाम की नमाज़ के समय घर लौटते।। लड़के उनके पीछे होकर "पागल आया, पागल आया," कहकर उन पर

पत्थर फेंकते और वे हँसकर कहते—भाइयो, तुम्हें पत्थर मारने में आनन्द आता हो तो ख़ुशी से मारो, पर पत्थर छोटे-छोटे ही मारना। कहीं ख़ून निकल आया तो शरीर की अशुद्धता के कारण नमाज़ पढ़ने से रह जाऊँगा। उन्हें शरीर की नहीं, चिंता थी नमाज़ की!

आविस से किसी ने कहा—पास के क़बरिस्तान में एक व्यक्ति रहता है जो तीस वर्ष से शव के कपड़ों से काम चलाता और बारबार रोता है। आविस ने उस व्यक्ति से भेंट की। अस्थिकंकालावशिष्ट वह व्यक्ति श्मशान में बैठा रो रहा था। आविस ने उससे कहा—हे भाई, श्मशान का यह निवास और शवों के वस्त्रों का धारण तुम्हें ईश्वर से दूर रखता है। अभी तुम में ऐसी पवित्रता नहीं आई कि इन वस्तुओं की अपवित्रता तुम्हें हानि न पहुँचा सके। इस अवस्था में तो ये वस्तु तुम्हारे प्रभु-पथ में बाधक ही होंगी। आविस के ये शब्द उस व्यक्ति को सत्य प्रतीत हुए। उसे अपनी अयोग्यता और भूल का ज्ञान हुआ। तत्क्षण वह चीख़ मारकर एक क़ब्र पर गिरा और उसके प्राण-पखेरू उड़ गये।

आविस के जीवन का अंतिम-काल हज़रत अली के साथ बीता था। उसी के साथ धर्म-युद्ध में सम्मिलित होकर उन्होंने प्राण-त्याग किया था।

मुसलमानों का एक सम्प्रदाय "आविसी" नाम से प्रसिद्ध है। वे लोग गुरु की आवश्यकता नहीं मानते। क्योंकि स्वयं आविस ने कभी पैग़म्बर साहब के दर्शन नहीं किए थे, तो भी उन्हें प्रभु के संदेश सदा मिलते रहते थे।

उपदेश-वचन

१—चाहे तुम इस लोक के तो क्या स्वर्गलोक के देवों के समान ही ईश्वरोपासना क्यों न करो, जब तक तुम्हारे मन में श्रद्धा नहीं है तुम्हारी उपासना व्यर्थ है।

२—जिन लोगों को इन तीन वस्तुओं पर प्रेम है, उनमें और नरक में ज्यादा दूरी नहीं है—(१) स्वादिष्ट भोजन, (२) सुन्दर वस्त्र और (३) धनवानों का सहवास।

३—जिसे ईश्वर का साक्षात्कार हुआ है, उससे विना जाना कुछ भी नहीं रहा। जिसने परमात्मा को जान लिया उसने जानने योग्य सब कुछ जान लिया।

४—बाहरी एकांत वास्तविक एकांत नहीं। मन में चिंता और शंका का प्रवेश न हो वही सच्चा एकांत है। ऐसा एकांतवास करने वाला ही सच्चा संग-रहित है। जिस समय दो की भावनायें जाग्रत होती हैं तभी शैतान ठगने पाता है। मन को सदा वश में रखो। यदि हृदय हाथ में होगा तो उसमें प्रवेश करने को दूसरे को रास्ता ही नहीं मिलेगा।

५—जिसे उच्च बनना हो, वह विनम्र बने। जो पुरुषार्थ प्राप्त करना चाहे, वह सच्चा बने। जिसे गौरव प्राप्त करना हो, वह ईश्वर से डरे। जिसे महत्व प्राप्त करना हो, वह धैर्यवान् बने। शांति के लिए वैरागी और संपत्ति के लिए पराश्रित बने।

३—अबु मुर्त्तांज़

तपस्वी अबु मुर्त्तांज़ अपने प्रभु-प्रेम और वैराग्य के कारण प्रसिद्ध होगए हैं। उन्होंने अनेक वार अकेले देश-भ्रमण किया था। नशापुर में वे रहते थे, उनके सहवासी थे तपस्वी अबु उस्मान और ज़वनिद। तपस्वी अबु हाफ़िज़ का दर्शन-लाभ भी उन्हें हुआ था। शोनजीरा नामक स्थान में वे वहुत समय तक रहे थे। उनकी मृत्यु बग़दाद में हुई थी।

उन्होंने कहा है—मैंने तेरह वर्ष तक तीर्थ भ्रमण किया, किन्तु मुझे ऐसा मालूम देता है कि मेरे वे भ्रमण सांसारिक भावना से ही हुए थे, कारण, एक बार मेरी माता ने जब मुझसे पानी माँगा तो मुझे वह सेवा भी भार-रूप मालूम दी। मैं इससे अनुमान करता हूँ कि तीर्थ-यात्रा से मेरी लेश-मात्र भी उन्नति नहीं हुई।

अस्तु मुर्त्तांज़ एक दिन बग़दाद शहर में से जा रहे थे। प्यास लगने पर उन्होंने एक धनवान् के द्वार पर पानी माँगा। गृहस्थ की पुत्री जल पात्र लेकर बाहर आई। मुर्त्तांज़ कन्या का रूप-लावण्य देखकर मुग्ध हो गए। जल पीकर वे वहीं बैठे रह गए। बहुत समय बीत जाने पर घर के मालिक के प्रश्न करने पर उन्होंने उत्तर दिया—भद्रजन, तुम्हारे घर से मुझे पानी तो मिला है पर पानी पिलाने वाली ने मेरा मन चुरा लिया है।

गृह-स्वामी बहुत ही सहृदय था। वह महर्षि मुर्त्तांज़ को पहचान गया। उसने कहा—महात्मन्, वह कन्या मेरी पुत्री है। आपकी उसके पाणिग्रहण की अभिलाषा हो तो मैं प्रसन्नता-पूर्वक उसे आपके चरणों में समर्पण करूँगा।

मुर्त्तांज़—हाँ, मेरी ऐसी इच्छा है।

गृह-स्वामी ने अपने कुटुम्बीजनों को एकत्रित करके बड़ी धूमधाम से विवाह की तैयारी की। रिवाज़ के मुताबिक नौकर मुर्त्तांज़ को स्नानगृह में लेगए, उन्हें बहुमूल्य वस्त्राभूषण पहनाये। वधू के साथ वे अंतःपुर में गए। वैवाहिक क्रिया के आरंभ में उपासना करते ही वे उच्च स्वर से बोल उठे—अरे, जल्दी मेरी कफनी उठा लाओ। इतना कह, उन्होंने वे क़ीमती वस्त्राभूषण निकाल फेंके और पुनः अपनी कफ़नी पहनकर वे वहाँ से चल दिए।

ऐसा करने का कारण पूछने पर उन्होंने बताया—उपासना के समय मुझे एक अंतर्ध्वनि सुनाई दी—'अरे त्यागी, मेरी इच्छा के

विरुद्ध जाकर तू ने एक नारी पर दृष्टिपात किया, उसके दण्ड-स्वरूप तो तेरे त्याग की कफ़नी ही दूर हुई है; किन्तु अब भी नहीं चेतेगा तो याद रख तेरा आंतरिक धर्मवस्त्र भी छिन जायगा"।

एक बार एक व्यक्ति ने उनसे कहा—अमुक व्यक्ति तो पानी पर चल और आकाश में उड़ सकता है। मुर्त्तीज़ ने उत्तर दिया—इसमें कौन-सी महत्व की बात है। जलचारी और आकाशविहारी से तो इन्द्रियों को वश में रखने वाला अधिक श्रेष्ठ है।

उपदेश-वचन

१—'मेरा धर्माचरण मुझे नरक के दुःखों से बचाकर स्वर्ग में ले जाय, ऐसी इच्छा करने वाला निर्भय नहीं। किन्तु जो ईश्वर पर विश्वास रखकर उसकी प्रीति के लिए ही धर्माचरण करता है, वही निर्भय है, और उसे ही प्रभु अपनी सेवा में लेता है।

२—किस उपाय से प्रभु-कृपा प्राप्त हो? प्रभु-प्रेम में बाधकरूप इस संसार और बाह्य-जीवन में आसक्ति छोड़ दे।

३—लौकिक भोगों से विमुखता, ईश्वर की आज्ञा का पालन और ईश्वरेच्छा से जो कुछ होजाय उसी में प्रसन्नता मानना, सच्ची प्रभु-भक्ति के लक्षण हैं।

४—ईश्वर के मार्ग में विरोधक वस्तुओं पर आसक्त होना और प्रकृति की सजा भोगने की तैयारी करना एक समान है।

५—व्यवहार को शुद्ध रखने के दो उपाय हैं—धीरज और प्रेम।

६—साधुजनों के लिए भी सत्संग श्रेयस्कर है। जो सत्संग से दूर रहता है वह रोगरहित नहीं।

७—एक बार उपदेश करते समय उन्होंने अपने श्रोताओं से कहा था—तुमको मुझसे उत्तम मनुष्य के पास जाना चाहिए और मुझे तुम लोगों से उत्तम लोगों के पास जाना चाहिए।



४—अबुअली मुहम्मद

तपस्वी अबुअली मुहम्मद नशापुर की एक छोटी-सी मसजिद के धर्मोपदेशक थे। तपस्वी अबु हाफ़िज़ और हमदुन के समागम का उन्हें लाभ मिला था। व्यवहार तथा परमार्थ-ज्ञान में वे पारंगत थे। वे तत्कालीन लोक-नीति और धर्मशास्त्र के मुख्य ज्ञाता माने जाते थे। प्रभु-प्राप्ति के निमित्त सब कुछ छोड़कर वैराग्य धारण कर वे तत्व-ज्ञान के अभ्यास में निमग्न हो गये। अंत में सूफी-मण्डल में सम्मिलित होकर उन्होंने धर्म-प्रचार किया। वे जैसे पण्डित थे वैसे ही सरस वक्ता भी थे।

उनका एक पड़ोसी पत्थर मार-मारकर पक्षियों को उड़ाता रहता। एक दिन उसका मारा हुआ पत्थर तपस्वी अली मुहम्मद को आकर लगा, जिससे उनके माथे में से रक्त बहने लगा। तपस्वी के एक भक्त ने उस पड़ोसी पर मुकदमा चला दिया। किन्तु, तपस्वी ने मुक़दमा वापस खिंचवा लिया और अपने पड़ोसी के पास एक लकड़ी भेजकर कहलाया—पत्थरों से न मारकर पक्षियों को भविष्य में इस लकड़ी से उड़ा दिया करना।

अबुअली ने एक दिन देखा—तीन मनुष्य और एक स्त्री एक मुर्दे को कंधे पर उठाकर लिये जा रहे हैं। स्त्री को मुर्दा उठाते देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। स्त्री को अलग कर उन्होंने स्वयं मुर्दे को कंधा लगाया। प्रार्थनादि के साथ विधिपूर्वक मुर्दे को दफ़नाने के बाद उन्होंने उन तीन आदमियों से पूछा—मुर्दा उठाने के लिये चौथा आदमी नहीं मिला? बिचारी स्त्री को कष्ट उठाना पड़ा? उन्होंने उत्तर दिया—मृत व्यक्ति नपुंसक था, इसलिये सब उससे घृणा करते थे। कोई उसके शव को उठाने के लिये तैयार नहीं हुआ। यह सब सुनकर ऋषि का मन मृतक

के प्रति दयार्द्र हो गया और उन्होंने अपने पास से उनकी विरुद्धता की।

तपस्वी अबुअली सन् ३२८ हिज़री में नशापुर में परलोक-वासी हुये।

उपदेश-वचन

१—मनुष्य चाहे जितने शास्त्र सीखे, किन्तु जब तक वह सद्गुरु की देख-रेख और सेवा में रहकर आत्म-शासन नहीं सीखता, तब तक उसका वास्तविक मनुष्यत्व विकसित नहीं होने पाता।

२—जो मनुष्य साधु जनों की कथा, कीर्त्तन व उपदेश सुनता है, पर उनके सम्मान और सेवा की ओर ध्यान नहीं रखता, उसे सत्संग तथा साधु-दर्शन का वास्तविक लाभ भी नहीं होता और वह साधुजनों की कृपा से भी वञ्चित रह जाता है।

३—सच्ची प्रभु-भक्ति और सत्य-परायणता सब शुभ-कार्यों और साधनाओं की मूल हैं। शुद्ध प्रेम से ही शुद्ध धर्मानुष्ठान सम्भव है। जिसकी जड़ शुद्ध नहीं, उसके डाल, पात और फल किस प्रकार शुद्ध हो सकते हैं?



५—अबुल अब्बास नहाओन्दी

तपस्वी अबुल अब्बास महाज्ञानी और वैरागी थे। उन्होंने कहा है—मेरी साधना के प्रारम्भिक बारह वर्षों तक मैं सिर झुकाये रहता। इससे मुझे बहुत कुछ तत्त्वज्ञान हुआ। कई लोग ईश्वर-दर्शन—प्रभु को अपना बनाने की इच्छा रखते हैं, परन्तु मेरी तो यही आकांक्षा थी कि ईश्वर मुझे ऐसे थोड़े से क्षण तो दे, जब मैं परमात्म-दर्शन प्राप्त कर सकूँ—अर्थात्, मैं यह स्पष्ट जान सकूँ कि मैं कौन हूँ? कैसा हूँ? और कहाँ हूँ?

तपस्वी अब्बास टोपी सीकर जीवन-निर्वाह करते। वे एक टोपी की मेहनत के दो पैसे लेते, जिनमें से एक पैसा भिखारी को देते और दूसरा पैसा खाकर पूरा करने पर ही नई टोपी का काम हाथ में लेते।

इस महात्मा का एक धनवान् शिष्य था। अपने धन में से वह कुछ अंश अलग करता जाता। उस अंश को किसे दान दे? इस विषय में उसने प्रश्न किया। उन्होंने कहा—सत्पात्र को! गुरु के यहाँ से लौटते ही उसे मार्ग में एक निर्धन अंधा मिला। उसे उचित पात्र समझकर उसने एक स्वर्णमुद्रा दान में दी।

दूसरे ही दिन उसने सुना वह अंधा एक दूसरे अंधे से कह रहा था—कल एक आदमी मुझे मोहर दे गया, मैंने उससे ख़ूब तो शराब पी और वेश्या के साथ मौज की।

यह सुनकर उस धनवान् को बहुत खेद हुआ। उसने वह हक़ीक़त गुरु को सुनाई। गुरु ने उसके हाथ में एक पैसा देकर कहा—जा, पहले-पहल जो आदमी मिले उसी को यह पैसा दे-देना। यह पैसा गुरु ने अपनी टोपी बेचकर प्राप्त किया था।

सबसे पहिले मिलनेवाले को उसने वह पैसा दिया और स्वयं उसके पीछे हो लिया। उसने एक निर्जन स्थान में जाकर अपनी झोली में छिपे हुए एक मरे हुए पक्षी को फेंक दिया। आगे बढ़कर शिष्य ने इसका कारण पूछा तो उसने उत्तर दिया—आज सात दिन से मेरा कुटुम्ब निराहार दिन बिता रहा है। भिक्षावृत्ति मुझे पसंद नहीं, निरुपाय होकर मैंने भूख बुझाने के लिए यह मरा हुआ पक्षी ही उठा लिया था। रास्ते में आपने मुझे एक पैसा दे दिया। अब मुझे इस पक्षी की ज़रूरत नहीं रही।

शिष्य ने इस आश्चर्य-भरी बात का गुरुजी के आगे उल्लेख किया। गुरुजी ने बताया—निश्चय ही तूने वह धन अत्याचारी और दुराचारियों की सहायता से प्राप्त किया है। इसीलिए तेरे धन के दान

का दुरुपयोग हुआ। न्याय-पूर्वक मिले हुए मेरे एक पैसे ने एक ग़रीब को निषिद्ध-भोजन से बचा लिया इसमें नई बात क्या ?

एक दिन एक नास्तिक कफनी पहनकर परीक्षा लेने के लिए एक दूसरे तपस्वी अबुल अब्बास क़स्सार की झोंपड़ी में गया। वे उग्र स्वभाववाले थे। देखते ही वे उसे पहचान गए और बोले—अरे नास्तिक ! तेरा यहाँ क्या प्रयोजन ? वहाँ अपनी दाल गलती न देख वह नास्तिक अब्बास नहाओन्दी के यहाँ आया। वे उसे पहचान तो गए, पर कुछ न बोले। वहाँ वह चार मास तक रहा। कपट-भाव से वह रोज़ सब के साथ वजु करता और नमाज़ पढ़ता। एक दिन उससे उन्होंने कहा—आपका यहाँ के अन्नजल के साथ संबंध हो गया है, अब यहाँ से आप मेरे प्रति विरोध-भाव लेकर जायँ तो यह अनुचित होगा।

वह नास्तिक ईश्वर मे विश्वासकर और महात्मा की संगति में रहकर साधना करने लगा। वह एक सिद्ध पुरुष हुआ और नहाओन्दी के परलोकगमन पर उसने उनका स्थान ग्रहण किया।

उपदेश-वचन

१—अहम्मन्यता—ममत्व को दबाकर सबके साथ बंधुत्व स्थापित करना एक ऋषि का काम है।

२—पहले धर्मज्ञान प्राप्त करो और पीछे और कुछ।



६—अबुल हुसेनअली

तपस्वी अबुल हुसेनअली इब्राहिम हिज़री के पुत्र थे। वे बग़दाद के थे। बसरा में रहकर योग-साधन करते थे। हिज़री सन्

२६१ में बग़दाद में वे स्वर्गवासी हुए। वे तत्त्वज्ञानी, सद्वक्ता, पुण्यवान और आध्यात्मिक पुरुष थे।

ख़ुरासान का रहनेवाला अहमद नसीर नाम का एक व्यक्ति उनका शिष्य था। वह ६० बार मक्का जा चुका था। वहाँ एक बार धार्मिक चर्चा के समय वह कुछ अविनय-पूर्ण बात बोल उठा, जिससे धर्माचार्य के मनमें आघात हुआ। ऐसे अविनय के कारण वह काबा से निकाल दिया गया। उसे कहा गया—यहाँ काबा में दो सौ अस्सी धर्माचार्य हैं, उनकी बात काटनेवाला तू कौन? उनके शिष्य ने मक्का में जाकर अविवेक की बात की है, यह जानकर अबुल हुसेनअली को बहुत खेद हुआ। शिष्य पर क्रुद्ध होकर उन्होंने अपने द्वारपाल को हुक्म दे दिया कि नसीर लौटकर आये तो उसे मेरे पास न आने देना।

उनकी आज्ञा का पालन हुआ। गुरु के पास जाने की निषेधाज्ञा द्वार-पाल से सुनकर नसीर वहीं मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। मूर्च्छा भंग होने पर वह समीप की एक मसजिद के द्वार पर बैठकर शोकातुर चित्त से दिन-रात भजन करने लगा। वहीं एक दिन सौभाग्य से गुरु-शिष्य का मिलाप होगया। शिष्य ने पूछा—अब वह क्या करे? गुरु ने बताया—तेरे उस अविनय का यही प्रायश्चित्त है कि रोम के तर्तुस नगर में जाकर तू एक वर्ष तक दिन में तो जानवर चराता रहे और रात के समय जङ्गल में भगवद्भजन करता रहे।

"जैसी गुरुजी की आज्ञा" कहकर अहमद नसीर रोम की ओर चल पड़ा। एक वर्ष तक वह गुरु-आज्ञा के अनुकूल चलता रहा। समय पूरा होने पर वह बग़दाद लौटकर गुरुजी की झोंपड़ी के आगे खड़ा होगया। उसके आने की बात सुनकर तपस्वी अबुल दौड़कर बाहर आए, प्रेम से छलकते हुए हृदय से शिष्य को छाती से लगाकर वे बोले—"अहमद, तू मेरा सच्चा शिष्य है, तू मेरा नयन-मणि है।"

गुरु का ऐसा प्रेम देखकर अहमद बहुत ही प्रसन्न हुआ।

पश्चात् वह मक्का की यात्रा के लिए गया। वहाँ पहुँचने पर आचार्यों और धर्माध्यक्षों ने उसका सत्कार किया।

उपदेश-वचन

१—एक दिन मैंने प्रभु से पूछा—"हे प्रभु! मैं सब अवस्थाओं में तुमसे संतुष्ट हूँ। क्या तू भी मुझ पर संतुष्ट है?" ईश्वर ने कहा—'तू झूठा है। यदि तू मुझसे पूर्ण संतुष्ट होता तो मेरे संतोष को पूछताछ नहीं करता।"

२—ईश्वर के सिवा तुम जो कुछ जानते हो उसे भूल जाओ और इधर-उधर की बातें जानने के लिए माथा मत मारो। केवल ईश्वर में लीन रहो—उसी के रंग मे रंग जाओ।

३—यदि ईश्वर अपने भक्तों पर सब कुछ छोड़ दे तो उनसे केवल पाप और अनिष्ट ही बन पड़े। ईश्वर का अनुग्रह और अनुकूल संयोगों के रूप में जो सहायता मिलती हैं, उसी से भक्तों में प्रेम और सद्भाव पैदा होते हैं।

४—जब तक तुम्हारे मनमें संसार बसा हुआ है तभी तक भगवान् तुमसे दूर है। संसार के तरफ़ की तुम्हारा दौड़ रुकते ही तुम जाओगे ईश्वर की ओर, जिससे तुम्हारे अंतःकरण में अवश्य प्रकाश होगा। उस प्रकाश में तुम्हें ईश्वर के सिवा और न कोई दिखाई देगा, और न स्मृति अथवा वाणी में ही आयेगा। यही योग की वास्तविक अवस्था है।



७—शाहशुजा

तपस्वी शाहशुजा राजवंशीय थे। उनका जन्मस्थान केरमान प्रदेश में था। वे 'मीरात-उल-हकमा' (ज्ञानियों का दर्पण) नामक

ग्रन्थ के रचयिता थे। अबु तोराब, ईपरा आदि अनेक महात्माओं की उन्होंने सत्संगति की थी। वे धनवान् की भाँति सुख से रहते, पर उनका चित्त सांसारिक बातों मे अलहदा रहता। एक दिन वे नशापुर गये, वहाँ तपस्वी अबु हाफिज़ ने उनको सम्मानित कर कहा था—मैं फ़क़ीरी पोशाक में जिस बात की खोज में था, वही वस्तु मुझे आज एक गृहस्थ के वेश में भी मिली है।

शाहशुजा के एक परम धार्मिक युवती पुत्री थी। केरमान के बादशाह ने उस कन्या से शादी करने की इच्छा प्रकट की। राजाज्ञा के उत्तर में शाहशुजा ने तीन दिन की मोहलत माँगी। इस बीच में उसने सब मसजिदें छान डालीं। तीसरे दिन एक मसजिद में उसे एक युवक फकीर भावपूर्वक नमाज़ पढ़ता दिखाई दिया। नमाज़ पूरी होने पर शाहशुजा ने उससे पूछा—युवक, तुम्हारा निक़ाह हो चुका है?

युवक ने उत्तर दिया—नहीं।

शाहशुजा—तू निकाह करना चाहता है?

युवक—मेरे सरीखे दरिद्र को कौन अपनी कन्या देगा? मेरे पास तो तीन पैसों से एक कौडी भी ज़्यादा नहीं।

शाहशुजा—मैं अपनी पुत्री तुम्हें ब्याह दूँगा। अपने तीन पैसों में से तुम एक-एक पैसे का लोबान, रोटी और शक्कर ले आओ और मेरे साथ चलो।

इस प्रकार शाहशुजा ने अपनी पुत्री का विवाह उसी रात्रि को उस युवक फ़कीर के साथ कर दिया। अपार धन-सम्पत्तिशाली बादशाह को कन्या न देकर उस तपस्वी ने अपनी कन्या का पाणि-ग्रहण आनन्दपूर्वक एक ईश्वर-प्रेमी धर्मपरायण निर्धन के साथ कर दिया।

विवाह के बाद पति-पत्नी अपने झोंपड़े में गये। पत्नी ने देखा झोंपड़े के एक कोने में जल-पात्र पर एक रोटी का टुकड़ा पड़ा है। पूछने पर पति ने बताया—आज के लिये मैंने यह रोटी कल से ही रख छोड़ी है।

इतना सुनते ही पत्नी बड़ी निराश हुई। उसकी निराशा को देखकर पति ने कहा—मैं पहले से ही जानता था कि धनवान शाहशुजा की पुत्री मुझ ग़रीब की सहधर्मिणी बन ही नहीं सकेगी।

युवती बोली—प्रियतम, आपकी निर्धनता से मैं निराश नहीं हुई हूँ किन्तु मेरी निराशा का कारण है आपकी प्रभु-परायणता और ईश्वर-श्रद्धा की कमी। 'कल क्या खाऊँगा?' यह सोचकर आपने यह रोटी का टुकड़ा बचाकर रखा, यह कितनी अनास्था की बात है? न जाने मेरे पिताजी ने आपको किस कारण पसन्द कर लिया! उन्होंने बीस बरस तक मेरा पालन करके यही समझाया है कि जो ईश्वर पर पूर्ण विश्वास रखनेवाला और वैराग्यवान् होगा उसीसे मेरा विवाह करेंगे। किन्तु दुःख की बात है कि आप तो एक रोटी के टुकड़े के लिये भी ईश्वर का भरोसा नहीं करते!

यह सुनकर वह युवक फ़क़ीर स्तब्ध और लज्जित हो गया। उसने उसी समय उस रोटी के टुकड़े को बाहर फेंक दिया।

एक बार तपस्वी अबु हाफ़िज़ ने शाहशुजा को इस भाव का एक पत्र लिखा—"बन्धु! अपनी इन्द्रियों की विषयवासना तथा अपने अपराधों को विचार कर मैं तो निराश हो गया हूँ।" उत्तर में शाहशुजा ने लिखा—"आपके पुत्र को मैंने हृदय से लगा लिया है। इन्द्रियों के बारे में विचार करें तो सचमुच निराशा होती है। केवल ईश्वर की महानता एक ऐसी वस्तु है जिसका विचार कर मन आशान्वित होता है। ईश्वर के प्रति आशा उत्पन्न होने से, उससे डरकर चलने की वृत्ति भी जागती है। मैं जिस समय इन्द्रियों का निग्रह करने में असमर्थ हो जाता हूँ तो परमेश्वर का स्मरण करता हूँ; और जब मैं उसको याद करता हूँ तो वह ज़रूर ही मेरी ख़बर लेता है।"

उपदेश-वचन

१—जो महापुरुष अपने महत्व की ओर लक्ष्य नहीं रखता, उसी का

महत्व सबसे अधिक है। जो अपने महत्व का ध्यान रखता है, वह तो सर्वथा महत्वहीन है। जो प्रभुप्रेमी अपने प्रेम की ओर लक्ष्य नहीं रखता उसी के प्रेम की महत्ता सर्वोपरि है, और जो अपने प्रभु-प्रेम पर निगाह रखता है उसमें यदि लेश-मात्र प्रेम होता है तो वह भी नष्ट हो जाता है।

२—वैराग्य ईश्वर-प्राप्ति का गूढ़ उपाय है। उसके तो गुप्त रखने में ही कल्याण है, जो अपने वैराग्य को प्रकट करते हैं उनका वैराग्य उनसे दूर भाग जाता है।

३—साधुता के ये तीन लक्षण हैं—(१) संसार का ऊँच-नीच तुम्हारे हृदय में प्रवेश न करने पावे। मिट्टी की भाँति सोने-चाँदी को भी त्याग देने की क्षमता तुममें होनी चाहिये। (२) लोकापवाद पर दृष्टि मत दो; न लोक-प्रशंसा से फूलो और न लोक-निंदा से अप्रसन्न हो (३) तुम्हारे हृदय में लौकिक विषय की कामना निःशेष हो जाय। दूसरों को विषय-भोग और स्वादिष्ट खान-पान में जैसा आनन्द मिलता है वैसा ही आनन्द तुम्हें उन भोगों के त्याग में मिले।

४—सहन-शीलता के तीन लक्षण हैं—(१) निन्दा का त्याग, (२) निर्मल संतोष और (३) आनन्दपूर्वक ईश्वर की आज्ञाओं का पालन।

५—जो मनुष्य अशुद्ध दर्शन से नेत्रों और भोगों से इन्द्रियों को बचाता है, नित्य ध्यान-योग से अंतःकरण को निर्मल रख अपने चरित्र को शुद्ध करता है और धर्म-पूर्वक अर्जित अन्न से अपना पालन करता है, उसके ज्ञान में कोई कमी नहीं।

८—अबु उस्मान हयरी

तपस्वी अबु उस्मान हयरी ख़ुरासान-वासी थे। वे कुलीन वंश के साहसी, उत्तम वक्ता, अद्वितीय तत्ववेत्ता और महामान्य संत थे। ख़ुरासान में सन्यास-धर्म का उन्होंने प्रचार किया था। महर्षि ज़र्वनिद् यूसफ अबुल हुसेन, मुहम्मद फ़ज़ल, माननीय महर्षि इयहा, तपस्वी शाहशुजा और अबु हाफ़िज़ आदि की उन्होंने सत्संगति की थी। नशापुर में उन्होंने उपदेश-पीठ की स्थापना की थी जहाँ वे आध्यात्मिक विषयों पर प्रवचन किया करते थे। अपने पूर्व वृत्तांत के सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं कहा है—"बालकाल से ही मेरा अंतःकरण तत्व-प्राप्ति के लिए उत्सुक था। संसार-प्रेमी लोगों का समागम मुझे रुचता ही नहीं था। मेरे मन में यही विचार उठता रहता कि ये लोग जिन वस्तुओं की प्राप्ति के लिये परेशान हो रहे हैं, उनसे भी अधिक महत्व की वस्तु कोई होनी चाहिए और आगे जाकर मुझे मालूम हुआ कि वह वस्तु है धर्म!"

बाल्यावस्था में वे एक बार विद्यालय में जा रहे थे। वे बहुमूल्य वस्त्र पहने थे। साथ में तीन-चार नौकर भी थे। रास्ते में उन्हें एक गदहा दिखाई दिया। उसकी पीठ पर एक बड़ा-सा घाव था और कौए उसमें चोंच मार रहे थे। उन्हें बड़ी दया आई, अपनी पगड़ी उतारकर उसके घाव पर पट्टी बँधवा दी और अपना क़ीमती शाल उसे ओढ़ा दिया।

उस दिन उस्मान लौटकर घर नहीं गए, पर महर्षि इयहा के पास उपदेश के लिए गए। महर्षि के उपदेश से उनके हृदय के कपाट उन्मुक्त होगए। माता पिता की आज्ञा लेकर उसी दिन से वे महर्षि इयहा की सत्संगति में साधना करने लगे। शाहशुजा का नाम सुनकर, महर्षि की आज्ञा प्राप्त करके वे केरमान गए।

बीस दिन तक द्वार पर ही पड़े रहने के बाद शाहशुजा ने उस्मान को अपने पास आने दिया। उसके बाद बहुत समय तक शाहशुजा की संगति में रहकर उन्होंने ख़ूब फ़ायदा उठाया। बाद में शाहशुजा के साथ ही वे नशापुर लौटे। वहाँ महात्मा अबु हाफ़िज़ से उनकी मुलाकात हुई। हाफ़िज़ ने उस्मान पर प्रसन्न होकर, उन्हें अपने पास रख लिया। उनके पास रहकर उस्मान ने अच्छा धर्म-ज्ञान प्राप्त किया। अबु उस्मान स्वयं कहते हैं—"मेरे धर्मगुरु अबु हाफ़िज़ ने मुझे अपनी जवानी में ही घर से यह कहकर बाहर निकाल दिया—'जब तक मैं न बुलाऊँ, लौटकर न आना।' मुझे इस आज्ञा से बहुत दुःख हुआ। गुरु को छोड़ना अच्छा नहीं लगता था, पर आज्ञापालन तो आवश्यक था। उनकी तरफ देखते-देखते उलटे पाँव रखकर मैं रोता-रोता उनकी दृष्टि से ओझल होगया। गुरु के घर के सामने एक खण्डहर था और मैं उसी में छिप गया। गुरुजी बाहर आने-जाते तो मैं छिपकर उनके दर्शन करता। मैंने निश्चय कर लिया था कि चाहे शरीरान्त होजाय पर इस जगह से टलूंगा नहीं। गुरुजी को जब यह बात मालूम हुई तो उन्होंने मुझे बुला भेजा। मुझ पर अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्होंने अपनी कन्या के साथ मेरी शादी कर दी।"

एक दिन एक धर्मद्रोही मनुष्य ने तपस्वी अबु उस्मान हयरी को भोजन के लिए आमंत्रित किया। उस्मान समय पर उसके घर गए। उन्हें आया देख वह मनुष्य बोलने लगा—"बेवक़ूफ़, भूखे मरे। यहाँ अपने बाप की धन-दौलत रख गया था क्या, जो दौड़ा-दौड़ा खाने चला आया? जा, भाग यहाँ से।"

बिना कुछ कहे-सुने उस्मान लौट पड़े। वे कुछ क़दम ही गए थे कि उस मनुष्य ने उन्हें आवाज़ दी। वे लौटे, और वह मनुष्य फिर बोला—"खाने का ख़ूब लालच दीखता है, ले यह पत्थर खा!" उस्मान फिर लौट गए, उसने उन्हें फिर बुलाकर कटुवचन कहे। इस प्रकार तीस बार

उन्हें बुलाकर उसने उनका अपमान किया, तो भी तपस्वी के मनोभावों में ज़रा भी अंतर नहीं पड़ा। अंत में उस मनुष्य की हार हुई, उस्मान के पैरों पड़कर वह रोने लगा। उसने जब उनकी इस विलक्षण सहनशीलता की प्रशंसा की तो उन्होंने बड़ी नम्रता से कहा—"इसमें कौन-सी बड़ी बात है? कुत्ते का भी तो यही स्वभाव होता है। दुत्कारने पर भी 'तू-तू' करते ही वह पूँछ हिलाता चला आता है, उसे हर्ष अथवा विषाद होता ही नहीं। मैंने तो कुत्ते का सा काम किया है। इसमें प्रशंसा की क्या बात?"

एक दिन रास्ते में जाते समय इनके सिर पर एक आदमी ने कोयले की टोकरी उँड़ेल दी। तपस्वी के प्रशंसक एकत्रित हो, उस आदमी को बुरा-भला कहने लगे तो उन्होंने कहा—"भाइयो, इस कार्य के लिए तो इस आदमी को धन्यवाद देना चाहिए। जिसके सिर पर धधकती अग्नि की वर्षा होनी चाहिए उस पर इसने तो ठंडे कोयले ही फेंके हैं। यह तो इसका महान् उपकार है।"

अबु उमर ने कहा है—"महात्मा उस्मान की सत्संगति से पिछले अपराधों का मैंने प्रायश्चित्त किया तो सही, पर फिर मेरे मन में पापवृत्ति जागी। मैं उन्हें छोड़कर जाने के लिए उद्यत होगया। मैं जाने लगा तो उन्होंने कहा – 'भाई' तुझे जाना है तो सुख से जा, किन्तु सावधानी के लिए तुझे कहे देता हूँ कि दुर्जनों की संगति मत करना; कारण, वे सदैव तेरी बुराइयों को खोजते रहेंगे। निश्चय जान, तुझे पापकर्म में पड़ा देखकर वे प्रसन्न और धार्मिक कार्य में लगा देखकर निराश होंगे। यदि तुझसे कोई पापाचरण भी बन पड़े तो निःसंकोच भाव से मेरे पास चले आना 'मैं यथाशक्ति तुझे उससे मुक्त करने का प्रयत्न करूँगा।' ऐसे स्नेह भरे वचन सुनकर मेरी पापवृत्ति शान्त होगई और मुझे बहुत ही पश्चात्ताप हुआ।"

एक दिन एक दुराचारी युवक 'रबाव' नाम का बाजा हाथ में लेकर मतवाले की तरह झूमता रास्ते में चला आरहा था। अकस्मात् तपस्वी उस्मान से उसकी मुलाक़ात होगई। वह युवक लज्जित होकर अपना बाजा कपड़ों में और अपनी ज़ुल्फें टोपी में छिपाने लगा। वह डरा कि यह महात्मा मेरे चरित्र को जान गया होगा; परन्तु महात्मा उसके पास जाकर दयार्द्र हृदय से बोले—"डर मत भाई! हम सब तो एक से हैं।"

युवक उनकी यह बात सुनकर पानी-पानी होगया। उस्मान उसे अपनी कुटिया में ले आये। स्नान करवाकर उन्होंने उसे दूसरे वस्त्र दिए। फिर दृष्टि उठाकर बोले—"हे प्रभु! मुझसे तो जैसा बन पड़ा है, मैंने किया है; बाकी का सारा काम तो तुझे ही करना होगा।" ईश्वर-कृपा से युवक के हृदय में भक्ति का भाव उदय हुआ। संध्या की नमाज़ के समय अबु उस्मान मग़रबी ने उस युवक को देखकर उस्मान से कहा—"महात्मा हयरी! मुझे तो तुम्हारे सौभाग्य पर ईर्षा होती है। जिस अवस्था के लिए मैं दीर्घकाल से आतुर हूँ, वह इस युवक को तो अनायास प्राप्त होगई, अभी तो इसके मुँह से सवेरे पी हुई मदिरा की दुर्गंध तक नहीं गई है!" अबु उस्मान बोले—"प्रभु-कृपा का आधार कार्य पर ही नहीं किन्तु भाग्य पर भी है। यह कृपा मानुषी नहीं, किन्तु ईश्वरीय है।

एक मनुष्य ने उनसे पूछा--महात्मन्, मेरी जीभ तो भगवान् का जप करती है, पर मन तो उस ओर नहीं लगता। मैं क्या करूं?

महर्षि ने उत्तर दिया--भाई, एक इन्द्रिय तो वशीभूत हुई, इसी से ख़ुश हो। एक अंग ने उत्तम मार्ग पकड़ा है तो एक दिन मन भी ठीक रास्ते पर आवेगा ही।

फ़रग़ान देश से एक युवक मक्का की यात्रा करके नशापुर में आया और तपस्वी अबु उस्मान हयरी से मिलने गया। पर महात्मा ने उनकी

सलाम स्वीकार नहीं की। इस पर वह गुनगुनाने लगा--एक मुसलमान एक मुसलमान भाई की सलाम मंजूर नहीं करे यह कैसा अन्याय?' इसके उत्तर में महात्मा बोले—"तू ने अपनी माता को दुःखितावस्था में छोड़कर यह यात्रा की है, तुझे यह फलप्रद नहीं हो सकती।" इतना सुनकर वह युवक पश्चात्ताप करता-करता शीघ्र अपनी माता के पास पहुँचा और माँ की सेवा में तन-मन से लग गया। माता की मृत्यु के बाद जब वह अबु उस्मान के पास आया तो उन्होंने उसे बड़े प्यार से अपने पास रख लिया। युवक ने बड़ी आज़िज़ी से महर्षि से उनके जानवर चरा लेने का काम माँगा। वह युवक उनका मुख्य शिष्य हुआ।

उपदेश-वचन

१—सदा विनय और प्रेमपूर्वक ईश्वर का भजन करो। धर्म का अनुसरण और पूज्य भाव से सिद्ध पुरुषों का समागम करो। सेवा और सम्मानपूर्वक साधुजनों का सत्संग करो। प्रफुल्ल वदन से निर्दोष भ्रातृ-मण्डल के साथ रहो। अज्ञानी लोगों के साथ दयालु हृदय और नम्र वाणी से तथा नौकरों और घर के लोगों के साथ सज्जनता तथा सुशीलता-पूर्वक बर्त्ताव करो।

२—ज्ञान की बातें सुनकर जो साधक उनका आचरण करता है, उसी के अंतःकरण में ज्ञान-ज्योति प्रकट होती है। जो सुनकर भी उस पर आचरण नहीं करता उसका ज्ञान तो बातों ही में रहता है।

३—अपना दोष कोई नहीं देख पाता। अपना व्यवहार सभी को अच्छा मालूम देता है। किन्तु जो मनुष्य सब हालत में अपने को छोटा समझता है वह अपने दोष भी देख सकता है।

४—मान-अपमान, कृपा-अकृपा इन सब को एक समान समझे बिना मनुष्य में सम्पूर्णता नहीं आती।

५—तीन प्रकार के मनुष्य हैं—(१) जो ज्ञानी ज्ञानभक्ति की बात ही कहता है। (२) जो साधक लौकिक वस्तुओं में आसक्ति-रहित होता है। (३) जो ऋषि अलौकिक रीति से ईश्वर की प्रशंसा करता है।

६—ईश्वर ने जिसे परमार्थ ज्ञान में श्रेष्ठ बनाया है, वह पाप में पड़कर अपना पतन न होने दे, यह उसका पहला कर्त्तव्य है।

७—इन चार बातों से जीव का कल्याण होता है—ईश्वर के प्रति दीनता, ईश्वरेतर सब पदार्थों से निःस्पृहता, ईश्वर का ध्यान और विनय।

८—ईश्वर के न्याय से सदा डरो और उसकी कृपालुता से आशावान् बनो।

९—अन्न-वस्त्र देनेवाले की अपेक्षा तत्त्वज्ञान देने वाले का अधिक उपकार मानो।

१०—विनय के तीन मूल हैं—अपने अज्ञान का स्मरण, अपने पाप का स्मरण और अपनी त्रुटियों तथा आवश्यकताओं के लिए भगवान् से निवेदन।

११—जो मनुष्य लोगों के आगे लज्जित और ईश्वर के सामने निर्लज्ज है उसकी बातें शायद ही सच हों।

१२—जो आनेवाले कल की चिंता किए बिना प्रभु में रत रहता है वही सच्चा सहनशील है।

१३—उत्साह प्रेम का फल है। जिसमें सच्चा प्रभु-प्रेम होता है वही उसके दर्शन के लिए उत्सुक रहता है।

१४—जो आलस्य का डर नहीं रखता वह प्रेम की मधुरता का रसास्वादन नहीं कर सकता।

१५—ईश्वर से डरना भाग्यशाली बनने का लक्षण है। पाप करते रहकर भी ईश्वर की दया की आशा रखना दुर्भाग्य की निशानी है।

१६—जो मनुष्य विपत्ति आने के पहले ही उसे रोकने का उपाय करता है वही ज्ञानी है।

१७—तुम अपनी सांसारिक इच्छाओं की क़ैद में बंद हो, उससे छूटने के लिए यदि सब प्रकार से अपने आपको प्रभु के चरणों में अर्पित कर दोगे, तो तुम्हारी रक्षा होगी और तुम्हें सच्चा सुख मिलेगा।

१८—जब तक तुम संसार से सुख शांति की आशा रखोगे, ईश्वर के प्रति संतोषी नहीं बन सकोगे। यदि तुम सांसारिक भयों से डरोगे तो तुम्हारे मन में ईश्वर का डर नहीं समा सकेगा। यदि तुम दूसरे की आशा रखोगे तो ईश्वर की आशा निष्फल होगी।

१९—जो मनुष्य ईश्वर के सिवा न किसी से डरता, न किसी की आशा रखता, जिसे अपने सुख-संतोष की अपेक्षा प्रभु का सुख-संतोष अधिक प्रिय है, उसी का ईश्वर के साथ मेल है।

२०—ईश्वर का भय तुम्हें उसके पास ले जायगा, बाक़ी दम्भ और अभिमान तो तुम्हें उससे दूर ले जायँगे।

२१—दूसरों का तिरस्कार करना और उन्हें नीचा मानना तो बड़ा भारी मानसिक रोग है। जब तक बुरे आचरण शुरू नहीं होते, मनुष्य अपनी प्रकृति में स्थिर रहता है, किन्तु दुराचरण शुरू होते ही भला आदमी भी नीच प्रकृतिवाला बन जाता है।

२२—इन तीन बातों को अपना परम शत्रु समझो—धन का लोभ, लोगों से मान पाने की लालसा और लोकप्रिय होने की आकांक्षा।

२३—ईश्वर का जो गुणगान तुम अपनी जिह्वा से करो, उसकी सत्यता के विषय में यदि तुम्हारा हृदय और आचरण साक्षी देता हो तो ही ईश्वर के प्रति तुम्हारा प्रेम शुद्ध गिना जायगा।

२४—ईश्वर के प्रति वृत्ति रखने से तुम्हारी उन्नति ही होगी। इस मार्ग में कभी अवनति तो होनी संभव ही नहीं।

६—हातिम हासम

तपस्वी हातिम हासम सत्यनिष्ट, प्रेमी, सहनशील और वैरागी थे। उनके जीवन का अधिकांश समय ख़ुरासान में बीता था। ध्यान और शास्त्र-विचार उनके श्वासोच्छ्वासों में गुँथे हुये थे। सत्य और प्रेम का उल्लङ्घन करके उन्होंने एक भी पग आगे नहीं बढ़ाया। महर्षि ज़ुनैद कहते हैं—"हातिम हासम सरीखे महात्मा इस दुनिया में दुर्लभ हैं।" उनके लिये अनेक उत्तम ग्रंथ उपलब्ध हैं। बोल-चाल में तो वे बहुत ही कुशल थे।

एक दिन उन्होंने अपने सत्संगियों से पूछा कि यदि किसी के प्रश्न करने पर तुम कहो कि हमने हातिम से विद्या अथवा तत्त्व-ज्ञान प्राप्त किया है तो उसके यह कहने पर कि हातिम तो अपढ़ और अज्ञानी है, तुम क्या उत्तर दोगे? उनके निरुत्तर रहने पर उन्होंने कहा—"तुम यही बताना कि हमने तो दो बातें सीखी हैं, एक तो जो मिल जाय उसी से संतोष मानना और यह याद रखना—पराई आशा से भली निराशा।"

एक दिन उन्होंने अपने साथियों से कहा—"अब मैं कब तक तुम लोगों को उपदेश देने का भार उठा सकूँगा? किसी योग्य पुरुष को चुन लो तो ठीक।"

साथियों ने एक ऐसे आदमी का नाम बताया जो अनेक बार धर्म-युद्ध कर चुका था। उसका नाम सुनकर हातिम बोले—"ना, वे तो ग़ाज़ी हैं। इस धर्म-संस्था के लिये वे उपयोगी नहीं होंगे।"

साथियों ने एक ऐसे आदमी का नाम बताया जो दानवीर था। हातिम ने उसका नाम भी यह कहकर टाल दिया कि वह तो केवल दाता ही हैं।

इस पर साथियों ने एक ऐसे आदमी का नाम लिया जो बहुत बार

हज कर आया था। हातिम बोले—"भाई, वे तो हाजी ही हैं। मुझे तो ऐसा आदमी चाहिये जो सब प्रकार से उपयोगी हो।"

साथियों ने पूछा—"तब आप ही बतावें, किन-किन गुणों वाला मनुष्य उपयोगी होगा?"

हातिम—"जो सदा सर्वदा ईश्वर का भय रखता हो और प्रभु के सिवा किसी को आशा न रखता हो।"

एक बार एक धनवान् ने हातिम को अपने धन का बहुत-सा भाग देने की इच्छा प्रदर्शित की।

हातिम ने कहा—"ना, ना! मुझे इस संकट में मत डालो; कारण, तुम्हारी मृत्यु के बाद मुझे यह कहना पड़ेगा—'स्वर्गीय-जीवन देनेवाले मेरे हे प्रभु! आज-मेरे सांसारिक दाता की मृत्यु हुई है!"

एक बार एक नास्तिक से उनका इस प्रकार वार्त्तालाप हुआ—

नास्तिक—तुम्हें रोज़ आहार कहाँ से मिलता है?

महात्मा—प्रभु के अक्षय-भण्डार से।

नास्तिक—खाते हो लोगों का, नाम लेते हो ईश्वर का?

महात्मा—मैंने तुमसे कभी कुछ लिया है?

नास्तिक—मेरे पास से तो नहीं लिया, पर क्या तुम्हारा आहार स्वर्ग से आता है?

महात्मा—एक मेरा ही क्यों, सभी प्राणियों का आहार स्वर्ग से आता है।

नास्तिक—तो दरवाज़ा बन्द करके पड़े रहो, देखें आहार कैसे आता है।

महात्मा—बहुत ठीक। मैं बालक था तब दो वर्ष तक पड़ा ही रहता था तो भी आहार तो मेरे मुँह में पहुँच ही जाता था।

नास्तिक—क्या कभी ऐसा आदमी भी देखा है जो बिना बोए काट सके?

महात्मा—हाँ, बहुत से। एक तुम्हीं को देख रहा हूँ। बता तुमने कब बोए थे जो ये केश तेरे मस्तक पर उगते और कटते रहते हैं?

नास्तिक—ठीक, मान लो तुम आकाश में हो, तो वहाँ आहार कैसे आवेगा?

महात्मा—एक पक्षी की भाँति।

नास्तिक—और जो धरती में गड़े हो तो?

महात्मा—एक चींटी की भाँति।

ये सब उत्तर सुनकर वह नास्तिक स्तब्ध होगया। उसकी आँखों से पश्चात्ताप के आँसू निकलने लगे। दीन-भाव से उसने जब उपदेश के लिए प्रार्थना की तो वे बोले—भाई, लोगों की आशा छोड़। ऐसा करने से लोग भी तेरी आशा छोड़ देंगे। जो साधना करे, गुप्त रूप से प्रभु के निमित्त कर। ईश्वर अपने आप जगत की भलाई के लिए तेरे गौरव का प्रसार करेगा। तू दुनिया की सेवा करेगा तो दुनिया भी तेरी सेवा करेगी।

महर्षि हातिम कहा करते थे—रोज़ सवेरे शैतान आकर मुझसे प्रश्न करता—'आज तू क्या खायेगा?' मैं जवाब देता—'मुर्दा खाऊँगा।' वह पूछता—'क्या पहनेगा?' मैं कहता—'मुर्दे का कपड़ा'। वह आगे पूछता—'रहेगा कहाँ?' मैं बताता—'कब्र में।' मेरे ये उत्तर सुनकर शैतान मुझे बड़ा अभागा बताकर चल देता।

एक दिन महात्मा हातिम चार मास के लिए परदेश जाने को उद्यत हुए। उन्होंने अपनी पत्नी से पूछा—"तेरे लिए खाने-पीने का कितना सामान जुटा जाऊँ?"

स्त्री बोली—मेरी आयु हो उतने तक के लिए।

महात्मा—तेरी आयु जानना तो मेरे वश में नहीं।

स्त्री—तो फिर मेरी आजीविका भी आप के वश में नहीं।

स्त्री का प्रभु पर इतना दृढ़ भरोसा देखकर महात्मा प्रसन्न चित्त से परदेश चले गये। उनके चले जाने पर एक वृद्धा स्त्री ने महात्मा की स्त्री से पूछा—बहन, हातिम तेरी क्या व्यवस्था कर गये हैं?

उसने उत्तर दिया—बुढ़िया माँ, मेरे स्वामी तो खानेवाले थे, खाना देने वाला तो अब भी उसी प्रकार यहीं है।

तपस्वी हातिम जब परदेश जा रहे थे तो एक आदमी उनसे उपदेश लेने आया। उससे उन्होंने कहा—मुझे बन्धु—मित्र चाहिये तो उसके लिये ईश्वर बस है; संगी चाहिये तो उसके लिये विधाता बस है; मान-प्रतिष्ठा चाहिये तो संसार बस है; सान्त्वना देनेवाला चाहिये तो कुरानशरीफ बस है; उपदेश चाहिये तो मृत्यु का स्मरण बस है, और यदि मेरा यह कथन तेरे गले नहीं उतरता हो तो फिर तेरे लिये नरक बस है।

एक दिन उन्होंने हामिद लिफ़ाफ़ नामक मनुष्य से पूछा—"कैसे हो?" वह बोला—"कुशल और शान्ति-पूर्वक।" महात्मा बोले—"भाई, कुशल से तो वह है जो संसार के पार उतर गया और शान्ति-पूर्वक वह है जिसने स्वर्गीय जीवन का आनन्द पाया।"

कुछ लोगों ने उनसे पूछा—"आपकी क्या अभिलाषा है?" उन्होंने उत्तर दिया—"मेरी अभिलाषा है दिन-रात सुख में रहना। जिस दिन मैं ईश्वर का कोई अपराध नहीं करता वही एक दिन मेरे लिए सुख का दिन है।"

एक दिन किसी ने हातिम को बताया कि अमुक व्यक्ति के पास अपार धन है। महात्मा ने पूछा—"धन के साथ उसने आयु भी कमाई है क्या? आयु नहीं कमाई तो मरने पर वह धन उसके क्या काम आयेगा?"

किसी ने महात्मा से कहा—"आपको कुछ चाहिए तो मुझे आज्ञा दें।" महात्मा बोले—"हाँ, मेरी एक ही माँग है—न आप मेरे पास आवें और न मैं आपके पास आऊँ।"

एक साधु के यह पूछने पर कि आप नमाज़ किस प्रकार पढते हैं, उन्होंने बताया—"नमाज़ का समय होने पर पहले तो मैं वज़ू करता हूँ, बाह्य वज़ू, जल से और आन्तरिक वज़ू पश्चात्ताप से। फिर मस्जिद में जाकर क़ाबा के दर्शन करता हूँ, महात्मा इब्राहिम का स्थान अपनी भौंहों के बीच में देखता हूँ। स्वर्गलोक को अपने दाहिने, नरकलोक को बाएँ, संसार से पार उतरने के पुल को पाँवों तले और मृत्यु को पीठ पीछे समझकर मैं अपना हृदय ईश्वर को अर्पित करता हूँ और श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक स्तुति करता हूँ। पीछे सम्मानपूर्वक खड़ा होता हूँ। प्रभु के भय से मंत्र-जाप करता हूँ। विनयपूर्वक झुककर दीनता भरे वचन बोलता हूँ और धरती पर माथा टेक लेता हूँ। फिर गंभीरतापूर्वक बैठकर कृतज्ञता से सलाम करता हूँ। इस प्रकार मेरी नमाज़ पूरी होती है।"

एक बार कुछ पण्डितों के साथ बातचीत होते समय महात्मा ने कहा कि यदि ये तीन अवस्थायें तुम्हारी न हों तो, नरक अवश्यम्भावी है—(१) जो दिन बीते जारहे हैं उनके लिए खेद, (२) आज का दिन सर्वश्रेष्ठ गिनकर अपनी आत्मा के कल्याणार्थ यथाशक्ति कार्य करना और शत्रुओं को भी सन्तुष्ट करना। (३) कल ही तुम्हारी मृत्यु होने वाली है इसे सदा याद रखना।

महात्मा हातिम के बग़दाद आने पर वहाँ के ख़लीफ़ा ने उन्हें सम्मानपूर्वक बुला भेजा। उन्होंने आते ही कहा—विरागी पुरुष! सलाम।

ख़लीफ़ा—मैं कैसा विरागी? मेरी आज्ञा में तो सारा संसार है? विरागी तो हैं आप।

हातिम—नहीं, विरागी तो आप ही हैं।

ख़लीफ़ा—कैसे ?

हातिम—ईश्वर ने कहा है—भौतिक सम्पत्ति का कोई मूल्य नहीं। आपने दैवी सम्पत्ति को छोड़कर अपनाया है तुच्छ भौतिक सम्पत्ति को ! इसलिए सच्चे विरागी तो आप ही हैं। मैंने तो केवल इस असार संसार की वासनायें ही छोड़ी हैं और सर्वश्रेष्ठ दैवी सम्पत्ति में मैं आसक्त हुआ हूँ। इस प्रकार मैं तो आप सरीखे त्यागी के आगे तुच्छ ही हूँ।

उपदेश-वचन

१—अहंकार और लोभ से सावधान रहना। अहंकारी अपने से तुच्छ माने हुए लोगों का अपमान सहने के बाद ही मरने पाता है, तो भी जब तक दुनिया में भूख-प्यास से पीड़ा नहीं पा लेता, तब तक प्रकृति उसे संसार में से नहीं जाने देती।

२—पण्डितों और वैरागियों का अहंकार यदि धनवानों और राजाओं के अहंकार के साथ तोला जाय तो पण्डितों और वैरागियों का अहंकार वज़न में अधिक उतरेगा।

३—मुरदा, रोगी, आलसी और स्वस्थ चार प्रकार के मन होते हैं। धर्म-द्रोही का मन मुरदा, पापी का मन रोगी, लोभी व स्वार्थी का मन आलसी और भजन साधन में तत्पर व्यक्ति का मन स्वस्थ होता है।

४—प्रत्येक काम को करते समय याद रखना कि मैं जो काम कर रहा हूँ उसे ईश्वर देख रहा है, मैं जो कुछ बोल रहा हूँ उसे ईश्वर सुन रहा है। मौन धारण करते समय भी उसका कारण ध्यान में रखना क्योंकि ईश्वर तो उसे भी जानता है।

५—स्पृहा तीन प्रकार की है—भोगने, बोलने और देखने की। भोग भोगते समय ध्यान रखना कि ईश्वर देख रहा है, बोलते समय

ध्यान रखना कि सत्य का विनाश न हो; और देखते समय ध्यान रखना कि साधुता दूषित न होजाय।

६—इन चार बातों के बारे में आत्म-परीक्षा करते रहना (१) कोई भी शुभ कार्य करते समय तुम निष्कपट हो न? (२) जो कुछ बोल रहे हो निस्वार्थ भाव से ही न? (३) जो दान उपकार कर रहे हो बदले की आशा के बिना ही न? (४) जो धन संचय कर रहे हो वह कृपणता छोड़कर ही न?

७—इस संसार में एक अधार्मिक जो कुछ ग्रहण करता है वह लोभ के लिए ही और वह जो कुछ दान करता है वह भी अधर्म के निमित्त ही।

८—वैराग्य की पहली अवस्था में ईश्वर पर विश्वास उत्पन्न होता है, दूसरी अवस्था में सहनशीलता बढ़ती है और तीसरी अंतिम अवस्था में ईश्वर के प्रति प्रेम प्रकट होता है।

९—यदि तुम ईश्वर के प्रीतिपात्र होना चाहते हो तो ईश्वर जिस स्थिति में रखना चाहता है उसमें संतुष्ट होना सीखो।

१०—इब्राहिम आदम

तपस्वी इब्राहिम आदम पहले राजा थे, पर पीछे से उन्होंने सब कुछ छोड़कर फकीरी ले ली थी। वे प्रभु से डरनेवाले, सत्यनिष्ठ व कठोर साधक थे। उनका धर्म-प्रेम, ईश्वरानुराग और उनकी व्याकुलता अनुपम थी। उन्होंने बहुत से संतों का—विशेषतः धर्माचार्य अबुहनीफ का—सत्संग किया था। महर्षि ज़बनिद कहते हैं—"इब्राहिम ज्ञान के उद्यान के समान हैं।"

इब्राहिम जब बल्ख के राजा थे, तब उन्होंने रात में महल में सोते समय किसी की पद-ध्वनि सुनी। पैरों की आहट इतनी तेज़ थी कि उससे सारी छत हिलने लगी। चौंककर उन्होंने पूछा— "कौन है?" आनेवाले ने कहा—"डरो मत, मैं तुम्हारा शत्रु नहीं, मित्र हूँ। मेरा ऊँट खोगया है, उसे खोजने के लिए ही मैं यहाँ आया हूँ।" इब्राहीम बोले—"इतने ऊँचे महल में ऊँट कहाँ से आयेगा?" आने वाले ने कहा—"अरे अबोध! तू भी इतने ऊँचे राजमहल में स्वर्ण-सिंहासन पर बैठकर ईश्वर को खोजना चाहता है! मेरी बात ही से तुझे क्यों आश्चर्य हुआ?" इतना कहकर वह अज्ञात व्यक्ति सहसा गुप्त होगया। उसकी बातों का इब्राहिम के मन पर बहुत असर पड़ा। उनके हृदय में अशांति की अग्नि प्रज्वलित हो उठी, शोक और चिंता ने उनके मन में घर कर लिया।

इतने ही में एक और घटना घटी। एक दिन वे अपने कर्मचारियों के साथ राजकाज सँभाल रहे थे। इतने में एक तेजस्वी पुरुष वहाँ आ उपस्थित हुआ। किसी का भी साहस नहीं हुआ कि उससे कोई प्रश्न करे। उस तेजस्वी को देखकर सभी चित्र-लिखित-से हो गए। सीधे सिंहासन के पास आकर वह खड़ा होगया।

इब्राहिम ने उससे पूछा—आप क्या चाहते हैं?

"और कुछ नहीं, सिर्फ़ एक दिन इस मुसाफ़िर-खाने में रहना चाहता हूँ।" उत्तर मिला।

"यह मुसाफ़िर-खाना नहीं, राज-भवन है," इब्राहिम ने कहा।

"तुमसे पहले इस मकान में कौन रहता था?"

"मेरे पिता।"

"उनसे पहले?"

"मेरे दादा।"

"उनसे पहले?"

"उनका पिता"।

"जब इस मकान मे नए-नए आते रहे हैं और पुराने-पुराने जाते रहे है तो यह मुसाफ़िर-खाना नही तो क्या है ?" इतना कहकर आगन्तुक जाने लगा। इब्राहिम ने उसके पीछे जाकर पूछा—"आप कौन हैं ?"

"मैं हूँ खिजर*" इतना कहकर वह तेजस्वी पुरुष अदृश्य होगया।

अब तो इब्राहिम के हृदय में वैराग्य का पावक प्रज्वलित हो उठा। संसार में उन्हे क्षणभर भी चैन नहीं मालूम दी। एक दिन अपने नौकर को लेकर, घोड़े पर सवार होकर, वे वन की ओर चल पड़े। वन में जाकर वे इधर-उधर भटकने लगे और नौकर से अलग पड गए। इतने में अकस्मात् कोई आवाज़ हुई—'जाग्रत हो !' इब्राहिम तो विह्वल होकर इधर-उधर देखने लगे पर बोलनेवाला कोई दिखाई नहीं दिया। फिर भी दो बार वही आवाज़ सुनाई दी। राजा आश्चर्य-चकित होकर देखता ही रह गया। चौथी बार सुनाई दिया—"मृत्यु आकर तुझे जगावे उसके पहले जाग जा !"

ऐसी वैराग्य-सूचक वाणी सुनकर उन्होंने दीर्घ निःश्वास छोड़ा। मन संसार से विरक्त होने लगा और ज्यों-ज्यों संसार की माया दूर होने लगी त्यों-त्यों सत्य का प्रकाश प्रकट होने लगा। स्वर्ग का द्वार उनके लिए खुलने लगा और ईश्वरीय प्रकाश का उदय होने लगा। पश्चात्ताप से उनके नेत्रों में अश्रुधारा प्रवाहित हो चली। वन का राजपथ छोड़कर वे एक ओर चल पड़े। उधर उन्होंने एक रखवाले को देखा। वह फटे पुराने कपड़े पहने था, उसकी टोपी के भी चिथड़े होगए थे। इब्राहिम ने अपने बहुमूल्य वस्त्रालंकार और रत्न-जटित

---

*मुसलमान खिजर को एक अमर पैग़म्बर मानते हैं जो केवल भाग्यवान् पवित्र मनुष्य ही को दर्शन देकर कृतार्थ करते हैं।

मुकुट उसे देकर उसके फटे पुराने कपड़े स्वयं पहन लिए। वल्ख का राजा राजवेश छोड़कर मार्ग का भिखारी वन गया! इस प्रकार राज-सिंहासन छोड़कर नीची धरती पर उतरने पर ही उसकी दृष्टि में देवलोक का प्रकाश पड़ा। इस भूमि का राज्य छोड़कर ही वे परलोक का अमर राज्य प्राप्त करने में समर्थ हुए। वन पर्वतों में वे पैदल भटकने लगे और अपने पूर्व-कृत पापों के प्रायश्चित्त-स्वरूप करुण रुदन करने लगे।

इस प्रकार कई दिन तक भटकने के उपरांत निशापुर के पास की एक गुफा में उन्होंने वास किया। उस गुफा में नौ वर्ष तक एकांत वास करके उन्होंने अपने आंतरिक शत्रुओं के साथ घोर संग्राम किया; काम क्रोधादि शत्रुओं को पराजित किया। वहाँ रहकर वे अपना पोषण किस प्रकार करते? भूख लगने पर वे गुफा से बाहर आते, जङ्गल से लकड़ियाँ चुनकर उन्हें पास ही के निशापुर में बेंचते। जो कुछ मिल जाता उसमें से आधा ग़रीबों को दे देते और आधे से अपनी क्षुधा निवृत्ति करते। शुक्रवार के दिन वे निशापुर की मसजिद में नमाज़ पढ़ने आते। इस प्रकार नौ बरस बीत गए। अनेक बार गुफा में संकट आए, पर उनका रखवाला तो ईश्वर था! एक बार वे बरफ़ के नीचे दब जाने की हालत में आगए। दूसरी बार एक भयंकर अजगर से उनका सामना होगया। पर जिसकी भगवान् रक्षा करता है उसका कौन बाल बाँका कर सकता है?

ऐसा सुनने में आता है कि जब इब्राहिम राजपाट छोड़कर वन में चले गए, तो उन्हें एक धर्मपरायण पुरुष मिला। उसने इब्राहिम को प्रभु-नाम के महामंत्र की दीक्षा दी। उसी नाम का वे जप करने लगे। थोड़े ही समय में तेजस्वी महात्मा खिजर से उनकी भेंट हुई। खिजर ने उन्हें बताया—"जिसने तुम्हें मंत्र-जाप की दीक्षा दी थी वह मेरा भाई अलियास था।" उसके बाद खिजर के साथ उनकी धर्म और ईश्वर

संबंधी अनेक बातें हुईं। महापुरुष खिजर के प्रभाव से उनके जीवन में बहुत सुधार हुआ। एक प्रकार से खिजर उनके गुरु थे। उन्हीं के उपदेश से उन्होंने वैराग्य धारण किया था।

चौदह वर्ष तक विभिन्न स्थानों और जङ्गलों में ईश्वरोपासना में समय बिताकर वे मक्का गये। उनके आने का समाचार सुनकर मक्का-वासियों ने उनके स्वागत की तैयारियाँ आरंभ की। इसकी ख़बर पाकर इब्राहिम ने व्यापारियों के एक क़ाफ़िले के साथ इस प्रकार मक्का में प्रवेश किया कि कोई उन्हें पहचान न सका।

एक मक्कावासी खोजता-खोजता उसी क़ाफिले में आया और उसने स्वयं इब्राहिम ही से पूछा—"आपने तपस्वी इब्राहिम को कहीं देखा? मक्का-निवासी उनका स्वागत-सत्कार करना चाहते हैं।"

वे बोले—"अरे भोले मक्कावासियो! उस पाखण्डी इब्राहिम से तुम्हें क्या काम? उससे तुम्हें क्या लाभ होगा?"

इतना सुनते ही वह नगर-निवासी क्रोधित हो उठा। इब्राहिम को खरी खोटी सुनाकर उसने कहा—"नादान! उस महापुरुष को पाखण्डी बताने वाला तू स्वयं कोई पाखण्डी दीखता है।"

"हाँ, भाई मैं अवश्य ही पाखण्डी हूँ।" शान्त मन से उन्होंने उत्तर दिया। फिर वे अपने मन को सम्बोधित करके बोले—"रे दुष्ट मन! तुझे आज ठीक दण्ड मिला है।" और ईश्वर को अनेक धन्यवाद देने लगे। उनकी ऐसी मनोवृत्ति देखकर वह नागरिक ताड़ गया कि हो न हो यही महात्मा इब्राहिम हैं। वह रोकर उनके चरणों में गिर पड़ा और बार-बार क्षमा माँगने लगा; पर महात्मा ने उससे हँसकर कहा—"तुमने तो भाई ठीक ही कहा था। मैं ख़ुद जानता हूँ मेरा मन कितना पाखण्डी है।"

मक्का में रहकर उन्होंने बहुत से तपस्वियों का समागम किया। वहाँ भी वे अपने परिश्रम से निर्वाह किया करते। जङ्गल से लकड़ियाँ

अथवा शाकसब्जी ले आते और उन्हें बेंचकर पेट पालते राजपाट छोड़ते समय वे अपनी गृहस्थी में एक छोटा पुत्र छोड़ आये थे। बड़ा होने पर वह अपनी माता के साथ मक्का की यात्रा के लिए आया। इब्राहिम का नियम था कि वे सवेरे ही जङ्गल में चले जाते और शाम को मक्का लौटते, लकड़ियाँ बेंचते, ख़ुराक ख़रीदते, ग़रीबों को भिक्षा देते, शाम की नमाज़ पढ़ते और फिर ख़ुद खाते। कई बार आटा ख़रीदकर रोटी बनाते, ग़रीबों को खिलाते और ख़ुद खाते। मक्का में आकर पुत्र ने देखा, पिता सिर पर लकड़ियों का भार लिए आरहे हैं। यह देखकर वह व्यथित होकर रोने लगा। अपने स्वामी की यह दीन-दशा देखकर रानी भी रो पड़ी। काबा के समीप ही पिता-पुत्र का यह मिलाप हुआ था। इब्राहिम अपने पुत्र से प्रेमपूर्वक मिले। पुत्र भी वहीं मक्का में रहने लगा। कुछ काल बीतने पर उसका वहीं देहान्त होगया।

एक रात को इब्राहिम का एक साथी बहुत बीमार होगया। सर्दी की रात, बोटी-बोटी काँप रही थी और घास के उस झोंपड़े के दरवाज़े में किवाड़ भी नहीं थे। रोगी को सर्दी से बचाने के लिए इब्राहिम रात भर दरवाज़ा रोककर खड़े रहे!

एक दूसरे ने कहा है—"महर्षि इब्राहिम के साथ मैं मुसाफ़िरी में था। मार्ग में मैं बेहद बीमार होगया। अपना सर्वस्व बेचकर उन्होंने मेरी सेवा सुश्रूषा की, अपना सब कुछ समाप्त होने पर मेरा खच्चर बेच दिया। चेत होने पर जब मैंने खच्चर के बिक जाने पर इस बात का दुःख प्रदर्शित किया कि अब रास्ता कैसे कटेगा तो उन्होंने कहा—"मेरे कंधे पर बैठकर चलना।" उन्होंने मुझे तीन दिन तक अपने कंधे पर बैठाकर मुसाफ़िरी की।"

महात्मा इब्राहिम जङ्गल के निर्जन प्रदेशों में रहते थे। वहाँ एक बार यह घटना घटी। एक दिन उन्हें खाना नहीं मिला। ईश्वर को धन्यवाद देकर वे सारी रात ईश्वरोपासना में लीन रहे। दूसरा दिन

भी बिना खाए और प्रभु-भजन में बीत गया और इसी प्रकार सात दिन और बीत गये। भूख के कारण उनका शरीर सर्वथा अशक्त होगया, तो वे बोले—"हे प्रभो! अब कुछ खाने को मिल जाय तो........" इतना कहते ही वहाँ एक युवक आ उपस्थित हुआ और उन्हें सम्मान-पूर्वक अपने घर ले गया। उसे यह जानकर अपार हर्ष हुआ कि उसके अतिथि महात्मा इब्राहिम हैं। प्रसन्न होकर उसने कहा—"ऋषिवर! आपके शुभागमन से मैं कृत-कृत्य होगया। मेरा सारा धन आपके चरणों में अर्पित है। मैं आपका किंकर होकर रहूँगा।" उत्तर में इब्राहिम बोले—"भाई, तूने मुझे जो देने का विचार किया है, वह मैं तुम्हें वापस सौंपता हूँ। और अब मुझे आज्ञा दे, मैं अपने स्थान को लौट जाऊँ।" वे वहाँ से लौट पड़े। रास्ते में आकाश की ओर देखकर उन्होंने कहा—"हे पाक परवरदिगार ख़ुदा! मेरी तो केवल इतनी ही इच्छा है कि खाने को कुछ मिल जाय। मुझे तो रोटी चाहिये; इतने धन की लालच क्यों देते हो मुझे?"

एक बार एक धनवान् ने हज़ार मुद्रा की थैली इब्राहिम के पास लाकर उसे स्वीकार करने की प्रार्थना की। उत्तर में उन्होंने कहा—"मैं ग़रीब की एक पाई भी लेना नहीं चाहता।"

धनवान् ने कहा—"मैं तो ग़रीब नहीं, धनवान् हूँ।"

वे बोले—"पर तुम्हें तो अभी और धन की लालसा बनी हुई ही है न?"

धनवान् के "हाँ" कहने पर उन्होंने कहा—"धनवान् होते हुए भी जिसकी धनेच्छा दूर नहीं हो गई है, उसे मैं सबसे अधिक ग़रीब समझता हूं।"

कहा जाता है कि एक बार महात्मा इब्राहिम लगातार ४८ दिन तक स्वस्थ-चित्त से प्रभु-प्रार्थना से वंचित रह गए। इस बात से उनका

हृदय अंतर्वेदना से व्यथित हो उठा। कारण सोचने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि बसरा में उन्होंने एक आदमी को अपना कहकर एक फल खिलाया था, जो वास्तव में उनका न था। इसी पाप से उनका मन अस्वस्थ होगया और प्रार्थना-काल में वह अस्थिर रहने लगा। वे बसरे गये, फल के मालिक से उस फल की बकसीश माँगकर उन्होंने उसे हलाल करवाया, तब उनके मन को शांति हुई।

एक बार महात्मा इब्राहिम ने रास्ते में एक मूर्च्छित शराबी को देखा। वह धूलि-धूसरित हो रहा था, कै से उसका मुँह गंदा होरहा था, जिस पर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। इब्राहिम ने पड़ोस से पानी लाकर उसका मुँह धोया और कहा—"अरे भाई, जिस मुख से पवित्र प्रभु का नाम जपना चाहिये, उसे तू इतना गंदा रखता है?" होश आने पर जब शराबी ने लोगों से यह सब बात सुनी तो उसे बड़ा पश्चात्ताप हुआ और उसने उसी समय से सदा के लिये शराब छोड़ दी। इस घटना के बाद एक दिन इब्राहिम को ईश्वरीय वाणी सुनाई दी—"इब्राहिम! तूने तो एक आदमी का मुँह ही धोया है, पर मैं तो तेरे अंतःकरण को प्रतिदिन धोता रहता हूँ।"

एक बार वे सड़क पर चले जा रहे थे। उन्हें देखकर चौकीदार सिपाही ने पूछा—"तू कौन है?"

"गुलाम"

"कहाँ रहता है?"

"क़बरिस्तान में।"

इस उत्तर को उपहास समझकर सिपाही ने उनके दो-चार कोड़े लगा दिए। किन्तु बाद में जब उसे मालूम हुआ कि वे तो महात्मा इब्राहिम हैं तो उसने चरणों में गिरकर क्षमा प्रार्थना की।

महात्मा बोले—"तेरे कार्य से तो मुझे लाभ ही होगा। मैं तो तुम्हारे भले ही की कामना करूँगा।" आगे अपने उस उत्तर को

समझाते हुए उन्होंने कहा—"भाई ! सारे मनुष्य प्रभु के दास हैं, मैं भी उसी का दास हूँ, और उन सब ग़ुलामों का अंतिम घर तो एक क़बरिस्तान ही है, मैंने इसमें क्या असत्य कहा ?"

एक बार वे नाव में बैठे थे, उनके पास ही एक दुष्ट मुसाफ़िर बैठा था। उसने उनका गला पकड़कर पानी में ढकेल दिया। डूबते-तैरते वे किनारे लगे, तो भी उनके चेहरे पर क्रोध अथवा अप्रसन्नता नाम-मात्र को भी नहीं थी।

एक फ़क़ीर को अपनी ग़रीबी और फ़क़ीरी पर खेद करते देखकर उन्होंने कहा—"क्यों भाई, फ़क़ीरी तुम्हें मुफ़्त में मिल गई है क्या ?"

उसने उत्तर दिया—"तो क्या फ़क़ीरी कहीं मोल बिकती है ?"

महात्मा ने कहा—"हाँ, भाई मैंने तो बलख़ का राज देकर फ़क़ीरी ली है।"

एक दिन किसी ने उनसे पूछा—"राजा होकर भी तुमने अपना इतना बड़ा राज्य छोड़ दिया, ऐसी कौनसी विपत्ति आ पड़ी थी ?"

उन्होंने उत्तर दिया—"भाई, एक दिन मैंने शीशे में देखा, उसमें मेरे महल के स्थान में श्मशान का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था। उस श्मशान में मैं अकेला था, कोई बन्धु सहोदर साथ न था। यात्रा के लिये सामने एक बहुत लम्बा मार्ग था, पर मेरे पास यात्रा को कोई सामग्री नहीं थी। पीछे मैंने एक परम तेजस्वी न्यायाधीश को सिंहासनासीन देखा। अपने बचाव की अनेक दलीलें करने पर भी मेरी एक न चली। राज्य के प्रति मेरे मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ और सब कुछ त्याग कर मैंने फ़क़ीरी ले ली।"

एक दिन एक व्यक्ति ने उनसे कहा—"महात्मन् ! मैंने बहुत से पाप किये हैं। मुझे ऐसा मार्ग बताइये, जिस पर चलकर मैं अपना भला कर सकूँ।"

इब्राहिम बोले—"जब कभी तुमसे पाप बन पड़े, ईश्वर का दिया हुआ अन्न मत ग्रहण करो।"

वह व्यक्ति—"ईश्वर ही तो सब की आजीविका चलाता है, उसे छोड़कर कहाँ जाऊँ ?"

इब्राहिम—"यदि तू यह जानता है तो फिर उस एक मात्र अन्नदाता की आज्ञा के विरुद्ध आचरण ही क्यों करता है ? उस राजाओं के राजा की आज्ञा के विरुद्ध कुछ करना हो तो, उसके राज्य के बाहर जाकर ही करना चाहिये। या तो उसके दिये हुये अन्न-फल छोड़ देना चाहिये अथवा प्रभु के राज्य में रहकर पाप करना छोड़ देना चाहिये।"

वह व्यक्ति—"पर ईश्वर का राज्य छोड़कर तो जाऊँ भी कहाँ ? उस प्रभु का राज्य तो यत्र-तत्र सर्वत्र है।"

इब्राहिम—"तो फिर उसके राज्य में रहकर उसी की आज्ञा का भंग करना कैसे शोभा देगा ? फिर भी जो पाप करना ही हो तो ऐसी जगह कर, जहाँ ईश्वर तुझे नहीं देखता हो।"

वह व्यक्ति—"यह कैसे सम्भव है ? प्रभु तो सर्वज्ञ और सर्वव्यापक है।"

इब्राहिम—"तब तो यह सर्वथा अनुचित है कि उसी के राज्य में रहकर, उसकी आजीविका खाकर, उसी की आँखों के आगे, उसकी आज्ञा के विरुद्ध पापाचरण किया जाय ! खैर, एक काम तो करना। जब मौत आवे तो उससे कहना—घड़ी भर ठहर, मैं अपने किये का पछतावा कर लूँ।"

वह व्यक्ति—"कभी ऐसा हो सकता है ? मौत तो एक पल का भी समय नहीं देती।"

इब्राहिम—"ऐसा है तो फिर अभी से पश्चात्ताप आरंभ कर दे।"

वह व्यक्ति—"ऐसा तो मैं नहीं कर सकूँगा।"

इब्राहिम—"तो फिर न्यायाधीश के आगे तू क्या जवाब देगा? वह भी अभी से सोच रख जिससे तेरी पापात्मा को नरक में लेजाने का हुक्म होते ही वह जवाब सुना दे और नरक में जाने से इन्कार कर दे।

वह व्यक्ति—"ना, ना, यह तो कैसे कहूँगा। वे तो जबरन् पकड़ कर ले जायँगे।"

इब्राहिम—"तो फिर भविष्य में पाप न करने का आज ही से निश्चय कर।"

यह उपदेश सुनकर वह व्यक्ति अपने किए का पछतावा करता हुआ पाप-रहित जीवन व्यतीत करने लगा।

एक मनुष्य ने एक दिन इब्राहिम से पूछा—"महात्मन्! आप अपने साथ स्त्री को क्यों नहीं रखते? उन्होंने उत्तर दिया—"कौन-सी स्त्री मेरे जैसे अन्न-वस्त्र-विहीन मनुष्य के साथ रहेगी? मेरा वश चले तो मैं इस शरीर को भी छोड़ दूँ; फिर एक दूसरे शरीर का भार मैं क्यों उठाऊँ? अपने स्वातन्त्र्य को खोकर दूसरे की पराधीनता का बोझ उठाना तो दोनों की दुर्दशा करना होगा।"

एक बार किसी ने उनसे पूछा—"मैं रोज़ प्रभु की प्रार्थना करता हूँ, फिर भी वह मेरी बात क्यों नहीं सुनता?"

उन्होंने उत्तर दिया—" जीभ से प्रार्थना बोल देने और सिर झुकाने ही से तो कुछ नहीं होता। प्रार्थना एकाग्रता-पूर्वक होनी चाहिये। तू उसके प्रेरित महात्माओं को जानकर भी उनके बताए हुये मार्ग पर चलता नहीं, तू ईश्वर के प्रकाश, पानी और हवा आदि के दान का उपयोग दिन रात करके भी उसका उपकार नहीं मानता! प्रभुभक्तों की सङ्गति का तू मुँह से बखान तो करता है, पर वह रास्ता तू ने

कितना काटा है ? पापियों के लिये तो नरक ही है, यह जानकर भी उससे छूटने का तू उपाय नहीं करता ! यह जानकर भी कि अवगुण और शैतान तेरे परम शत्रु हैं, तू उन्हीं से मैत्री जोड़ता है ! यह जानकर भी कि मौत सिर पर सवार है तू उसका सामना करने की तैयारी नहीं करता ! तू ने स्वयं अपने हाथों अपने माँ, बाप, मित्र और बालकों को क़ब्र में सुलाया फिर इस अनित्य संसार से शिक्षा ग्रहण क्यों नहीं करता ? तू ख़ुद पाप-प्रपंच में लीन रहता है, फिर भी दूसरों के दोष खोजता रहता है ! अब कह, तेरे सरीखे आदमी की बात भगवान् कैसे सुने !"

उपदेश-वचन

१—एक प्रभु का सदैव स्मरण रखो, मनुष्यों की बातें रहने दो।

२—तुमने धन, सद्गुणादि को क़ैद कर रखा है, दान, भजनादि के लिये उन्हें मुक्त करो; और जीभ, अज्ञान, लोभ, मोहादि जो स्वतन्त्र हैं, उन्हें क़ैद करो।

३—इस संसार की मुसाफ़िरी में मैं सम्पत्ति के प्रदेशों में कृतज्ञता के वाहन का, पूजन-अर्चन के प्रदेशों में प्रभु-प्रेम के वाहन का, विपत्ति के प्रदेशों में सहनशीलता के वाहन का और पाप के प्रदेशों में प्रायश्चित्त के वाहन का उपयोग करता हूँ।



११—अहमद हर्ब

तपस्वी अहमद हर्ब नशापुर के वासी थे। उनके बारे में महर्षि इयहा ने एक बार कहा था—"मेरी मृत्यु के समय मेरा मस्तक महर्षि अहमद हर्ब के चरणों में नत हो, ऐसी मेरी इच्छा है।"

धर्म-परायण अहमद इब्ने निरंतर 'सुभान अल्लाह' का जप करते रहते थे। एक बार हजामत बनवाते समय नाई ने उन्हें ओंठ हिलाने से रोकने के लिए निवेदन किया। इस पर वे बोले—"ओंठ अपना काम करते हैं, तू अपना काम कर।"

उनके एक मित्र ने उन्हें पत्र लिखा जिसमें उनके पत्र न आने का उलहना था। नमाज़ पढते समय उन्हें उस पत्र की याद आई, और उन्हें अनुभव हुआ कि ऐसा पत्र-व्यवहार का संबंध भी प्रभु के मार्ग में विघ्न उपस्थित कर सकता है। इसलिए उन्होंने अपने मित्र को लिखा—"मेहरबानी करके आगे से पत्र न लिखना; कारण, ईश्वर-स्मरण को छोड़कर पत्र लिखने का अवकाश मैं नहीं पा सकता। मेरी इच्छा है तुम भी ईश्वर-भजन ही में लीन रहो। बस, सलाम!"

अहमद की माता एक दिन भोजन बनाकर उनके पास लाई और बोलीं—"बेटा, यह भोजन अपने घर का है इसलिए बिना संदेह इसे खा ले।"

अहमद—"नहीं माँ, अपने अन्न में पड़ोसी का अन्न भी एक दिन मैंने मिलते देखा था। उस पड़ोसी का अन्न पाप की कमाई का है। इस भोजन को खाने में मुझे बहुत संकोच होगा।"

उन्हीं के नाम का एक व्यापारी नशापुर में था जो गले तक संसार की मोह-माया में फँसा था। महात्मा अहमद भगवान् में इतने लीन थे तो व्यापारी अहमद अपने धन में। एक बार की बात है रुपया-पैसा गिनते-गिनते उसने अपनी सेविका को भोजन का थाल लाने का आदेश दिया। नौकरानी थाल लेकर आई, पर वह तो रुपया गिनने ही में मशगूल रहा। नौकरानी थाल लेकर लौट गई। मालिक ने उसे फिर आवाज़ दी। वह फिर आई पर धन से उसका ध्यान भोजन की ओर नहीं खिंचा। बार-बार ऐसा हुआ, आखिर मालिक

का ध्यान आकर्षित करने के लिए उसने उसके ओंठों पर भोज्य पदार्थ लगा दिया। थोड़ी देर बाद अन्न के स्वाद से उसे चेत हुआ तो उसने समझा मैं भोजन कर चुका। मुँह धोकर वह फिर हिसाब-किताब में लग गया।*

९- एक बार नशापुर के कई प्रतिष्ठित सज्जन महात्मा अहमद के यहाँ मिलने आए। महात्मा का एक उद्दंड दुराचारी पुत्र था। उस समय वह सुरा-पान करके घर से गाता-गाता बाहर निकला; पर उन आगत सज्जनों की ओर उसने ज़रा भी आदर नहीं दिखाया, जिससे उन्हें आश्चर्य हुआ। उनका आशय ताड़कर महात्मा बोले—"एक रात्रि को पड़ोसी के यहाँ से मिठाई आई। हम दोनों स्त्री-पुरुष ने उसे खाया। खाने के बाद मालूम हुआ कि वह मिठाई राजा के यहाँ की थी। उसी रात्रि को इस बालक ने गर्भवास किया। राजा के रजोगुणी अन्न से इसकी उत्पत्ति हुई है, इसीलिए यह इतना दुराचारी है।

महात्मा अहमद का बहराम नाम का एक पड़ोसी था। लाखों का माल वह परदेश में व्यापार के लिए भेजता। एक बार उसका बहुत-सा धन लुटेरों ने लूट लिया। यह बात सुनकर अपने मित्रों के साथ महात्मा अहमद भी उसे आश्वासन देने के लिए गए। बहुत ही सम्मान-पूर्वक उनका स्वागत करके उसने सबके भोजन की व्यवस्था की। उन दिनों अकाल था, उसने समझा यह महात्मा भी दूसरों के साथ भोजन पा जाने की आशा से आया होगा।

महात्मा अहमद बोले—"भाई, मेरे भोजन की चिंता मत कर, मैं खाने नहीं, पर तेरे खोये धन के लिए आश्वासन देने आया हूँ।"

९/* जैसी प्रीति हराम में, वैसी हरि में होय।
चला जाय बैकुण्ठ में, पला पकड़े न कोय॥

बहराम—"हाँ, हुआ तो ऐसा ही है। पर मुझे इसका दुःख नहीं है। मैं तो इसके लिए भगवान् का उपकार ही मानता हूँ; कारण, मेरा धन भले ही दूसरे लूट कर ले गए हों; पर मैंने किसी का धन नहीं लूटा। दूसरे लुटेरे मेरा आधा ही धन ले गए हैं आधा तो बाक़ी है। तीसरे सांसारिक अनित्य धन ही लूटा गया है, धर्म-रूपी सच्चा धन तो रह गया है न!"

यह बात सुनकर महात्मा बहुत प्रसन्न हुए और अपने साथियों से बोले—"सुनो, इनकी बातों में कितना सच्चा धर्म-प्रेम समाया है।"

महात्मा अहमद रात को प्रभु-स्मरण किया करते थे। एक बार उनके एक शिष्य ने उनसे बीच-बीच में एक आध रात सो लेने के लिए प्रार्थना की। उत्तर में उन्होंने कहा—"जिस आदमी के नीचे नरक की अग्नि प्रज्ज्वलित हो और ऊपर स्वर्ग का राज्य जिसे बुला रहा हो, वह नींद में समय कैसे गँवावे!"

उपदेश वचन

१—मेरा बस चले तो मैं अपने निंदकों को ख़ूब इनाम दूँ; कारण, उनकी निंदा और द्वेष से तो मेरा हित-साधन ही होता है।

२—प्रभु को सदा सर्वत्र उपस्थित समझकर यथाशक्ति उनका ध्यान-भजन और आज्ञापालन करते रहना। इस मायावी संसार ने आज तक असंख्य जनों का संहार किया है, उसी प्रकार तुम्हारा भी विनाश न हो जाय इसका ध्यान रखना।



१२—राबिया

तपस्विनी राबिया धर्मपर प्राण न्योछावर करनेवाली परम श्रद्धावान् सदाचारी थी। पुरुषों की पंक्ति में यह नारी का चरित्र कैसा?

स्वयं हज़रत मुहम्मद साहब ने कहा है—"निश्चय जानो, प्रभु तुम्हारी वाह्य आकृति देखनेवाला नहीं; वह तो तुम्हारे मनोभाव और उद्देश की तरफ़ ही देखता है।" अर्थात्, पुरुष हो अथवा स्त्री, महत्त्व की बात तो है उनकी धर्म-निष्ठा। पैग़म्बर साहब ने कहा है—"मनुष्य की भली-बुरी वृत्तियों पर ही उसकी पारलौकिक भलाई-बुराई का आधार है।" पैग़म्बर साहब की सहधर्मिणी आयशा बीबी के जीवन से जिस प्रकार शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए उसी प्रकार उनकी अनुगामिनियों के जीवन से भी। भक्त का हृदय परमात्मा में लगा होना चाहिए, फिर वह नर हो अथवा नारी! तुर्किस्तान में धार्मिक उच्च भावना में राबिया अद्वितीय थीं। महात्मा हुसेन बसराई राबिया के बिना आए अपना धार्मिक प्रवचन आरंभ नहीं करते थे।

तुर्किस्तान के बसरा नगर में किसी ग़रीब के घर राबिया का जन्म हुआ था। अरबी भाषा में 'राबा' का अर्थ है—चौथा, जिससे मालूम होता है कि वह चौथी पुत्री थीं। राबिया के बड़ी होते ही देश में अकाल पड़ा और उनके माता-पिता की मृत्यु होगई। इससे राबिया का अपनी दूसरी बहनों से भी बिछोह होगया। एक नीच पुरुष ने राबिया को अनाथ बालिका देखकर एक दुष्ट धनवान् के हाथ बेच दिया। दासी राबिया से वह ख़ूब काम लेता, और वह काम नहीं कर पाती तो उसे मारता-पीटता। असहनीय अपमान और क्लेश के कारण राबिया एक दिन वहाँ से निकल भागी। भय से भागते-भागते वह रास्ते में गिर पड़ी और उसका एक हाथ टूट गया। अपार दुःख में पड़ी राबिया के चारोंओर अंधकार ही अंधकार दिखाई दिया, ऐसी अवस्था में उसने धरती पर मस्तक टेककर प्रार्थना की—

"हे परमेश्वर! मैं बिना माँ-बाप की अनाथ बालिका—एक पराधीन दासी—हूँ। मेरा हाथ टूट गया है, तो भी मुझे अपनी इस

दुर्दशा का शोक नहीं है। मैं तुझे भूलूँ नहीं और तू मुझ पर प्रसन्न रहे, बस यही एक प्रार्थना है।"

उसके बाद वह एक दूसरे सेठ के यहाँ जाकर नौकरी करने लगी। दिन में मालिक की चाकरी करती और रात को अपने धर्म-ग्रंथ पढ़ती और उपासना करती।

इस प्रकार कुछ दिन बीत गए। एक दिन सेठ ने रात को उठकर देखा राबिया अपनी कोठरी में बैठी ध्यान-मग्न हो रही है। ध्यान-मग्न होने पर उसने प्रार्थना की—

"हे प्रभु, तू सब कुछ जानता है, तुझसे कुछ भी छिपा नहीं। मैं सदैव तेरी आज्ञा का पालन करती रही हूँ और आज्ञा-पालन करते-करते ही मरूँ यही मेरी मनोकामना है। तेरी ही सेवा में मेरा रात-दिन बीते ऐसी मेरी इच्छा है, पर मैं क्या करूँ? तू ने मुझे पराधीन दासी बनाया है, इसलिए मैं सारा समय तेरी उपासना के लिये नहीं दे सकती। हे प्रभु, इसके लिए मुझे क्षमा कर!"

राबिया की ऐसी प्रभु-प्रार्थना सुनकर वह सेठ अत्यन्त प्रभावित हुआ। उसने राबिया के मुख पर अद्भुत तेज देखा। वह अलौकिक रूप देखकर वह स्तब्ध हो गया। ऐसी पवित्र और पूज्य रमणी से सेवा का काम न लेकर उसकी सेवा मुझे करनी चाहिये, ऐसा विचार उसके मन में उठा। दूसरे ही दिन उसने राबिया को दासत्व से मुक्त करके श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक कहा—"आप मेरे घर रहेंगी तो मैं आपकी सेवा करूँगा, आप अन्यत्र जाना चाहें तो आपकी इच्छा।" मालिक के मन में ईश्वर की प्रेरणा को देखकर राबिया उसे नमस्कार कर विदा होगई। वहाँ से जाकर उसने कठोर तपश्चर्या में जीवन बिताया।

रात-दिन धर्म-ग्रंथों के पठन और उपासना ही में वे लीन रहतीं। उन दिनों बसरा में महर्षि हुसेन रहते थे। राबिया कई बार उनकी धर्म-सभा में आती और धर्म-चर्चा में भाग लेती। एक बार निर्जन

बन में जाकर उन्होंने योगाभ्यास किया और फिर एक मसजिद में आकर रहने लगीं। आयु का शेषांश उन्होंने मक्का में बिताया और उसी पवित्र भूमि में उनका अवसान हुआ। इब्राहिम आदम से उनकी मुलाकात और धर्म-चर्चा मक्का ही में हुई थी।

जीवन-पर्य्यन्त कौमार्य व्रत पालनकर, ईश्वर भजन में जीवन बिताने वाली देवियाँ इस जगत में गिनती की ही हुई हैं। इतिहास कहता है, राबिया आज से बारह सौ वर्ष पहले थीं। अपनी साधना से राबिया ने अपना जीवन ऐसा बना लिया था कि उनका दर्शन करने और उपदेश सुनने के लिए लोगों की भीड़ लगी रहती। उनका निष्कपट ईश्वर-प्रेम, पवित्र चरित्र और अद्भुत प्रभाव देखकर तथा उनकी तेजस्वी वाणी सुनकर लोग चकित होजाते, उन्हें नमस्कार करते और उनके नाम श्रवण से अपने को कृतार्थ मानते।

इस परम साध्वी के बारे में महर्षि हुसेन ने कहा है कि उन्होंने बिना किसी की शिक्षा के और बिना किसी गुरु के केवल स्वानुभव से अलौकिक धर्म ज्ञान प्राप्त किया था।

महर्षि हुसेन को राबिया के प्रति अतीव श्रद्धा थी। सप्ताह में वे एक बार प्रवचन करते। श्रोताओं में बहुत से ज्ञानियों के आजाने पर भी एक बार राबिया के आने में देर होने के कारण उन्होंने अपना उपदेश आरंभ नहीं किया। इस पर कुछ लोगों ने आपत्ति की तो उन्होंने कहा—"जो शराब हाथी के पेट के लिये तैयार किया गया है उसे मैं चींटी के आगे रखकर क्या करूँ ?

उपदेश करते-करते हुसेन जब उत्साह के आवेग में आजाते तो राबिया की ओर देखकर कहते—"मेरी वाणी में जो तेज-सा आ जाता है वह आता है राबिया के हृदय से !"

एक दिन हुसेन ने उनसे पूछा—"तुम्हारी अभिलाषा विवाह करने की है ?" राबिया ने उत्तर दिया—"विवाह तो होता है शरीर का;

पर मेरे पास तो शरीर ही कहाँ है ? यह शरीर तो मैं ईश्वर को अर्पित कर चुकी हूँ, यह तो उसी की आज्ञा के अधीन है और उसी के काम में रत है । कहो, मैं अब कौन-से शरीर का विवाह करूँ ?"

एक बार हुसेन ने राबिया से पूछा—"तुमने यह उच्च पद कैसे प्राप्त किया ?"

राबिया—"मुझे मिली हुई सब वस्तुओं को खो कर ।"

हुसेन—"तुम ईश्वर को कैसा समझती हो ?"

राबिया—"ईश्वर ऐसे हैं वैसे हैं, यह तो आप जानते हैं । मैं तो उसे अरूप, अमाप जानती हूँ ।"

एक दिन महर्षि हुसेन ने उनसे कहा—"परलोक में यदि मुझे एक घड़ी भर भी ईश्वर भजन में प्रमाद होगा तो मैं ऐसा विलाप और रुदन करूँगा कि उससे स्वर्ग के देवों को मुझ पर दया आजायगी ।"

राबिया—"आपने बहुत ठीक कहा; किन्तु इस लोक में एक आध घड़ी ईश्वरोपासना में शिथिलता आने पर ऐसा आक्रंदन अपने में प्रकट हुआ हो तभी तो परलोक में ऐसा कर सकने की आशा करनी चाहिये ।"

तपस्वी राबिया एक बार वसन्त ऋतु में अपनी झोंपड़ी में स्वस्थ मन से बैठी थीं । उनकी दासी ने कहा—"माँ, ज़रा बाहर आकर प्रकृति की शोभा तो देखो ।"

राबिया—"तू एक बार भीतर आकर प्रकृति-निर्माता के सौन्दर्य को तो देख !"

किसी ने राबिया से पूछा—"आप ईश्वर की पूजा करती हैं तब क्या उसे देख सकती हैं ?"

राबिया—"मैं उसे देखती नहीं तो उसकी पूजा भी नहीं करती न ?"

एक दूसरे व्यक्ति ने उनसे पूछा—"पापरूपी राक्षस को तो आप शत्रु ही समझती हैं न ?"

राबिया—"ईश्वर-प्रेम में मग्न रहने के कारण न मुझे उससे शत्रुता करनी पड़ी और न कोई लड़ाई।"

एक बार बहुत से लोग एकत्रित थे, राबिया ने उनमें से एक से पूछा—"तुम किसलिये परमेश्वर की सेवा करते हो?"

वह बोला—"नरक की भयानक वेदना से छुटकारा पाने के लिये।"

यही प्रश्न दूसरे से करने पर उसने कहा—"उस रमणीय स्वर्ग के वैभव और सुख की अभिलाषा से मैं भक्ति करता हूँ।"

राबिया—"भय अथवा लोभ से प्रभु सेवा करना अधूरे भक्त का काम है। मान लो, स्वर्ग नरक होते ही नहीं तो क्या तुम प्रभु-भक्ति नहीं करते? सच्चे भक्त की भक्ति लोक-परलोक की कामना बिना होती है।"

एक बार एक मनुष्य माथे पर पट्टा बाँधकर उनके पास आया। उसका सिर दर्द कर रहा था। राबिया ने उससे पूछा—"कितने वर्ष के होगए?"

"तीस वर्ष का?" उत्तर मिला।

"अबतक स्वस्थ थे या अस्वस्थ?"

'स्वस्थ।'

"इतने वर्ष तक तो तुमने कृतज्ञता प्रदर्शित करने के लिए माथे पर कुछ नहीं बाँधा, और आज अस्वस्थ होते हो शोक की निशानी में यह यहाँ बाँध लिया न!"

एक बार एक धनिक ने राबिया को फटे पुराने कपड़े पहने देखकर कहा—"पूज्य देवि! यदि आप संकेत मात्र भी कर दें तो इस संसार में एक ऐसा व्यक्ति है जो आपकी दरिद्रता दूर कर दे।"

राबिया—"सांसारिक दरिद्रता दूर करवाने के लिए किसी से माँगते तो मुझे अत्यन्त लज्जा होती है। देख, इस संसार में उस परमात्मा

का राज्य फैला हुआ है, तो फिर उसे छोड़कर मैं दूसरे के पास क्यों माँगूँ? मुझे जो कुछ लेना होगा उसी के हाथ से लूँगी।"

एक मनुष्य ने कहा है कि एक बार मैंने राबिया के पास जाकर देखा उसके पास केवल एक टूटा हुआ जल-पात्र था। यह देखकर मुझे दुःख हुआ और मैंने उनसे कहा कि मेरे बहुत से मित्र हैं, यदि आप आज्ञा दें तो मैं उनके पास से आवश्यक चीज़ें ला दूँ।

राबिया ने उत्तर दिया—"तुम भूल करते हो। वे कोई मेरे अन्न-दाता नहीं हैं। जो जीवनदाता है वह क्या ग़रीबी के कारण ही ग़रीबों को भूल जायगा? और धनिकों को उनके धन के कारण याद रखेगा?"

राबिया के पास बैठकर एक फ़क़ीर सांसारिक संकटों का वर्णन करने लगा, जिस पर उन्होंने कहा—"तुम तो बहुत ही संसार-प्रेमी दिखाई देते हो। ऐसे न होते तो ईश्वर की बात छोड़कर ऐसी बात क्यों करते? एक फ़क़ीर संसार की भली बुरी बातों में नहीं पड़ता, इतना ही नहीं वह उसका स्मरण भी नहीं करता। जिस वस्तु को वह ज़्यादा चाहता है उसी की बात वह ज़्यादा करता है।"

एक बार दो फ़क़ीर घूमते-घूमते राबिया के दर्शन के लिए आए। वे भूखे थे, इसलिए आपस में बात करने लगे—"यदि कुछ खाने को मिल जाय तो खालें।"

राबिया के पास सिर्फ़ दो रोटियाँ थीं। फ़क़ीरों के लिए वे उन्हें ले आईं, पर इतने ही में एक तीसरा फ़क़ीर आकर रोटी माँगने लगा। राबिया ने वे दोनों रोटियाँ उसे दे दी। यह देखकर उन दो फ़क़ीरों को बहुत आश्चर्य हुआ। शीघ्र एक दासी रोटियाँ लेकर आई और राबिया से बोली—"मेरी मालकिन ने यह रोटियाँ आप के लिए भेजी हैं।" राबिया ने गिनकर देखा अठारह रोटियाँ थीं। उन्होंने उस दासी को बिना रोटी लिए लौटा दिया।

दासी ने आकर अपनी मालकिन को सारा हाल कह सुनाया। उसने उन रोटियों में दो और मिलाकर दासी को फिर भेजा। अबकी बार राबिया ने गिनकर देखा बीस रोटियाँ थीं। उन्होंने रोटियाँ रख लीं और दोनों फ़क़ीरों के आगे रख दीं। भोजन करते-करते उन्होंने उनसे इस बात का रहस्य पूछा तो उन्होंने बताया—"आप दोनों भूखे हैं यह बात मैं जान गई थी। मेरे पास दो ही रोटियाँ थीं, उनसे आप दोनों का पेट नहीं भरता इसलिए मैंने वे दो रोटियाँ उस तीसरे फ़क़ीर को दे दी। उसके बाद मैंने प्रभु से प्रार्थना की कि हे प्रभु! तुमने कहा है कि मैं दान से दस गुना वापिस देता हूँ, इस बात पर मेरी श्रद्धा है। आप के संतोष के लिए मैंने अभी दोनों रोटियाँ दान में दी हैं। उन अठारह रोटियों को देखकर मैंने समझा था भेजने में भूल हुई, पर बाद में बीस रोटियाँ होने से ये दस गुनी हो गईं तो मैंने उन्हें ले लिया।"

राबिया के मुँह से कभी-कभी चीख़ निकल पड़ती थी। बिना किसी शारीरिक वेदना के ऐसी चीख़ मारने का कारण पूछने पर उन्होंने बताया—"मेरा रोग बाहरी नहीं, भीतरी है। उसे समझना एक दुनयावी आदमी के लिए सहज नहीं और न कोई हकीम ही उसका इलाज़ कर सकता है। मेरे रोग का तो एक इलाज़ है—उस प्रभु का दर्शन!"

एक दिन राबिया उदास चित्त से बैठी थीं। किसी ने उनकी उदासी का कारण पूछा तो उन्होंने बताया—"आज सवेरे मेरा मन स्वर्ग जाने के लिए व्याकुल हो रहा था; पर भीतरी आवाज़ के रूप में मेरे परम मित्र ने उस इच्छा की अवगणना की, यही मेरी उदासी का कारण है।"

एक दिन एक धनवान ने हुसेन बसराई के मारफ़त राबिया की आर्थिक सहायता करनी चाही। इस पर उन्होंने धन को अस्वीकार

करते हुये हुसेन को उत्तर दिया—"इस दुनिया में जो आदमी प्रभु की निंदा करता है उसे भी वह परम उदार परमात्मा अन्न-जल देता है। फिर जिसकी रग-रग में प्रभु-प्रेम व्याप्त है, जो हरएक साँस के साथ उसके नाम की धुन लगाए है उसे क्या वह अन्न-जल देने में कंजूसी करेगा ? जब से मैं उसकी महत्ता जान गई हूँ, मैंने लोगों की ओर से मुँह मोड लिया है। जिस धन के बारे में मुझे यह मालूम नहीं कि यह पाप की कमाई है या धर्म की, उसे मैं कैसे मंजूर करूँ ?"

एक बार राबिया बीमार हो गईं तो उनकी तबीअत का हाल पूछने के लिए अब्दुल उमर और सुफियान उनके पास गए। सुफियान ने कहा—"देवि, आप प्रार्थना करें। प्रभु आप को ज़रूर तन्दुरुस्त करेगा।"

राबिया ने उसकी ओर देखकर कहा—"सुफ़ियान ! तुम नहीं जानते किसी इच्छा से रोग पैदा होता है ! मेरे इस रोग में क्या उस प्रभु का हाथ नहीं है ?"

सुफ़ियान बोला—"हाँ, उसकी ऐसी इच्छा तो होगी ही,।"

राबिया—"इतना मालूम है तो फिर यह क्यों कहते हो कि उसकी इच्छा के विरुद्ध मैं प्रार्थना करूँ ? जो अपना परम मित्र है उसकी इच्छा के विरुद्ध वर्ताव करना क्या एक स्नेही के लिए वाजिब है ?"

सुफियान ने पूछा—"कुछ खाने की इच्छा है ?"

राबिया—"सुफ़ियान ! तुम ज्ञानी पुरुष हो, फिर भी ऐसी बात क्यों पूछते हो ? दस वर्ष से अच्छे खजूर खाने की इच्छा है, और तुम जानते हो बसरा में काफ़ी खजूर मिलते हैं। फिर भी मैंने आज तक खजूर चखे भी नहीं। मैं तो उसकी दासी हूँ। दासी की अपनी इच्छा कैसी ? मेरी जो इच्छा मेरे प्रभु की इच्छा के विरुद्ध हो, वह सर्वथा त्याज्य है।"

राबिया की प्रार्थना ऐसी होती थी—"हे परमेश्वर ! तूने इस लोक में मेरे लिए जो कुछ निश्चय किया हो वह तू अपने विरोधियों—नास्तिकों—को दे दे; और परलोक के लिए जो कुछ निश्चय किया हो वह अपने मित्रों—भक्तों को देना। कारण, मेरे अपने लिए तो एक तू ही काफ़ी है, तेरे सिवाय मैं और कुछ नही चाहती। मैं यदि नरक के डर से ही तेरी पूजा करती होऊँ तो हे प्रभु ! मुझे उस नरक की आग में जला डालना, और यदि मैं स्वर्ग के लोभ से तेरी सेवा करती होऊँ तो वह स्वर्ग मेरे लिये हराम हो; किन्तु यदि मैं तेरी प्राप्ति के लिये ही तेरा पूजन करती होऊँ तो तेरे परम प्रकाशमान पूर्ण पवित्र, निर्मल, निर्दोष, अपार सुन्दर स्वरूप के दर्शन से मुझे वंचित न रखना।"

उपदेश-वचन

१—ईश्वर पर सतत दृष्टि रखना ही ईश्वरीय ज्ञान का फल है।

२—ईश्वर की प्रार्थना से पवित्र हृदय को जो उसी स्थिति में उस प्रभु के चरणों में अर्पित कर देता है, अपनी दूसरी सब सँभाल भी उस प्रभु पर ही छोड़ देता है और ख़ुद उसके ध्यान-भजन में रत रहता है, वही सच्चा महात्मा है।

३—पापी मनुष्य को जैसा रुचता है वैसा प्रायश्चित्त वह कर लेता है। वह प्रायश्चित्त यदि प्रभु के दरबार में स्वीकार हो जाय तो फिर प्रायश्चित्त का मतलब ही क्या ? उसकी आज्ञा के अनुसार किया हुआ प्रायश्चित्त ही वह स्वीकार करता है।

४—दास अपने प्रभु के प्रति संतुष्ट है, यह कब कहा जाय ? संपत्ति मिलने पर जिस प्रकार लोग आभार मानते हैं; उसी प्रकार दुःख मिलने पर भी उसे उपकार समझ सके तब !

५—हे मानवो ! ईश्वर के मार्ग में तो न आँखों की ज़रूरत है और न जीभ की; ज़रूरत है पवित्र हृदय की। ऐसा प्रयत्न करो जिससे वह पवित्रता पाकर तुम्हारा मन जाग जाय।

६—बाहर-भीतर से इस तरह जागा हुआ मन एक ऐसे दोस्त का काम देता है कि फिर किसी दूसरे दोस्त की ज़रूरत ही नहीं रह जाती।

७—पूरे जागे हुये मन का यही अर्थ है कि ईश्वर के सिवा दूसरी किसी चीज़ पर वह चले ही नहीं। जो मन उस परवरदिगार की ख़िदमत में लीन हो सकता हो, उसे फिर दूसरे किसी की क्या ज़रूरत ?



१३—हयहया

तपस्वी हयहया रीडस के रहनेवाले थे। वे बहुत ही आशावादी थे; इसीलिए वे बहुत ही कठिन साधना प्रसन्नमन से कर सके थे। उनका एक भाई था जो मक्का में रहता था। उसने अपने एक पत्र में उन्हें लिखा—"मेरी तीन मंशायें थीं। उनमें से दो तो पूरी होगईं और अभी एक बाक़ी है। उसकी सफलता के लिये तुम भी प्रार्थना करना। मेरी एक मन्शा थी जीवन का आख़िरी भाग किसी पवित्र भूमि में बिताना; मैं आजकल मक्का के पवित्र तीर्थ में रहता हूँ। मेरी दूसरी मन्शा थी कि मुझे जो चाकर मिले वह मेरी पूरी सेवा करे और उपासना के समय मुझे वज़ू के लिए पानी ला दिया करे। मुझे एक होशियार दासी मिल गई है और उसकी ख़िदमत से मुझे संतोष है। अब मेरी तीसरी मन्शा है मरने के पहले आपका दर्शन करने की; उम्मेद है, भगवान् एक दिन उसे भी पूरी करेगा।"

उत्तर में तपस्वी हयहया ने लिखा—"अच्छी जगह पाने की अपनी मन्शा पूरी हुई देख संतोष न मानना। भाई, अपने आपको पवित्र करके चाहे जहाँ रहो; कारण, जगह से मनुष्य में पवित्रता नहीं आती,

किन्तु मनुष्य से स्थान में पवित्रता आती है। जहाँ साधु जन रहते हैं वह स्थान श्रेष्ठ है, तीर्थ रूप है।

"दासी पाकर तुम सन्तुष्ट हो? तुममें पुरुषार्थ होता तो एक ईश्वर के दास को तुम अपना दास बनाने की इच्छा भी नहीं करते। उससे ईश्वर की ग़ुलामी छुड़ाकर तुम उससे अपनी ग़ुलामी नहीं करवाते। तुम्हें तो ख़ुद ग़ुलाम होना चाहिये और तुम बनने चले हो मालिक! मालिकी में मौज-शौक और विलास है, ग़ुलामी में है सेवा। जो ग़ुलाम ख़ुद मालिक बनने की मन्शा रखता है वह ईश्वर का भक्त कैसा?"

"और तुम मुझसे मिलना चाहते हो? ईश्वर पर तुम्हारी नज़र होती तो मैं बीच में आता नहीं। ईश्वर के साथ ऐसा गहरा नाता जोड़े कि मैं अथवा और कोई उसके बीच में आने ही न पावे। जहाँ अपने बेटे की भी क़ुर्बानी करनी पड़ती है वहाँ दूसरे लोगों की क्या गिनती? यदि तुम्हें परमेश्वर को पाना है तो मैं तुम्हें क्या लाभ पहुँचाता? और यदि तुम्हें ईश्वर को नहीं पाना है तो भी मैं क्या काम आता?"

एक दूसरे बन्धु को हयहया ने इस मतलब का पत्र लिखा—"संसार सपना-सा है और परलोक है जागी हुई हालत-सा। मनुष्य सपने में अपने आपको रोता और दुःख पाता देखता है पर जागते ही वह हँसता है, आनन्द मनाता है। तुम भी संसार के सपने में ख़ूब रोओ, जिससे परलोक में जागने पर ख़ूब हँस सको, आनन्द मना सको।"

महर्षि हयहया के एक छोटी पुत्री थी। एक दिन वह अपनी माँ से "माँ! मुझे यह दे, वह दे।" कहकर कई चीज़ें माँगने लगी तो माँ ने कहा "उस प्रभु से माँग!" इस पर पुत्री ने उत्तर में कहा—"माँ! इन छोटी ज़रूरियातों के लिये ईश्वर से माँगते मुझे शर्म आती है, ये चीज़ें तो तू ही दे दे। और तू जो देगी वह भी तो उसी का है!"

एक बार महर्षि अपने भाई के साथ एक गाँव से गुज़रकर दूसरे गाँव की ओर जा रहे थे। उस गाँव को देखकर उनके भाई ने कहा—"अहा! यह गाँव कितना ख़ूबसूरत है!"

हयहया बोले—"जो इतने ख़ूबसूरत गाँव को देखकर भी नहीं लुभाता उसका मन तो इससे भी अधिक ख़ूबसूरत होना चाहिये।"

हयहया एक दिन न्योता पाकर अपने पड़ोसी के यहाँ खाने गए। उनको कम खाते देखकर पड़ोसी ने उनसे और मिठाई खाने का आग्रह किया तो उन्होंने कहा—"भाई! इन्द्रियाँ बदमाश घोड़े की तरह हैं। वे तो मौक़ा देखती ही रहती हैं; इसलिये मैं सदा अपनी साधना रूपी लगाम सतर्क होकर थामे रहता हूँ। यदि इस लगाम को तनिक ढीली कर दूँ अथवा एक आध चाबुक लगा दूँ तो कौन जाने यह दुष्ट सवारी मुझे किस गड्ढे में लेजाकर डाल दे!"

एक रात को उनके सामने का दीपक हवा से बुझ गया। यह देख महात्मा रोने लगे। ऐसी छोटी-सी बात पर रोने का कारण पूछने पर उन्होंने कहा—"इस बाहरी दीपक के बुझने पर मैं थोड़े ही रोता हूँ? प्रभु के प्रति श्रद्धा भक्ति का दीपक हृदय में थोड़ा-थोड़ा जलने लगा है, अविवेक अथवा स्वच्छन्दता की हवा के झोंके से यदि वह बुझ जाय तो कैसा बुरा हो?"

एक बार उनके सामने दौलतमन्दी और ग़रीबी की चर्चा चली। उसे सुनकर वे बोले—"परलोक के जीवन में न तो दौलत की क़ीमत है और न ग़रीबी की। वहाँ तो क़ीमत है कृतज्ञता और सहिष्णुता की। धनवान् होकर प्रभु का उपकार मत भूलो और ग़रीबी की हालत में सहनशीलता को मत छोड़ो।"

महात्मा हयहया ने प्रभु की इस प्रकार प्रार्थना की थी—"हे प्रभु! मैं पुण्यवान् होकर तुमसे जितनी आशा रखता उससे अधिक पापी होकर रखता हूं। मैंने शुद्ध-भाव से तेरा भजन पूजन किया है ऐसा मैं

नहीं मानता। पवित्र प्रेम से मैं तेरी भक्ति कैसे करता? मैं तो एक दुराचारी ठहरा। मैं तो अपने आप को तेरा गुनहगार समझता हूँ; पर तेरी क्षमा में मेरा पूरा विश्वास है। तू प्रसिद्ध दयालु है। क्या मेरे गुनाहों की माफ़ी नहीं देगा? हे ख़ुदा! तू ने अपने प्रीतिपात्र मूसा और हारून को पाखंडी शत्रु फ़ेरून के पास भेजकर कहा था—'हे मूसा, हे हारून, तुम फ़ेरून के पास जाकर शांतभाव और मीठी वाणी से बात करना।' हे दयालु प्रभु! तेरा यह दयाभाव किसके प्रति था? एक ऐसे मनुष्य के प्रति जो ईश्वर बनकर ढोंग करता था। एक ऐसे मनुष्य के प्रति भी तेरा ऐसा दयाभाव था तो जो सर्व-भाव से भजन साधन कर रहा है उसकी ओर तो तू न जाने कितना दयालु होगा? हे नाथ! धन-सम्पत्ति में तो मेरे पास यह एक फटा पुराना कपड़ा है। यह मेरे बड़े काम का है तो भी कोई दीन दुखिया मिल जाय तो मैं उसे यह कपड़ा बिना किसी पशोपेश के दे सकूँगा। तेरे पास तो हज़ारों इमारतें और बेशुमार सामान है, और तुझे उनकी ज़रूरत भी नहीं! दूसरी ओर इस दुनिया में लाखों ग़रीब भटक रहे हैं। उनके पास रहने को झोंपड़ा और खाने-पीने को फूटी कौड़ी भी नहीं। तो तू उन्हें ज़रूरी चीज़ें देने में इतना संकोच क्यों करता है? क्या यह ठीक है? हे प्रभु! तू ने तो कहा है—'जो आदमी मेरे पास कल्याण माँगेगा, उसका मैं कई गुना कल्याण करूँगा।' उसी वचन के भरोसे मैं तेरे पास आया हूँ। तुझसे अधिक अच्छा कुछ भी नहीं। बोल, अपने दर्शन से अधिक अच्छा कौनसा दान तू मुझे देगा? प्रेम करने वाले को सब तरह का सुख देने की कोशिश की जाती है, पर तू तो अपने प्रेमी पर विपत्तियों ही की बौछार करता है। हे प्रभु! इस दुनिया में तुझे मुझे जो कुछ देना हो वह सब विधर्मियों को दे दे और परलोक में मुझे जो कुछ देना हो वह सब धर्मात्माओं को दे दे। मेरे लिए तो इस लोक में तेरा भजन और उस लोक में तेरा दर्शन बस होगा। हे ईश्वर! मैं तो गुनहगार हूँ,

तेरी प्रार्थना करता क्यों ठहरूँ? मैं पाप करता भी हूँ तो तू अविचल भाव से कृपा करता रहता है। हे प्रभु! अपने दुष्कृत्यों के कारण मैं तुझसे डरता हूँ और तेरी कृपा के कारण आशा लगाये हूँ। मुझे दुराचारी समझकर अपनी दया से परे मत रखना। भगवन्! मैं तेरा हूँ, यही समझकर मुझ पर कृपा कर। तू तो दयालु है, तेरा डर कैसा? मैं गुनहगार हूँ, किस मुँह से अरज़ करूँ? और तू दयालु है, इसलिए तुझसे अरज़ क्यों न करूँ? हे ईश्वर! मैं तुझसे डरता हूँ; कारण, मैं तेरा दास हूँ; मैं तुझसे आशा रखता हूँ; कारण, तू मेरा पिता है। हे प्रभु! तू निष्काम होकर भी मुझ पर इतना प्रेम रखता है, तो मैं इतनी कामनाओं वाला तुझे क्यों न प्रेम करूँ? मेरे हृदय में तू ने जो प्रबल आशा और आस्था दी है, वही तेरा उत्तम दान है; और तेरा गुणगान करना ही मेरा उत्तम काम है। तेरे दर्शन की शुभ घड़ी ही मेरे लिए सर्वोत्तम समय है। हे प्रभो! मैंने मोक्ष के लिए तो अनुष्ठान किया है, पर नरक में जाने की मेरी हिम्मत नहीं। ऐसी हालत में बस एक तेरी मेहरबानी ही का भरोसा है। कयामत के समय तू मुझसे पूछेगा कि मैं क्या ले आया हूँ, तो कहूँगा, "क़ैदख़ाने से लाया हूँ मैले कपड़े, बिखरे हुए दुर्गंधि-मय बाल, दुःख और लज्जा! क़ैदख़ाने से इनके सिवा और ला भी क्या सकता? और बात न पूछकर अब तो पहले मुझे पाक करो, मुझे नए कपड़े दो!"

यात्री, ज्ञानी और फकीरों की मदद करते-करते तपस्वी हयहया पर एक लाख का क़र्ज़ होगया। इस क़र्ज़े को चुकाने का कोई उपाय न देखकर उन्हें बहुत चिंता हुई। एक रात को उन्हें हज़रत मुहम्मद साहब के स्वप्न में दर्शन हुए। उन्होंने कहा—"हयहया! खेद न कर। तेरे खेद से मुझे भी खेद होगा। तू ख़ुरासान देश में जा। वहाँ तेरे लिए एक व्यक्ति ने तीन लाख मुद्रा इकट्ठी कर रखी है।"

हयहया ने पूछा—"हे उच्च पैग़म्बर महात्मा! वह व्यक्ति कौन

है और कहाँ है ?" पैग़म्बर साहब ने जवाब दिया—"तुझे और पूछ-ताछ से मतलब ? तू गाँव-गाँव में घूमकर धर्म का उपदेश करता चला जा। तेरे उपदेश से अनेक लोगों के दिलों के मैल साफ़ होंगे। जैसे मैंने तुझे दर्शन दिया है, उसी प्रकार उस व्यक्ति को भी दर्शन देकर तुझे धन देने के लिए कहता हूँ।"

इस स्वप्न की सफलता के बारे में हयहया को पूरा विश्वास था। वे ख़ुरासान के नशापुर शहर में गए। वहाँ उपदेश देते समय एक दिन उन्होंने कहा—"शहर के बासिन्दो ! पूज्य पैग़म्बर साहब के हुक्म से मैं इस मुल्क में आया हूँ। उन्होंने मुझसे कहा है कि यहाँ एक व्यक्ति मुझे क़र्ज़ से छुड़ायेगा। मेरे सिर पर एक लाख का क़र्ज़ है। इस क़र्ज़ के गुनह में फँस जाने से मेरे उपदेशों का असर भी घट गया है।"

यह बात सुनकर श्रोताओं में से एक बोला—"उस क़र्ज़ को चुकाने के लिए मैं आपको पचास हज़ार मुद्रा दूँगा।" दूसरे ने चालीस हज़ार और तीसरे ने दस हज़ार मुद्रा देने का वादा किया।

हयहया ने यह कहकर रक़म अस्वीकार कर दी कि पैग़म्बर साहब की सूचना है कि यह रक़म किसी एक ही व्यक्ति से मिलेगी।

'मेरा क़र्ज़ यहाँ नहीं उतर सकेगा, ऐसा समझकर वे बल्ख़ में गए। कई दिनों तक उपदेश देने के बाद उन्होंने एक दिन सम्पत्ति की श्रेष्ठता का वर्णन किया। इससे ख़ुश होकर एक धनवान् ने एक लाख का दान देना स्वीकार किया। श्रोताओं में एक फ़क़ीर भी था। फ़क़ीरी की अपेक्षा दौलत की अधिक बड़ाई सुनकर उसे बहुत खेद हुआ। हयहया वह एक लाख मुद्रा लेकर स्वदेश की ओर लौट पड़े। किन्तु, मार्ग में लुटेरों ने सारा धन लूट लिया। अब वे हेरी की ओर गए। वहाँ भी कई दिन तक उपदेश देने के बाद उन्होंने अपने क़र्ज़ और सपने की बात कही। उस समय एक अमीर की बेटी हाज़िर थी, उसने

कहा—"आप अपने क़र्ज़ की ज़रा भी चिंता न करें। हमारे पवित्र पैग़म्बर साहब ने सपने में मुझे आपका क़र्ज़ चुका देने का हुक्म दिया है। मैं तो बहुत दिनों से आपकी राह देख रही थी। मेरी शादी में मेरे पिता ने मुझे दहेज़ में सोने चाँदी के बहुत जेवर दिए थे। उनमें से केवल चाँदी के जेवरों की क़ीमत तीन लाख है। वे सब मैं आपको भेंट करती हूँ।"

हयहया उस धन को सात ऊँटों पर लादकर हेरी से विदा हुए। वलहम शहर में वह धन अपने बेटे को देकर उन्होंने कहा—"अपने मुल्क में जाकर मेरे क़र्ज़ को चुका दे और बाक़ी बचे उसे ग़रीबों को बाँट दे। इसमें से एक कौड़ी भी अपने काम में न लाना।' हयहया ख़ुद वलहम ही में रह गए।

एक दिन सवेरे के समय वे सिर झुकाकर नमाज़ पढ़ रहे थे, इतने ही में एक दुष्ट ने आकर उनके सिर पर एक बड़ा-सा पत्थर दे मारा। उससे उनकी मृत्यु होगई।

"मेरा क़र्ज़ चुका देना" मरते-मरते वे इतना ही कह पाये। उनके सारे शिष्य आ पहुँचे। महात्मा हयहया के शव को कंधों पर लेकर वे नशापुर ले गये, वहाँ के क़ब्रिस्तान में वे दफ़न किये गये।

उपदेश-वचन

१—नरक के बीज बोकर स्वर्ग की आशा रखने से अधिक मूर्खता क्या होगी?

२—पश्चात्ताप से दूर किया हुआ पाप यदि फिर बन पड़े तो वह पहले से पाप के सौ गुना अधिक नुक़सान पहुँचाता है।

३—रोग के डर से आदमी खाना तो बन्द कर देता है, पर दण्ड और मरण के भय से वह पाप करना नहीं रोकता, कैसा आश्चर्य?

४—सावधान रहना, यह दुनिया शैतान की दूकान है। भूलकर भी इस दूकान की कोई चीज़ पर मन न चलाना, नहीं तो शैतान पीछे पड़कर उस चीज़ के बदले में तुम्हारा धर्मरूपी धन छीन लेगा।

५—दुनिया की इज़्ज़त आबरू शैतान की शराब है। इस शराब के नशे में चूर आदमी अपने पापों का पश्चात्ताप और आत्म-ग्लानि रूपी तीव्र तपस्या नहीं कर सकता, और बिना उसके ईश्वर को नहीं पा सकता।

६—दुनिया एक नौजवान औरत के समान है। जो मनुष्य उसकी कामना करता है, उसे अपना जीवन उसके लिए बढ़िया-बढ़िया गहने-कपड़े जुटाने ही में बिताना पड़ता है और जो उसकी ओर से विरक्त रहता है वह उसका सिर मूँड़कर उसके मुँह पर कालिख पोत देता है।

७—संसार-लोलुप मनुष्य के लिये आगे-पीछे शोक और चिंता ही है, उसे परलोक में भी सज़ा और पीड़ा ही मिलेगी। इसलिये उसे सुख-शांति मिले तो कैसे?

८—ईश्वर ने कहा है—"हे जीव! तू मेरी अपकीर्त्ति फैलाता है, यह क्या उचित है? तू ही कह। इस लोक और उस लोक का मालिक मैं क्या तेरी ऐसी नीचता से तेरा हो सकता हूँ?"

९—सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति में जीवन की अधोगति समाई है, और पारलौकिक वस्तु की प्राप्ति में जीवन की उन्नति! जो वस्तु क्षण-भंगुर है उसके लिए मनुष्य चिरकाल को अधोगति और दुर्दशा कमा लेता है, उसका विचार करके मैं तो चकित हो जाता हूँ।

१०—सांसारिक वस्तुएँ ऐसी अनिष्टकारक हैं कि उनकी इच्छामात्र ईश्वर से दूर ले जाती है; यदि कोई उन्हें पा ले तो उसकी क्या हालत होगी इसका तो अंदाज़ा भी नहीं किया जा सकता।

११—इन तीन मनुष्यों को बुद्धिमान जानना—जिसने संसार का त्याग कर दिया है, जो मौत आने के पहले सब तैयारियाँ किये बैठा है और जिसने पहले ही से ईश्वर की प्रसन्नता प्राप्त करली है।

१२—साधक तीन प्रकार के होते हैं—वैरागी, अनुरागी और कर्मयोगी। वैरागी का धन सहनशीलता, अनुरागी का धन प्रभु के प्रति कृतज्ञता और कर्मयोगी का धन सबके प्रति बंधु-भाव है।

१३—साधक के लिए सबसे अधिक दुःखदायक बात कौनसी? विरोधियों की संगति सह लेना।

१४—निर्जनता में निवास करके देख तेरा प्रेम निर्जनता पर है या प्रभु पर? यदि एकांत ही से प्रेम है तो वहाँ से हटते ही प्रेम भी हट जायगा; और यदि ईश्वर पर प्रेम होगा तो पर्वत, वन, बस्ती सब स्थानों पर वह एक समान रहेगा।

१५—शुद्ध हृदय के भक्तात्मा के साथ निर्जनता का तो सदा वास है।

१६—सच्चे धैर्य और प्रभुपरायणता की परीक्षा विपत्ति ही में होती है।

१७—लौकिक पदार्थों में जब तक आसक्ति रहेगी तब तक धर्म का नाश होता रहेगा; और वैराग्य स्थिर होगा तो ही धर्म स्थिर रहेगा।

१८—सौ वर्ष तक प्रभु-प्रेम बिना तप करने की अपेक्षा सरसों के इतना प्रभु-प्रेम उत्पन्न करना अधिक उत्तम है।

१९—ज्ञान, संकल्प और प्रेम धर्म-साधन की जड़ हैं।

२०—ईश्वर पर निर्भर रहकर ही दुनिया की गुलामी से छूटा जा सकता है। धर्म के अनुष्ठान से जो फल मिले उसे भी प्रभु-प्रेम के लिए विसर्जन करदो। ईश्वराज्ञा का पालन करने पर ही सच्चा आनंद मिलेगा।

२१—धर्म के तीन अंग हैं—भय, आशा और प्रेम। भय में पाप

छुड़ाने की शक्ति, आशा में साधना के द्वारा पारलौकिक उन्नति करने की शक्ति और प्रेम में दुःख सहन करने की शक्ति है।

२२—मुनि—सच्चा साधक—वही है, जिसे ईश्वर के विचार के सिवा दूसरी बात प्रिय ही नहीं लगती।

२३—ईश्वर का भय एक ऐसा वृक्ष है जिसके प्रार्थना और आर्त्त-नाद रूपी दो परम सुखदायक फल हैं।

२४—जो मनुष्य प्रभु का भय रखता है उसके सब अवयव साधना की ओर प्रवृत्त होते हैं और वह पापों से निवृत्त होता है।

२५—ईश्वर की उपासना ईश्वर से परिपूर्ण भण्डार है और प्रभु प्रार्थना उसे पाने की चावी है।

२६—ईश्वर एक है, उसका ज्ञान ज्योतिःस्वरूप है; ईश्वर को अनेक मानना अग्नि के समान है। एकता की ज्ञान-ज्योति मनुष्य के सब पापों को भस्म करती है, किन्तु अनेकता की अग्नि सारे सद्गुणों का विनाश करती है।

२७—जो मनुष्य श्रद्धा नहीं रख सकता, वह धर्म-पालन भी नहीं कर सकता।

२८—सत्य को छोड़कर असत्य की ओर जाना ही अधोगति में पड़ना है।

२९—जब साधक अधिक खाने लगता है तब देवता रोने लगते हैं।

३०—आहार में जिसकी लालसा बढ़ती है, वह साधना के मार्ग से जल्दी ही दूर हो जाता है।

३१—एकान्त-प्रेमी भोगों से दूर रहे यही उसके लिये ईश्वर-दत्त आहार है। इसी आहार से श्रद्धावान् साधन आगे बढ़ने की शक्ति प्राप्त करता है।

३२—विषयी मनुष्यों को पदार्थों के संग्रह में जितना प्रेम होता है उतना ही प्रेम उन पदार्थों के त्याग करने में जिसके मन में हो, वही सच्चा त्यागी बन सकता है।

३३—मैं कब सब लोगों में प्रभु का भरोसा करने वाला बन सकूँगा? कब फ़क़ीरी का वाना पहनकर सच्चे त्यागियों की संगति कर सकूँगा?

'उस समय जब तहे-दिल से आत्म-संयम करेगा। वह आत्म-संयम ऐसा हो कि तीन दिन तक प्रभु खाने को कुछ भी न दे तो भी वह न डिगे। जब तक इतनी योग्यता नहीं आ जाय तब तक फ़क़ीरी बाना पहनना निरी मूर्खता है।'

३४—'कल कौन निर्भय बनेगा?'

'आज जो ईश्वर से अधिक भयभीत है।'

'सच्ची श्रद्धा की प्रीति कब होगी?

'अपनी सारी भलाई का भार ईश्वर पर छोड़ देने पर।'

'सच्चा धनवान् कौन है?'

'जिसने ईश्वर की ओर से निर्भयता प्राप्त करली है।'

'ईश्वर-दर्शी कौन?'

'सदा और सर्वत्र रहता है और रहेगा उस परमात्मा के अस्तित्व को देखनेवाला, और संसार को चार दिन की चाँदनी के समान समझने वाला।

'विरक्ति अर्थात्?'

'जगत की सब वस्तुओं को छोड़कर एक प्रभु ही को अपना धन और सर्वस्व मानना।'

'कौन मनुष्य वैराग्य में अधिक दृढ़ है?'

'जिसका प्रभु के प्रति विश्वास अधिक है।'

'सच्चे प्रेम का लक्षण क्या है?'

'हित होने पर जिस प्रेम में वृद्धि नहीं होती और अहित होने पर न्यूनता।'

३५—प्रभु-प्रेमियों के तीन गुण होते हैं—(१) सब वस्तुओं में ईश्वर व्याप्त है ऐसी पूर्ण श्रद्धा, (२) सारी लौकिक वासनाओं से निवृत्ति और (३) ईश्वर में सब वस्तुयें हैं, ऐसा दृढ़ विश्वास।

३६—लौकिक मनुष्यों की सेवा नौकर-चाकर करते हैं और अलौकिक लोगों की सेवा साधु, वैरागी और महान् पुरुष करते हैं।

३७—मनुष्यों से तो जितनी कम हो सके, बात करो; ज्यादा बात तो करो उस ईश्वर से!

३८—जो ईश्वर को अपना सर्वस्व मानता है वही असली धनवान् है। दुनिया की चीज़ों में अपनी सम्पत्ति माननेवाला तो सदा ग़रीब ही रहेगा।

३९—जिस सत्कर्म से अहंकार उत्पन्न होता है, उससे तो वह पाप भी उत्तम है, जो ईश्वर की ओर ले जाय।

४०—ईश्वर के साथ जिसकी दोस्ती हुई, उसे अपनी दुनिया की सम्पत्ति के साथ तो दुश्मनी हुई ही समझ लेनी चाहिए।



१४—फ़ज़ल अयाज़

तपस्वी फ़ज़ल अयाज़ एक महामान्य ऋषि थे। पहले वे लुटेरों के सरदार थे। किन्तु, उनके जीवन का रुख़ आश्चर्यजनक रीति से बदल गया था, तत्त्वज्ञान और विवेक-वैराग्य में वे सब तपस्वियों के शिरोमणि बन गए थे। उनके जीवन की पहली दशा ऐसी थी—

लुटेरे की हालत में फ़ज़ल अयाज़, मर और बारूत के जङ्गलों में तम्बू तानकर रहते थे। क़फ़नी पहनकर और हाथ में तसबीह लेकर वे फ़क़ीरी वेश में रहते और काम करते डाकू का। इस काम से उनके

सैकड़ों साथी और साझेदार थे। वे सब लूट-मार करते और लूट को माल फ़ज़ल अयाज़ के सामने लाते। वे लूट का माल सब में बाँट देते और इच्छानुसार अपने लिए रख लेते। ऐसा नीच काम करके भी वे शुक्रवार की नमाज़ नहीं चूकते। अपने साथियों को भी वे नमाज़ में बुलाते और जो न आता उसे अपने दल से अलग कर देते।

फ़ज़ल के स्वभाव में पहले ही से महानता और पुरुषार्थ था। वे परदेश में घूमते हुये व्यापारियों के क़ाफ़िलों को लूटते ज़रूर; पर उस क़ाफ़िले की औरतों की ओर नज़र भी नहीं उठाते। थोड़े धनवाले का धन लौटा देते और लुटे हुए धनवान् को भी घर लौटने के लिये मुसाफ़िरी का ख़र्च दे देते। उन दिनों वे एक युवती पर आसक्त हो रहे थे, लूट-पाट का सारा धन उस प्रियतमा को दे दिया करते थे।

एक दिन व्यापारियों का एक क़ाफ़िला उनके पास से जा रहा था। लुटेरों ने उन पर धावा बोल दिया। उस क़ाफ़िले के सौदागर ने अपना माल वहीं किसी जगह छिपा देने का इरादा किया। इधर-उधर देखने पर उसे वह तम्बू दिखाई दिया, और उस तम्बू में दिखाई दिये फ़क़ीर वेशधारी फ़ज़ल। उन्हें फ़क़ीर समझकर, अपने धन की रक्षा के लिए, उसने उन्हें उचित पात्र समझा। सोच-विचारकर उसने अपने धन की थैली उनके आगे सारी हक़ीक़त सुनाकर रख दी। फ़ज़ल ने थैली को तम्बू के एक कोने में रख देने का इशारा किया। थैली रखकर वह सौदागर लौट गया। उधर उसके सब साथियों को लूटकर डाकू चल दिये थे। थोड़ी देर बाद वह सौदागर अपनी थैली वापस लेने के लिए तम्बू में गया, तो क्या देखता है कि वे सब डाकू उसी तम्बू में इकट्ठे हो रहे हैं, और लूट के माल को बाँट रहे हैं। यह देखकर बिचारा सौदागर दंग रह गया, अपने धन को अपने आप डाकू की हिफ़ाज़त में रखने की मूर्खता पर हाथ मल-मलकर पछताने लगा। धन के वापस पाने की सारी आशा छोड़कर वह चुपचाप उलटे पाँव तम्बू से लौटने

लगा, पर इतने में ही फ़ज़ल ने उसे देखकर अपने पास बुलाया। डर के मारे सौदागर काँपने लगा। फ़ज़ल ने पूछा—"क्यों आया है?" सौदागर ने जवाब दिया—"अपनी धरोहर लौटा लेने के लिए, पर मुझसे ग़लती हुई, अभी लौट जाता हूँ।" फ़ज़ल ने कहा—"यों ही क्यों लौट जायगा, जहाँ अपनी थैली रखी है, वहाँ से उठाकर लेता जा।"

अपनी थैली लेकर ख़ुश होता हुआ वह सौदागर अपने साथियों के पास लौट गया। फ़ज़ल के साथियों ने पूछा—"आपने यह क्या किया? हाथ में आया धन क्यों लौटा दिया?"

फ़ज़ल—"इस मनुष्य ने मुझे सच्चा मानकर, मुझे फ़कीर समझकर मुझ पर विश्वास किया था। ईश्वर के इस वेश के प्रति जो सद्भावना है उसकी रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य था। ख़ुदा करे मेरा यह साधुभाव क़ायम रहे।"

इस घटना के कई दिन बाद उन्हीं डाकुओं ने सौदागरों के एक दूसरे क़ाफ़िले को लूटकर उसका धन हथिया लिया। सौदागरों में से एक ने पूछा—क्यों भाई, तुम्हारा कोई सरदार भी तो होगा?" लुटेरों ने उत्तर दिया—"हाँ है। नदीतट पर तम्बू में वे नमाज़ पढ़ रहे हैं।"

"यह तो नमाज़ का समय नहीं।"

"वे रवाज से भी ज़्यादा नमाज़ पढ़ते हैं।"

"वे खाते किस वक्त हैं?"

"वे आजकल तो रोज़ा कर रहे हैं, इसलिए दिन में नहीं खाते।"

"रोज़ा तो रमज़ान महीने में रखे जाते हैं, यह तो रोज़ा रखने का महीना नहीं।"

"वे नियम से भी अधिक रोज़ा रखते हैं।"

ये बातें सुनकर सौदागर को बहुत अचरज हुआ। तुरन्त ही फ़ज़ल के पास पहुँचकर उसने पूछा—"आप नमाज़ और रोज़ा के साथ-साथ यह लूट का काम क्यों करते हैं ?"

फ़ज़ल ने पूछा—"तू ने क़ुरान पढ़ा है ?"

"हाँ,"

"उसमें यह पढ़ा है या नहीं–'दूसरे लोगों को भले काम करनेवाला जानने के बाद बुरा काम करने वाला भी जानता हूँ' ?"

सौदागर यह सुनकर चुप होगया।

फिर एक बार रात के समय उस रास्ते से सौदागरों का क़ाफ़िला जा रहा था। फ़ज़ल ने अपने साथियों के साथ उन पर धावा किया। इतने में सौदागरों में से एक ने क़ुरान का यह वाक्य कहा—"तुम्हारा सोता हुआ मन जाग जाय, इतनी योग्यता भी क्या अभी तक तुममें नहीं आई ?"

फ़ज़ल के हृदय में क़ुरान के ये वचन तीर की तरह जाकर लगे, मानो उन्होंने फ़ज़ल पर आक्रमण करके उसे सचेत करते हुए कहा हो–"अरे मूढ़ ! अब भी क्या तू लूटपाट करता रहेगा ? क्या, अब भी तेरे जीवन के रुख़ को बदलने का मौका नहीं आया ?"

फ़ज़ल आर्त्तनाद करके बोल उठे–"हाँ, समय आगया है। वचन-बाण ने ठीक जगह चोट पहुँचाई है।" फ़ज़ल अत्यंत व्याकुल और शर्मिंदे होकर सुनसान जङ्गल की ओर दौड़ पड़े। उन्हें आगे व्यापारियों की एक दूसरी टोली मिली। वे आपस में बात कर रहे थे कि यहाँ फ़ज़ल नाम का एक मशहूर डाकू रहता है उससे बचकर चलना चाहिये। उनकी बात सुनकर फ़ज़ल ने कहा—"भाइयो ! मैं आप लोगों को एक ख़ुशख़बर सुनाना चाहता हूँ। फ़ज़ल ने अब लूट का काम छोड़कर पछतावा करना शुरू किया है। ख़ुदा को मेहरबानी से अब उसके जीवन की गति बदल गई है। आज वह तुम लोगों के आगे से

भागा जारहा है।" इतना कहकर वे रोते-रोते वहाँ से चल दिए। आगे जाने पर उन्हें एक आदमी मिला, उससे उन्होंने कहा—"तुझे ख़ुदा की क़सम, मुझे बादशाह के पास ले चल। मुझ पर वह बेहद नाराज़ है। मुझे पाकर वह बहुत ख़ुश होगा। मुझे अब उसकी सज़ा की ज़रूरत है।"

ऐसा आग्रह देखकर वह व्यक्ति फ़ज़ल को वहाँ के बादशाह के पास लेगया। बादशाह ने बातचीत से जान लिया कि अब फ़ज़ल के जीवन का रुख़ बदल गया है और वह सज़ा चाहता है अपना भावी जीवन पवित्र करने के लिये बादशाह ने बहुत आदर के साथ उन्हें उनके घर लौटा दिया। आँगन में आकर फ़ज़ल ने अपने बेटे को पुकारा। उनकी आवाज़ सुनकर सब को अचरज हुआ और वे बात करने लगे कि उसकी आवाज़ ऐसी कैसी हो गई? ज़रूर उन्हें कोई भारी चोट लगी है।

फ़ज़ल बोले—"हाँ, मुझे सख़्त चोट लगी है।"

बेटे ने पूछा—"कहाँ?"

फ़ज़ल—"कलेजे में।"

फ़ज़ल ने घर में आते ही अपनी स्त्री से कहा—"कल ही मेरा विचार मक्का जाने का है, बोल तेरी क्या मन्शा है?"

स्त्री—"मैं आपसे विछोह करना नहीं चाहती। जहाँ आप वहीं मैं। साथ रहकर मैं आपकी चाकरी करूँगी।"

फ़ज़ल स्त्री के साथ मक्के गए। ईश्वर ने सहज उन्हें यह मार्ग दिखा दिया। मक्का में रहने से वे कई साधु-संतों के समागम में आये। धर्माचार्य अबु हनिफ़ा के साथ बहुत समय तक रहकर उन्होंने ज्ञान-प्राप्ति तथा साधना की। उसके बाद वे उपदेशक का भी काम करने लगे। मक्कावासी सैकड़ों लोग उनका उपदेश सुनने के लिये आते थे। बहुत दिनों बाद उनके पहले के मित्र—बारून जंगल के लुटेरे—उनसे

मिलने आये। पर फ़ज़ल ने उन्हें अपने पास नहीं आने दिया। घर की छत पर खड़े होकर उन्होंने लुटेरों को सिर्फ़ इतना कहा—ऐ धर्म-विमुख दोस्तो ! प्रभु तुम्हें भी सद्बुद्धि दे और अपने कार्य में लगावे।''

यह सुनकर उनके पुराने दोस्त निराश होगए। अब फ़ज़ल का साथ नहीं हो सकेगा, ऐसा समझकर वे ख़ुरासान की ओर चल दिये। छत पर खड़े होकर फ़ज़ल उनके लिए बहुत देर तक रोते रहे।

ख़लीफ़ा हारून-उल-रशीद ने एक दिन अपने एक दोस्त से कहा—"आज मुझे तू एक ऐसे आदमी के पास ले चल, जो मेरे दिल को शांत कर सके। यहाँ तो मैं दुनिया के कोलाहल से व्याकुल-सा होरहा हूँ।"

मित्र ने ख़लीफ़ा को तपस्वी सुफ़ियान के द्वार पर लाकर खड़ा कर दिया। दरवाज़ा खटखटाने पर सुफ़ियान ने पूछा—"कौन है ?"

मित्र—"देशाधिपति हारून-उल-रशीद।"

सुफ़ियान—"मेरे अहोभाग्य ! आज वे मेरे यहाँ पधारे। मुझे ख़बर दे देते तो मैं ख़ुद वहाँ चला आता।"

यह उत्तर सुनकर ख़लीफा ने कहा—"मित्र, मैं जिससे मिलना चाहता हूँ, वह यह नहीं।"

यह सुनकर सुफ़ियान ने कहा—"मैं समझा, आप जिससे मिलना चाहते हैं वह तो फ़ज़ल अयाज़ है।"

वे दोनों फ़ज़ल अयाज़ के घर गए। उस समय फ़ज़ल क़ुरान के ये वचन बोल रहे थे—"दुराचारी लोग भी यह समझते हैं कि मैं उनको धार्मिक लोगों में गिन लूँगा'।"

हारून इसे सुनकर बोले—"उपदेश के लिए तो मुझे एक यही वचन काफी है।"

उन्होंने दरवाज़ा खटखटाया।

फ़ज़ल—"कौन है ?

हारून का मित्र—"ख़लीफ़ा हारून रशीद।"

फ़ज़ल—"उन्हें मुझसे क्या काम है? और मुझे भी उनसे क्या काम है? मुझे अपने कामों से दूसरी ओर न खींचने की मेहरबानी करो।"

हारून का साथी—"मुल्क के मालिक की आपको इज़्ज़त करनी चाहिए।"

फ़ज़ल—"मुझे ख़लल न पहुँचाओ।"

उन्होंने आजिज़ी से झोंपड़ी में आने देने के लिए विनती की। उन्होंने उन्हें भीतर तो आने दिया, पर हारून-उल-रशीद का मुँह न देखना पड़े इसलिये रोशनी गुल कर दी। अँधेरे ही में हारून ने फ़ज़ल से हाथ मिलाया। छूते ही फ़ज़ल ने कहा—"अहा! ऐसा कोमल हाथ? इन हाथों को नरक की अग्नि में जलना होगा।"

इतना कहकर वे नमाज़ पढ़ने के लिये उठ खड़े हुये।

हारून रोने लगे, उन्होंने कहा—"कुछ तो कहिये।"

नमाज़ पूरी करके फ़ज़ल बोले—"तुम्हारे पिता पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद साहब के चाचा थे। उन्होंने ख़लीफ़ा की पदवी पाने की मन्शा ज़ाहिर की, तब पैग़म्बर साहब ने कहा था, ख़लीफ़ा बनकर हज़ार वर्ष तक लोक-सेवा करने की अपेक्षा अपना मन ईश्वर से जोड़ना कहीं अच्छा है। मुल्क की मालिकी न देकर मैं आपको अपने मन की मालिकी देता हूँ।"

इतना कहकर वे चुप होगए तो हारून ने उनसे और कुछ कहने के लिये फिर विनती की। वे बोले—"उमर अब्दुल अज़ीज़ जब ख़लीफ़ा की गद्दी पर बैठा, उसी समय उसने अब्दुल्ला के बेटे सालम को इयूत के बेटे रेज़ा को और काबेर के बेटे मुहम्मद को अपने पास बुलाकर कहा था—"मैं आज ख़लीफ़ा के पद पर बैठा हूँ; मेरा क्या कर्त्तव्य है, मुझे बताओ।"

'उनमें से एक ने कहा—'यदि तुम्हें परलोक की सजा से बचना है तो वृद्ध पुरुषों को पिता की तरह, युवकों को भाइयों की तरह, बालकों को अपनी संतान की तरह और स्त्रियों को माँ-बहन की तरह देखो। मुसलमानों के ये सारे मुल्क तेरे बड़े घर के समान हैं और यह प्रजामण्डल तेरा विशाल परिवार है। बड़ों के आगे नम्र बनो, भ्रातृ-मण्डल के साथ दयापूर्ण आचरण करो और बालकों के कल्याण के लिये उपाय करो। मुझे तो यही चिंता है कि तुम्हारा यह सुन्दर मुख नरक की अग्नि से कहीं कुरूप न होजाय!"

यह सुनकर ख़लीफ़ा हारून रोने लगा। फ़ज़ल ने फिर कहा—"ईश्वर से डरो। सावधान होकर रहो। कयामत के दिन प्रभु सबसे उनके पाप-पुण्य का हिसाब पूछेगा और न्याय करेगा। आज तुम्हारे राज्य में यदि एक बुढ़िया भी अन्न बिना दुःख पाती होगी और भूख के मारे रात को खाली पेट सो जाती होगी तो वह ईश्वर के दरबार में तुम्हारे ख़िलाफ़ फ़रियाद करेगी!"

यह सुनकर तो हारून फूट-फूटकर रोने लगे। तब उनके साथी ने फ़ज़ल से कहा—"फ़ज़ल! आपने तो ख़लीफ़ा को मार ही डाला!"

फ़ज़ल—"भाई, तू चुप रह। ख़लीफ़ा को मैंने नहीं, पर तूने और तेरे साथियों ने मारा है।"

हारून के मन पर इस बात ने असर किया और वह और भी ज्यादा रोने लगा। कुछ देर बाद उसने फ़ज़ल से पूछा—"आपको किसी का कुछ देना है?"

फ़ज़ल—"हाँ, मै प्रभु का बड़ा भारी क़र्ज़दार हूँ। यदि मैं उसका क़र्ज़ न चुका सकूँगा तो बड़ी शर्म की बात होगी।"

हारून—"यह तो ठीक, पर इस दुनिया में भी आपको किसी का कुछ देना है क्या?"

फ़ज़ल—"उस ख़ुदा की मेहरबानी है, उसने मुझे इतनी दौलत बख़्शी है कि क़र्ज़ के बारे में कुछ भी कहने की ज़रूरत नहीं।"

इस पर भी हारून ने एक हज़ार अशर्फ़ियों की थैली उनके सामने रखकर कहा—"यह रक़म मैंने ग़ैरवाजिबी तरीके से नहीं पाई है। यह मेरी अपनी दौलत में से है। मेहरबानी कर इसे ज़रूर मंज़ूर करें।"

फ़ज़ल नाराज़ होकर बोले—"मेरे उपदेशों का तुम पर कुछ भी असर नहीं हुआ? मैं देखता हूँ, अब भी तुम अविचार और भूल में पड़े हुए हो। मैं तुम्हारा बोझ हलका करना चाहता हूँ। तुम्हें उन्नति और मुक्ति के रास्ते पर ले जाना चाहता हूँ; पर तुम तो उलटे मुझ पर ही ज़्यादा बोझा डालकर मुझे नरक की ओर घसीटकर ले जाना चाहते हो। मैं कहता हूँ, जो कुछ तुम्हारा है, उसे ईश्वर को सौंप दो; पर तुम तो देने चले उसे, जिसे देने की ज़रूरत नहीं। अफ़सोस, मेरे कहने का तुम्हें कुछ भी फ़ायदा नहीं हुआ।"

इतना कहकर फ़ज़ल अपना दरवाज़ा बंद करने के इरादे से उठ खड़े हुए। यह देखकर ख़लीफ़ा बाहर आगया। फ़ज़ल ने दरवाज़ा बंद कर लिया। बाहर जाकर हारून-उल-रशीद बोला—"हाँ, सचमुच यही उन्नतात्मा महापुरुष हैं।"

एक बार फ़ज़ल अपने बेटे को गोद में बैठाकर उसे प्यार से चूम रहे थे। बालक ने पूछा—"पिताजी! आप मुझे चाहते हैं?"

"हाँ, चाहता हूँ।"

"आप प्रभु को भी चाहते हैं?"

"हाँ।"

"पिताजी! मनुष्य के दिल तो एक ही होता है; फिर उस एक दिल में दोनों समा सकते हैं?"

फ़ज़ल समझ गए। यह छोटे बालक की बोली नहीं, ईश्वर की प्रेरणा है। तुरन्त ही उन्होंने बालक को गोद से दूर कर दिया और खुद प्रभु के ध्यान में मग्न होगए।

सुफ़ियान ने एक रात फ़ज़ल के साथ शास्त्र-चर्चा में बिताई। रात बीतने पर सवेरे जाते समय उसने कहा—"आज की रात को मैं बहुत ही आनन्द की रात मानता हूँ। कितना सुखदायी सत्संग हुआ!"

इस पर फ़ज़ल बोले—"ना, ना, आज की रात तो बहुत ही ख़राब बीती।"

"यह कैसे?" सुफ़ियान ने पूछा।

"इसलिए कि तुमने सारी रात वाणी-विलास के द्वारा मुझे ख़ुश करने में, और मैंने तुम्हारे सवालों का बढ़िया जवाब देने की कोशिश करने में बिता दी। ऐसी कोशिश में हम दोनों ही प्रभु को तो भूल गए थे। एक दूसरे को ख़ुश करने के लिए ऐसा सत्संग करने की अपेक्षा निर्जन स्थान में ईश्वर के साथ बातें करने में अधिक कल्याण है।"

एक बार एक आदमी ने फ़ज़ल के पास आकर कहा—"मैं आपका स्नेह पाकर सुखी होने आया हूँ; आशा है मेरी इच्छा पूरी होगी।"

फ़ज़ल—"इसमें तो बहुत संदेह है भाई! तू मीठे-मीठे असत्य वचन कहकर मुझे फुसलायेगा और मैं तुझे। इससे क्या फ़ायदा होगा?"

नया धार्मिक जीवन पाकर फ़ज़ल निर्जन प्रदेशों में रहना ही पसंद करने लगे। तीस वर्ष तक किसी ने उन्हें हँसते नहीं देखा; किन्तु, जिस दिन उनके पुत्र का मरण हुआ उस दिन वे हँसते दिखाई दिये। उस हँसी का कारण पूछने पर उन्होंने बताया था—"आज मैं जान पाया हूँ कि प्रभु उसकी मृत्यु से ख़ुश है, मैं भी उसकी ख़ुशी के साथ अपनी ख़ुशी ज़ाहिर करने के लिये हँस रहा हूँ।"

फ़ज़ल कहा करते थे—"हे प्रभु ! तू ने मुझे भूखा रखा है, मेरे परिवार को अन्न-वस्त्र से वंचित रखा है, रात के वास्ते दीया भी नहीं दिया; पर मुझे विश्वास है कि ऐसा व्यवहार तू अपने बहुत ही प्यारे के साथ करता है। हे प्रभु ! बता, ऐसी अमूल्य संपत्ति का मालिक तूने मुझे क्यों बनाया ?"

फ़ज़ल को हुए बारह सौ वर्ष होगये। संतान में से उनकी दो बेटियाँ बची थीं। मरते समय उन्होंने अपनी स्त्री से कहा था—"मुझे दफ़नाकर तू अपनी इन दोनों बेटियों को लेकर, वर्तकिस पहाड़ पर चढकर, प्रभु की ओर दृष्टि उठाकर यह कहना—"प्रभु ! फ़ज़ल के कहने के मुताबिक़ मैं आपकी होकर निवेदन करती हूँ। जब तक वे जीवित थे तब तक उन्होंने अपने आश्रितों का भरसक भरण-पोषण किया। अब आपने उन्हें क़ैदख़ाने में डाल दिया है, इसलिये उनकी आश्रित इन दो लड़कियों को मैं आपके हाथों में सौंपती हूँ।"

फ़ज़ल के परलोक-वासी होने के बाद उनकी पत्नी ने ऐसा ही किया। वर्तकिस पहाड़ पर जाकर, बहुत रोने के बाद, उसने वही प्रार्थना की। दैवयोग से उसी समय उस मुल्क का राजा वहाँ आ पहुँचा। उसने उसका रोना सुनकर सारा हाल मालूम किया। फ़ज़ल की स्त्री से सारी हक़ीक़त सुनकर राजा ने कहा—"तुम्हारी इन दोनों बेटियों की शादी मैं अपने दोनों राजकुमारों के साथ करना चाहता हूँ। बोलो, तुम्हारी क्या मर्ज़ी है ?"

फ़ज़ल की स्त्री ने उसमें कोई आपत्ति नहीं की। राजा पालकियाँ मँगवाकर उन्हें लिवा ले गया। बड़ी धूमधाम से राजपुत्र के साथ उन दोनों की शादी हुई और दोनों को दस-दस हज़ार स्वर्ण-मुद्रायें स्त्री-धन में दी गईं।

उपदेश-वचन

१—यदि कोई आकर मुझे सलाम नहीं करता और मैं रोगग्रस्त

होऊँ तो भी मेरी सेवा नहीं करता तो मैं बड़ा प्रसन्न होता हूँ, क्योंकि इससे मेरे जीवन में विशेष लाभ पहुँचता है।

२—रात को एकांत मिलेगा यह जानकर मुझे प्रसन्नता होती है और दिन होने पर लोगों का होहल्ला मच जायगा यह जानकर मुझे दुःख होता है। लोग आ-आकर मुझे बातों मे लगाते हैं, यह मैं बिल्कुल नहीं चाहता।

३—जो मनुष्य निर्जनता से डरता है और लोगों के संग से खुश होता है वह अपनी शांति खोता है।

४—स्वर्ग में किसी को रोते देखना जिस प्रकार आश्चर्य-जनक है उसी प्रकार इस दुनिया में किसी को हँसते देखना।

५—जिसके मन में प्रभु का डर समाया है, जिसकी जीभ नहीं चलती, उसके मन की प्रभु-भय की आग संसार की आसक्ति और विषय-वासना को जलाकर ख़ाक कर डालती है।

६—जो मनुष्य ईश्वर से डरता है, उससे दुनिया भी डरती है, और जो प्रभु से नहीं डरता, उससे दुनिया भी नहीं डरती।

७—साधक में जितना ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान होता है, उतना ही वह ईश्वर से डरकर चलने में आनन्द मानता है। साधक परलोक से जितना स्नेह करता है, इस संसार से उतना ही वैराग्य!

८—दुनिया में घुसना बहुत आसान है, पर उसमें से निकलना उतना ही मुश्किल है।

९—यदि परलोक मिट्टी का और अनित्य होता तथा यह लोक सोने का होता, तो भी विचार करके देखने पर वह मिट्टी का परलोक ही भला दिखाई देता; किन्तु परलोक तो है सोने का और यह लोक है मिट्टी का, इसलिए इस लोक पर प्रीति होने का तो कोई कारण नहीं दिखाई देता।

१०—इस दुनिया से कोई फ़ायदा उठाने पर परलोक में उससे सौ गुना ज़्यादा नुक़सान उठाना पड़ेगा।

११—यहाँ के सुन्दर कोमल और क़ीमती कपड़ों और स्वादिष्ट भोजनों में आसक्त रहनेवाले को स्वर्गीय अन्न-वस्त्र से वंचित रह जाना पड़ेगा।

१२—ईश्वर के प्रति नम्र होना, उसकी आज्ञा के मुताबिक़ चलना, उसकी प्रत्येक इच्छा के आगे सिर झुकाना, इसी का नाम ईश्वर के प्रति विनय दिखाना है।

१३—जो मनुष्य अपने आपको ज्ञानी समझता है वह विनय-रहित है।

१४—जो मनुष्य दूसरों को ऊपर से प्यार करता है किन्तु भीतर ही भीतर उनसे द्वेष रखता है वह ईश्वर का कोप-भाजन बनता है।

१५—ईश्वर जैसा है उसी रूप में जो उसका साक्षात्कार कर सकता है, वही मनुष्य उसकी सच्ची पूजा कर सकता है।

१६—जो ईश्वर के सिवा न किसी की आशा रखता है और न किसी का भय, वास्तव में वही ईश्वर पर निर्भर रहनेवाला है।

१७—प्रभु पर निर्भर और उसके अधीन रहनेवाला वास्तव में वही है, जिसने ईश्वर का दृढ़ आश्रय लिया है और जो किसी भी बात का उसे दोष नहीं देता।

१८—शुद्ध स्थान में जाकर कुछ पवित्र होते हैं तो अधिकांश शुद्ध होने के बदले और भी अधिक अपवित्र बन जाते हैं। तीर्थ-भूमि मक्का में जाकर भी कई लोग अशुद्ध ही होकर लौटते हैं।

१५—हुसेन बसराई

तपस्वी हुसेन बसराई का जन्म तेरह सौ वर्ष से भी पहले मदीना शहर में हुआ था। इस्लाम के महात्माओं में वे अग्रगण्य थे। उनका जीवन अनेक प्रकार की कठोर साधनाओं, पवित्र उच्च व्रतों, पश्चात्ताप और कष्ट-सहन से भरपूर था। इस तपस्वी की माता हज़रत मुहम्मद साहब की पत्नी आयशा की दासी थीं। माता जब आयशा की ख़िदमत तथा घर के दूसरे काम-धंधे में लगी होतीं, उस समय हुसेन भूख से रोते रहते। दयालु आयशा यह देखकर उन्हें अपनी गोद में लेकर अपना स्तनपान कराने लगतीं। उनके स्तन में दूध तो था नहीं, बालक के बहुत अधिक चूमने पर कभी एक दो बूंद दूध निकलता। जन्म के बाद शीघ्र ही बालक को हज़रत मुहम्मद साहब के प्रचारक महात्मा उमर के पास दर्शन के लिए ले गए थे। बालक को देखकर उमर ने कहा था—"बालक का चेहरा बहुत ही हुसेन (सुन्दर) है।" इसी से उनका नाम हुसेन पड़ा।

उन्होंने एक सौ तीस साधु-संतों का सत्संग किया था। हज़रत मुहम्मद साहब के दौहित्र हुसेन के साथ उनकी गहरी दोस्ती थी। उन्हीं के साथ उन्होंने विद्याभ्यास किया था और उनके पिता हज़रत अली के पास उन्होंने फ़क़ीरी ली थी। महात्मा हुसेन के जीवन का रुख़ बदलने की घटना इस प्रकार है—

कहा जाता है, हुसेन एक जौहरी थे। एक दिन सौदागरी के लिए वे रोम शहर में गए और वहाँ के मंत्री से मिले। मंत्री से उनकी अच्छी जान-पहचान थी। मंत्री के आग्रह से वे उसके साथ घोड़े पर सवार होकर शहर के बाहर जंगल में गए। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि मणि-मुक्ताओं की झालरों से सजा हुआ रेशमी कपड़े का एक मण्डप बना हुआ है। मण्डप के आगे सजा-सजाया लश्कर चारोंओर घूमकर

प्रदक्षिणा दे रहा था। प्रदक्षिणा पूरी होने पर लश्कर शेमन भाषा में कुछ बोलकर एक ओर चला गया। उसके बाद साफ-सुथरे कपड़े पहने बुड्ढों का एक समुदाय आया। उन्होंने भी वैसा ही किया। फिर चार सौ पण्डित आए, वे भी मण्डप की प्रदक्षिणा करके कुछ बोलकर चले गए। उनके बाद आईं मणि-मुक्ताओं के थाल हाथों में लिए रूप-लावण्यवती दो सौ युवतियाँ। वे भी वैसा ही करके लौट गईं। अंत में वहाँ के सम्राट् ने प्रधान सचिव के साथ मण्डप में प्रवेश किया और थोड़ी देर बाद वह उसमें से बाहर आकर चला गया।

हुसेन यह दृश्य देखकर बहुत चकित हुए, इस घटना के मर्म को वे बिलकुल न समझे। मौका पाकर उन्होंने उसका मतलब अपने दोस्त मंत्री से पूछा तो उसने बताया—"हमारे सम्राट् के एक बहुत ही सुन्दर और गुणवान पुत्र था। वे उसे बहुत ही प्यार करते थे। अकस्मात् उस राजकुमार की मृत्यु हो जाने से सम्राट् बहुत ही दुःखी हुए। उस मण्डप में कुमार की क़ब्र है। प्रत्येक वर्ष सम्राट् अपनी सेना और कुटुम्बियों के साथ कुमार की मृत्यु-तिथि के दिन वहाँ जाते हैं। उसी दिन की क्रिया तुमने देखी थी। सैनिकों ने हमारी भाषा में कहा था—'हे राजकुमार! यदि मेरे और मेरी सेना की बाहु में बल होता तो हम सब अपने प्राण देकर भी तुम्हें लौटा लिये होते; किंतु तुम्हें जो कालरूपी शत्रु उठा लेगया है उस पर हमारा कोई वश नहीं चलता। हमारा वश चलता तो हम संग्राम छेड़कर तुम्हें लौटा लाते। पर हाय, दुःख है हम लोग निरुपाय हैं।' उनके बाद उन वृद्धों ने कहा था—'हे कुमार! यदि हम शोक प्रकाशित करके अथवा अपने आशीर्वाद के बल से तुम्हारे जीवन की रक्षा करने में हम समर्थ होते तो क्या ऐसा करने से कभी चूकते?' विद्वानों की उस मण्डली ने कहा था—"हे कुमार! ज्ञान से, विज्ञान से अथवा पाण्डित्य के बल से यह दुःख दूर हो सकता तो हम अवश्य

कर लेते, किन्तु मृत्यु के आगे हम लाचार हैं।" प्रदक्षिणा के बाद उन सुन्दरियों ने कहा था—'हे अन्नदाता! यदि धन-सम्पत्ति और रूप-लावण्य के बल से तुम्हें वापस पा सकती तो हम उन सब की बलि दे देती; किन्तु जीवन-मरण का संचालन करनेवाली उस शक्ति के आगे इस धन-सम्पत्ति और रूप-यौवन की कोई बिसात नहीं!' और अंत में स्वयं सम्राट् ने कहा था—'हे प्राणप्रिय पुत्र, तेरे पिता के हाथ में अब कौनसी शक्ति है? मैं तेरे लिये बड़ी भारी फ़ौज लाया, अनेक विद्वानों और बूढ़ों को लाया, सम्पत्ति सहित सुन्दरियों को लाया और प्रधान सचिव के साथ मैं ख़ुद आया। सैन्यबल, पाण्डित्य, धन-सम्पत्ति और सौन्दर्यबल से यह संकट दूर हो सकता तो उन सब का बल एकत्र करके मैं वैसा करता; परन्तु जो हो गया है उसे मिटाने की क्षमता तो तेरे इस पिता क्या सारे संसार के असंख्य हाथों की सम्मिलित शक्ति के सामर्थ्य के भी बाहर है।" इतना कहकर सम्राट भी लौट आये। प्रतिवर्ष यही क्रिया हुआ करती है।"

मन्त्री की इस बात ने हुसेन के दिल में वैराग्य और पश्चात्ताप पैदा कर दिया। उनका हृदय अस्थिर हो गया। अपने रोज़गार को वहीं छोड़कर वे उदास भाव से बसरा लौट आये। वैराग्य और पश्चात्ताप की उस अग्नि से व्यथित होकर उन्होंने प्रतिज्ञा की कि जब तक काम क्रोधादि विकारों का नाश न हो जायगा वे इस संसार में न हँसेंगे, न मौज-शौक़ करेंगे। उसी समय से वे प्रभु-भक्ति और ध्यान-स्मरण में लवलीन रहने लगे। लोगों का साथ छोड़कर एकान्त में रहकर उन्होंने बहुत समय बिताया। बाद में सात दिन में एक बार वे लोगों को उपदेश देने लगे। तपस्विनी राबिया भी उसी शहर में रहती थीं। हुसेन राबिया के आ जाने पर ही अपना उपदेश आरम्भ करते। राबिया की उपस्थिति से वे उत्साहित होते और जनसमूह की अपेक्षा अकेली राबिया को उपदेश देकर विशेष

सन्तुष्ट होते। इन सब बातों का उल्लेख राबिया के जीवन में आ चुका है।

एक दिन किसी ने उनसे प्रश्न किया—"यदि वैद्य ख़ुद रोगी हो तो वह दूसरे रोगियों का क्या इलाज करेगा?" उन्होंने उत्तर दिया—"बहुत ठीक, सुनो। वैद्य पहले अपनी दवा करेगा और फिर दूसरे रोगियों को दवा देगा।"

उपदेश देते-देते एक दिन उन्होंने कहा—"भाइयो, सुनो। यह उपदेश सुनकर यदि तुम इसके अनुसार चलोगे तो तुम्हारा कल्याण होगा।" श्रोताओं में कोई बोल उठा—"हमारा आलसी मन आपका उपदेश ग्रहण ही नहीं कर सकता है, उसके अनुसार चलें तो कैसे? इसका इलाज?" उन्होंने उत्तर दिया—"तुम्हारा मन आलसी नहीं, पर मरा हुआ है। आलसी होता तो वह जगाने से जाग जाता पर जो मरा हुआ है वह कैसे जागे?

किसी ने महात्मा हुसेन बसराई से पूछा—"कई लोग आपकी बात नहीं मानते और आप को निन्दा करते हैं, उनका क्या इलाज किया जाय?"

महात्मा बोले—"मैं तो एक उस ईश्वर के सहवास की अभिलाषा रखता हूँ। लोगों के विरोध या निन्दा से मुक्त होने की मैंने कभी इच्छा नही की। सब को मनानेवाला वह ईश्वर भी अश्रद्धालु निन्दकों की जीभ से नहीं बच पाया, तो मैं उससे बचनेवाला कौन?"

एक दिन वे सभा में उपदेश दे रहे थे। उसी समय बादशाह हेजाज अपने दल-बल-सहित वहाँ आये। यह देखकर किसी ने कहा—"आज हुसेन की परीक्षा हो जायगी। बादशाह को देखते वे बोलते-बोलते रुक जायँगे और उनकी आवभगत में लग जायँगे।" बादशाह के आकर बैठ जाने पर भी उन्होंने उनकी तरफ़ नज़र तक नहीं

उठाई। वे अपना उपदेश देते रहे। यह देखकर वह व्यक्ति समझ गया कि हुसेन सचमुच हुसेन है। सभा समाप्त होने पर बादशाह हेजाज हुसेन के पास गए। भक्ति भाव से उनका हाथ चूमकर उन्होंने सब लोगों से कहा—"यदि तुम्हें साधु पुरुष के दर्शन करने हों तो हुसेन का दर्शन करो।"

हज़रत पैग़म्बर मुहम्मद साहब के धर्म-प्रचारक हज़रत अली ने एक दिन सभा में आकर हुसेन से कहा—"तुम ज्ञानी हो अथवा ज्ञानेच्छु ?" हुसेन ने उत्तर दिया—"मैं ज्ञानी नहीं; पैग़म्बर साहब से मैंने जो ज्ञान और सत्य जाना है उसी को मैं यहाँ दोहराता रहता हूँ।"

यह सुनकर हज़रत अली लौट गए और कहते गए—"हुसेन एक सच्चा साधु और उत्तम वक्ता है।" उनके लौट जाने पर हुसेन बसराई को मालूम हुआ कि वे तो कोई सामान्य व्यक्ति नहीं थे, वे थे पूज्य हज़रत अली। वे तुरंत उपदेश करना छोड़कर उनके पीछे दौड़े। उनके पास पहुँचकर उन्होंने विनय-पूर्वक कहा—"ख़ुदा के वास्ते आप मुझे वज़ू—अंग शुद्धि—करना सिखावें।" वहीं जलपात्र मँगवाया गया और अली ने हुसेन को वज़ू करना सिखाया। जिस स्थल पर यह घटना हुई थी उस का "मायोलतेस्त" अर्थात् जलपात्र नाम पड़ गया।

काल चाहे जब आ जाएगा यह समझ कर वे सदा सावधान रहते।

उन्हें हँसते किसी ने कभी नहीं देखा। एक दिन एक आदमी को रोते देखकर उन्होंने उसका कारण पूछा। उसने जवाब दिया—"मुहम्मद कावेर के पास मैं गया था तो उनसे मुझे मालूम हुआ कि धार्मिक पुरुषों में भी एक ऐसा है जिसे कई वर्ष तक नरक में रहकर अपने पाप का फल भोगना होगा। उसी बात के डर से मैं रो रहा हूँ।" यह सुनकर हुसेन बोले—"वह पापी और कोई नहीं, मैं ही हूँ।"

६ बाल्यावस्था में हुसेन ने एक पाप किया था। उस पाप को सदा याद रखने के लिये वे जब कभी नया कपडा पहनते तो उस पर वह बात लिख लेते और उसे याद करके रोते-रोते बेहोश हो जाते।

७ मलिक दीनार ने कहा है कि मैंने एक दिन हुसेन से पूछा—"महात्मन्! बुरे से बुरा दुर्भाग्य क्या?" उन्होंने कहा—"मन की मौत।" मैंने पूछा—"मन की मौत कैसी होती है?" उन्होंने बताया—"संसार में आसक्ति होना मन का मरना है।"

८ हुसेन दूसरे सब लोगों को अपने से श्रेष्ठ मानते, और अपने आप को सबसे नीच। एक दिन दजला नदी के तट पर उन्होंने एक आदमी को एक औरत की बग़ल में बैठकर शराब पीते देखा। उसे देखकर उनके मन में यह विचार उठा कि यह आदमी भी क्या मुझसे भला है? हरगिज़ नहीं। यह शराबी है, दुर्व्यसनी है! इतने में नदी में एक नाव दिखाई दी जिसमें सात आदमी बैठे थे। अकस्मात् नाव उलट गई और वे मुसाफिर डूबने लगे। पलक भाँजते ही वह शराबी नदी में कूद पडा और उसने बडी बहादुरी के साथ छः आदमियों को डूबने से बचा लिया। नदी के बाहर आकर उसने कहा—"पानी में डूबते हुये सात में से छः को मैंने बचा लिया। अब तू सिर्फ़ एक को ही बचा ले! ऐ मुसलमान धर्म के उपदेशक, यह औरत मेरी माँ है और मेरी इस बोतल में शराब नहीं पानी है। मुझे तो सिर्फ़ तेरी परीक्षा करनी थी। मैं जान गया तू तो अन्धा है।" यह सुनकर हुसेन शर्मा गये और विनम्रभाव से उसके चरणों में गिरकर उन्होंने माफ़ी माँगी। शिक्षा देने के लिए उसे ईश्वर प्रेरित समझकर हुसेन ने कहा—"आपने नदी की विकराल तरंगों से छः मनुष्यों को बचाया है, उसी प्रकार अहंकार रूपी नदी की तरंगों से मेरा भी उद्धार करें।" वह बोला—"तेरा उद्धार हो, तेरी आँखें खुल जायँ! इतना कहकर वह व्यक्ति चला गया। इस घटना से हुसेन

का अहंकार दूर हो गया और उन्होंने किसी को अपने से नीच और अपने आप को किसी से उच्च मानना छोड़ दिया।

एक बार एक कुत्ता उनके पास आकर खड़ा होगया। उसे देखकर किसी ने उनसे पूछा—"आप श्रेष्ठ हैं या यह कुत्ता?" वे बोले—"यदि मैं अपने धार्मिक जीवन की रक्षा कर सकूँ तो मैं श्रेष्ठ, और यदि न कर सकूँ तो मेरे जैसे सौ हुसेनों से यह कुत्ता ही श्रेष्ठ होगा।"

हुसेन ने कहा है कि उन्हें एक शराबी, एक बालक और एक स्त्री के आगे बहुत शर्मिन्दा होना पड़ा। एक दिन एक शराबी नशे में चूर पैर लड़खड़ाता चला जा रहा था, उसे देखकर उन्होंने कहा—'अरे भाई, पाँव सँभालकर चल, नहीं तो गिर जायगा।' उत्तर में वह बोला—'अरे भलेमानस! तू मुझे कहनेवाला कौन? अपने पैर तो सँभाल? तू तो एक धर्मात्मा कहलाने वाला है और मैं तो हूँ सरे आम शराब पीने वाला! मैं गिर जाऊँगा तो पानी से धोकर शरीर साफ कर लूँगा, पर कहीं तूँ फिसल गया तो तेरी शुद्धि होनी मुश्किल हो जायगी।' यह सुनकर हुसेन शरमिंदा हो गए। दूसरी बार एक ऐसी घटना हुई कि एक बालक हाथ में एक दीपक लिए आ रहा था। हुसेन ने उससे पूछा—'यह दीया कहाँ से लाया था?' इतने में पवन के झोंके से दीपक बुझ गया। बालक इस पर हुसेन से पूछ बैठा—'पहले तुम्हीं बताओ अब वह कहाँ चला गया? तब बताऊँगा मै उसे कहाँ से लाया था।' तीसरी घटना ऐसी हुई कि एक दिन एक सुन्दरी युवती बिना घूँघट के उनके सामने आकर अपने पति की बेवफाई पर नाराज़ होकर उसकी निंदा करने लगी। हुसेन उसे इस प्रकार निर्लज्ज देखकर बोले—'पहले अपने कपड़े तो सँभाल, मुँह तो ढक, फिर जो कुछ कहना हो सो कहना।' वह स्त्री बोली—'अरे भाई, मै तो प्रभु के सिरजे हुए एक प्राणी के प्रेम में मुग्ध होकर बेहोश हो रही हूँ, मुझे अपने तन बदन का क्या ख्याल? आप मुझे सचेत न कर देते तो मैं

ऐसे ही उसे खोजने के लिए बाज़ार में निकल जाती ! पर यह कैसे अचरज की बात है कि प्रभु के प्रेम में पागल होकर भी आपको इतनी सुध है कि आप यह जान गए कि मेरा मुँह खुला है या ढका ?'

एक दिन एक व्यक्ति ने महात्मा हुसेन और उनके धर्म बंधुओं की प्रशंसा करते हुए उन्हें पैग़म्बर मुहम्मद साहब और उनके साथियों के समान बता दिया। दूसरे सब तो बहुत ख़ुश हुए, पर हुसेन ने कहा, शरीर के इन अंगों ही में तुम्हें समानता मालूम देती हो तो दूसरी बात है, पर उनकी धार्मिकता से हमारी क्या तुलना ? वे तो धर्म-कार्य में तल्लीन रहते थे, उन्हें देखते हुए तो हममें से एक भी सच्चा मुसलमान नहीं। वे सब तेज़ घोड़े पर सवार स्वर्ग की ओर दौड़ रहे हैं और हम लोग मरियल गदहों पर चढ़कर धीरे-धीरे चल रहे हैं।

सहनशीलता के विषय में एक दिन उन्होंने एक मुसाफिर से कहा था—"सहनशीलता दो प्रकार की होती है—(१) दुःख अथवा आपत्ति कालीन, (२) ईश्वर के द्वारा निषिद्ध बातों के विषय में। इसके आगे धैर्य के बारे में कई अच्छी बातें सुनकर उस मुसाफिर ने कहा—'मैंने आपके सरीखा सहनशील न देखा, न सुना।" इसपर वे बोले—"भाई, मेरे धैर्य और अधैर्य दोनों का कारण मेरा वैराग्य है। और परमार्थ की लालसा ही से मेरा संसार में वैराग्य है, यही मेरी आसक्ति है। सच्चा धीरज अथवा सहनशीलता तो वही है जिसका आधार ईश्वर की प्रीति है। एक ईश्वर की प्राप्ति के लिए जिसके मन में वैराग्य उपजा हो, वही सच्चा वैरागी है; स्वर्ग के लोभ से जो वैरागी बना हो वह तो असल वैरागी नहीं।"

एक आदमी बीस बरस से सामूहिक प्रार्थना में नहीं आया था और न किसी से मिलता-जुलता ही था। हुसेन उसके पास गए। सामूहिक प्रार्थना में न आने का कारण पूछा तो उसने कहा—"भाई,

मुझे बहुत काम रहता है?" हुसेन ने पूछा—"ऐसा कौन-सा काम है?" इस पर उस व्यक्ति ने उत्तर दिया—"भाई अपने शरीर के हर एक साँस में मैं एक भी ऐसा सांस नहीं देखता जिसमें उस ईश्वर की करुणा और ईश्वर के प्रति मेरा अपराध न समाया हो। उस करुणा के लिए प्रभु का कृतज्ञता प्रकट करने और अपराध के लिये क्षमा माँगने के काम में मैं लगा रहता हूँ। इसीलिये सामूहिक उपासना करने और मस्जिद में नमाज़ पढ़ने के लिये मैं नहीं आ सकता। हुसेन बोले—"बहुत ठीक भाई, तू अपने रास्ते पर चल। तू मुझसे कहीं अधिक श्रेष्ठ है।"

किसी ने हुसेन से पूछा—"कभी तुम्हें हर्ष हुआ? कोई ऐसा प्रसंग आया जब तुमने आनन्दाश्रु बहाये?"

उन्होंने उत्तर दिया—"हाँ, एक बार ऐसा प्रसंग आया था। एक दिन मैं अपने मकान के पास पलथी मारे बैठा था। मैंने सुना मेरे पड़ोसी की स्त्री अपने पति से कह रही थी—'देखो, मैं पचास वर्ष से तुम्हारे घर में हूँ। घर में कोई चीज़ हो या न हो, मैंने जैसे तैसे काम चला लिया है, पर मैंने कभी तुम्हें एक भी शब्द नहीं कहा। तुम्हारे साथ मैंने सर्दी गरमी सब कुछ सहा है। गहने कपड़े के लिए भी मैंने कभ तुमसे फरियाद नहीं की, सदा तुम्हारी इज्ज़त-आबरू का ख़याल रखकर चलती रही हूँ। किसी पड़ोसी से भी मैंने तुम्हारी बुराई का जिक्र नहीं किया। मैं सब तरह से तुम्हारी होकर रही हूँ और वह इसीलिए कि तुम दूसरी स्त्री न व्याहो। ये सब कष्ट मैंने इसी एक आशा से सहे हैं। तुम यदि एक मुझे ही अपनी मानोगे तो मैं तुम्हारी होकर रहूँगी; लेकिन आज तुम्हारी नज़र किसी दूसरी स्त्री से लड़ी दिखाई देता है। जाती हूँ मैं क़ाज़ीजी के पास इस बात की फरियाद कर आती हूँ।' उस स्त्री की यह बात सुनकर मेरी आँखें भर आईं, और उन आनन्दाश्रुओं से मैं गद्-गद् हो गया। इस बात का

खुलासा मुझे कुरान में इस प्रकार मिला—"जो मनुष्य अपने दिल में ईश्वर के साथ किसी दूसरे को भी जगह देता है, उसे ईश्वर माफ़ नहीं करता। जो मनुष्य एकमात्र ईश्वर को चाहता है, उसे ही क्षमा मिलती है। ईश्वर ने कहा—मैं तुम्हारे सब अपराधों को माफ कर दूँगा, यदि तुम्हारे हृदय के किसी कोने में भी दूसरी किसी चीज़ की इच्छा होगी तो मैं क्षमा नहीं कर सकूँगा।"

एक मनुष्य ने महात्मा हुसेन से पूछा—"आप कैसी हालत में हैं?" उन्होंने कहा—"गहरी नदी में नौका के डूब जाने पर डुबकियाँ खाते हुए एक लकड़ी के टुकड़े के सहारे प्राण बचाने की चेष्टा करने वाले मनुष्य की हालत कैसी होती है?"

उसने उत्तर दिया—"बहुत ही ख़राब।" हुसेन ने कहा—"मेरी भी हालत ठीक वैसी ही है।

ईद के दिन बहुत से लोगों को इकट्ठे होकर मौज-मज़ा और हँसते बोलते देखकर मुझे बहुत ही अचरज हो रहा है। जो अपनी सच्ची हालत का विचार किए बिना ही राग-रंग में मस्त हो रहे हैं यदि वे सब अपनी असली हालत को पहचान जायँ तो फिर एक पल भी ये यों व्यर्थ न जाने देंगे।"

एक दिन एक आदमी को श्मशान में बड़ी मस्ती के साथ भोजन करते देखकर उन्होंने कहा—"यह तो बहुत अज्ञानी मालूम देता है।" किसी ने पूछा—"आपने कैसे जाना? वे बोले—"शव के सामने बैठकर जो खा पीकर सुख मानता है वह यह भूला हुआ है कि एक दिन उसकी मौत भी आनेवाली है, उसे भी यह जगत् छोड़कर जाना होगा।"

९/, महात्मा हुसेन ने एक बार इस प्रकार प्रभु-प्रार्थना की—"हे प्रभु! तूने मुझे सम्पत्ति दी, तो भी मैंने तेरा गुणगान नहीं किया; तूने विपत्ति दी तो मैंने धीरज नहीं रखा; मैंने तेरी कृतज्ञता नहीं मानी

तो भी तूने दी हुई सम्मत्ति वापस नहीं ली और मैंने धीरज नहीं धारण किया तो भी तूने विपत्ति को स्थायी नहीं बनाया। हे प्रभु! मैं तेरी कृपा का कितना गुणगान करूँ?"

मरते समय हुसेन हँसे थे, उससे पहले किसी ने उन्हें हँसते नहीं देखा था। मरते समय वे हँसकर कह उठे थे—"कौन-सा पाप? कौन-सा पाप?" उसी समय एक वृद्ध ने इसका कारण पूछा तो उन्होंने बताया—'मैंने अभी एक दैवी-वाणी सुनी है—'हे काल! इसे जकड़कर बाँध। अभी इसके जीवन में एक पाप बाक़ी है।' मैं यह जानकर हँस पड़ा कि बस एक ही पाप बाक़ी है और पूछ उठा—'कौन-सा पाप? कौन-सा पाप?' इसके बाद उनका देहावसान हो गया।

उपदेश-वचन

१—मनुष्य की अपेक्षा तो भेड़-बकरे भी अधिक सचेत होते हैं, क्योंकि वे गड़रिए की आवाज़ सुनकर खाना-पीना भी छोड़कर उसकी ओर तुरंत दौड़ पड़ते हैं; दूसरी ओर मनुष्य इतने लापरवा हैं कि ईश्वर की ओर जाने की बाँग सुनकर भी उधर न जाकर आहार-विहार में तल्लीन रहते हैं।

२—सुरापान और संसार की आसक्ति में से एक बात को चुन लेने के लिए मुझे कहा जाय तो मैं सुरापान को चुनूँगा; संसार की आसक्ति सुरापान से भी अधिक ख़राब है।

३—जब मैं देख लूंगा कि मेरे मन में ईश्वर के विरोध का एक कण भी शेष नहीं रह गया है, तभी मैं समझूँगा कि मुझे सच्चा ईश्वर ज्ञान हुआ है।

४—अपने पास बहुत से नौकर-चाकर देखकर एक अज्ञानी ही फूला नहीं समाता।

०

५—यदि किसी पर तुम्हें अपना हुक्म चलाना है तो पहले तुम्हीं उसके हुक्म बजानेवाले बनो।

६—मेरे कुटुम्बी, स्त्री, पुत्रों की अपेक्षा मुझे मेरे धर्म के साथी अधिक प्रिय हैं; कारण वे धर्म में सहायक होते हैं, घर वाले तो धर्म-कार्य में बाधक भी हो जाते हैं।

७—इन्द्रियासक्त मनुष्य, दुराचारी धनवान् और अत्याचारी आचार्य इन तीनों के दोष प्रकट करना निंदा करना नहीं है।

८—विषयी इन तीन बातों का अफ़सोस करते-करते मरता है कि इंद्रियों के संभोग से तृप्त न हो पाया। मन की आशायें पूरी न होकर अधूरी ही रह गईं और परलोक में जाने की तैयारी नहीं कर पाया।

९—जिसने अपना बोझ हलका कर लिया है, वही पार उतर सकता है। जिसने अपना बोझ बढ़ा लिया है वह तो डूबेगा ही।

१०—जो मनुष्य संसार को नाशवान और धर्म को सदा का साथी समझकर चलता है, वही उत्तम गति पाता है। जो नाशवान चीज़ों का मोह छोड़कर, संसार का भार प्रभु पर छोड़कर, भार-रहित हो जाता है वह सहज ही संसार-सागर तर जाता है।

११—परलोक को तोड़कर उसके सामान से संसार बनानेवाले की अपेक्षा संसार को तोड़कर परलोक का महल खड़ा करनेवाला अधिक चतुर है। वही सच्चा ज्ञानी है।

१२—जो मनुष्य ईश्वर को पहचानता है वही उस पर विश्वास और प्रेम रख सकता है; किन्तु जो केवल संसार को पहचानता है वह ईश्वर से शत्रुता ही निबाहता है।

१३—इस दुनिया में इन्द्रियों को बाँधने के लिये जैसी मज़बूत साँकल चाहिये वैसी मज़बूत सांकल पशुओं को बाँधने के लिये भी नहीं चाहिये।

१४—तुम्हारी मृत्यु के बाद संसार तुम्हारे बारे में क्या कहेगा यह जानना हो तो दूसरे जो मर गये हैं उनके बारे मे संसार क्या कहता है, उसे सुनो।

१५—तुम्हारे पूर्वज ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करते हुये चलते थे। रात को वे उसका चिंतन करते थे और दिन में उसके मुताबिक बर्त्ताव करते थे। पर तुमने वैसा करना छोड़ ही नहीं दिया, उलटे ईश्वर की आज्ञाओं के उलटे-सुलटे अर्थ लगाकर तुम संसार मे आसक्ति बढ़ानेवाले लेख तैयार कर रहे हो।

१६—हज़ार वर्ष तक बिना मन लगाये नमाज़ पढ़ने और रोज़ा करने के बजाय एक कण के बराबर संसार के प्रति सच्ची अनासक्ति बढ़ाना अधिक उत्तम है।

१७—तुम्हारा चिंतन तुम्हारा दर्पण है, कारण, तुम्हारे शुभाशुभ का हाल वह बता देगा।

१८—जो बिना विचारे बोलता है उसे विपत्ति में पड़ना पड़ता है। जो बिना विचारे मौन रहता है उसके मन मे बुरी इच्छायें और आलस्य स्थान कर लेते हैं। जिसकी दृष्टि वश मे नहीं रहती, उसे कुमार्ग पर जाना पड़ता है।

१९—जिसने वासनाओं को पैरों तले कुचल दिया है, वही मुक्त है। जिसने ईर्षा का त्याग कर दिया है उसी ने प्रेम को पाया है; जिसने धीरज धारण किया है उसने शुभ परिणाम पाया है।

२०—जब तक हृदय संकेत नहीं करता, ज्ञानी मौन रहते हैं। उनकी जीभ से वही बात निकलती है जो उनके हृदय मे होती है।

२१—अनासक्ति की तीन अवस्थायें है—(१) साधक स्वय बड़ा महात्मा, शोधक अथवा लोगों का उद्धारक हो तो भी वैसे नहीं बोलना; किन्तु एकमात्र ईश्वर की आज्ञाओं का परदा हटाते रहना। (२) जिस बात को प्रभु पसन्द नहीं करता, उससे अपना

इन्द्रियों को बचाना। (३) जिस बात से प्रभु ख़ुश होता है उस पर आचरण करने का प्रयत्न करना।



१६—हबीब आज्वमी

तपस्वी हबीब आज्वम देश के वासी थे। अरब के बाहर के छोटे देश, विशेषतः ईरान और तूरान आज्वम कहलाते थे। वहाँ से वे बसरा शहर में जाकर रहने लगे थे। उनको हुए बारह सौ वर्ष होगए। तपस्वी हुसेन के उपदेश से उनका जीवन बदल गया था। पहले वे व्याजख़ोरी का धंधा किया करते थे। काफ़ी व्याज देनेवालों को वे दुगुने-तिगुने का रुक्का लिखाकर उधार दिया करते। एक बार वे अपने क़र्ज़दार से व्याज वसूल करने के लिए गए। क़र्ज़दार घर पर न था, उसकी स्त्री थी। उन्हें आया देखकर उसने कहा—"वे तो बाहर गए हैं, पर हमारे पास व्याज चुकाने के लिए कुछ भी नही है। फ़क़त इतनी-सी सब्ज़ी बची है, ज़रूरत हो तो व्याज के बदले में लेते जाइए।" हबीब उसे ही लेकर चले आए। उनकी स्त्री ने वही तरकारी पकाई। उस दिन नमक और अनाज भी व्याज के बदले में ही लाए हुए थे। खाना तैयार होने पर स्त्री ने उन्हें भोजन के लिए बुलाया। इतने में एक भिखारी आकर भीख के लिए पुकारने लगा। हबीब ने उसे धमकाकर कहा—"चला जा, यहाँ से। यहाँ तुझे कुछ भी नहीं मिलेगा।" यह उत्तर सुनकर भिखारी लौट गया। हबीब खाने बैठा था उसे थाली ख़ून से भरी दिखाई दी। वह जान गया यह व्याजख़ोरी ही का नतीजा है और उससे हाथ हटाने के लिए ईश्वर की प्रेरणा है। इस्लाम धर्म में व्याज खाने की सख़्त मनाही है। हबीब की आँखें खुल गई। इस धंधे से हाथ हटाने के लिए वे

अपनी पूँजी वापस इकट्ठी कर लेने के लिए निकले। उन्हें देखकर रास्ते में खेलते हुए लड़के बोल उठे—"भागो, भागो, सूद ख़ोर हबीब आया, उसका पाँव पड़ने से धरती नापाक होगई।" यह सुनकर हबीब के दिल में गहरा आघात हुआ और उदास मन से वे वहाँ से महात्मा हुसेन के पास चले गए।

महात्मा हुसेन के उपदेश वचनों का भी उनके दिल पर पूरा असर नहीं हुआ। पश्चात्ताप करते-करते वे अपने घर लौटे। रास्ते में उन्हें आता देखकर उनका एक कर्ज़दार एक कोने में छिप गया। हबीब ने पास जाकर उसे बुलाकर कहा—"भाई, दरअसल तुम्हें नहीं, मुझे तुम्हारे सामने से भाग जाना चाहिए था।" इतना कहकर वे आगे बढ़े तो रास्ते में खेलते हुए वे लड़के अब की बार आपस में बात कर रहे थे—"आओ, आओ; देखो हबीब पछतावा करके पाक होगया। उससे अपने नापाक शरीर न छुआ देना, नहीं तो ख़ुदा का गुनाह होगा।" यह सुनकर हबीब मन ही मन बोले—"हे प्रभु! तेरी ओर अच्छे मनोभाव धारण करने पर एक दिन में ही लोगों के मन में मेरे प्रति कैसी अच्छी भावना होगई।" उसके बाद उन्होंने सारे गाँव में ढिंढोरा पिटवा दिया कि हबीब के कर्ज़दारों का क़र्ज़ माफ कर दिया गया है; वे लोग आकर अपने-अपने ख़त वापस ले जायँ। ढिंढोरा सुनकर सब कर्ज़दार चले आए, बिना एक पैसा वापस लिए हबीब ने उन सब के ख़त फाड़ डाले। जो कुछ दौलत उनके पास थी, वह भी उन्होंने ग़रीबों को बाँट दी और स्वयं अकिंचन बन गये। उसी समय एक भिखारी ने आकर उनसे भीख माँगी। हबीब के शरीर पर एक वस्त्र था। उन्होंने वही उस भिखारी को दिया। उसके बाद दूसरा भिक्षुक आया। उसे उन्होंने अपनी स्त्री का ओढ़ने का कपड़ा दे दिया। फेरात नदी के किनारे जाकर हबीब ने एक छोटी-सी झोंपड़ी बाँधी और उसमें रहकर वे तप तथा साधना करने लगे। दिन में वे

336

हुसेन बसराई के पास जाकर ज्ञान की चर्चा करते और रात्रि में भजन करते। इस प्रकार कुछ समय बीतने पर उनकी स्त्री अन्न बिना हैरान रहने लगी। उसने पति से पैसा माँगा तो उन्होंने कहा—"मैं रोज़ काम करने जाता तो हूँ, मालिक जिस दिन तनख़्वाह देगा उस दिन ले आऊँगा।" अब वे रोज़ दिन में जाकर एकान्त में उपासना करते और रात में लौटते। पत्नी पूछती—"कुछ लाये ?" तो वे कहते—"मेरा मालिक इतना बडा दानी है कि उससे माँगते मुझे तो शर्म आती है; पर समय आने पर वह ख़ुद देगा, उसने मुझसे दसवें दिन तनख़्वाह देने को कहा था।" नियमानुसार वे रात-दिन प्रभु-भजन में लीन रहते। नौ दिन यों ही बीत गए। दसवें दिन उन्हें चिंता हुई कि आज कुछ भी घर नहीं ले जाऊँगा तो औरत को क्या जवाब दूँगा? वे चिंता के मारे मुँह लटकाकर रह गए।

दोपहर में एक युवक खाने-पीने का बहुत-सा सामान और तीन सौ मुद्राओं की एक थैली लेकर उनके घर पहुँचा। उनकी पत्नी को वह सब सामान सौंपकर उसने कहा—"मेरे उदार मालिक ने ये सब चीज़ें भिजवाई हैं और कहलाया है कि ज्यों-ज्यों हबीब उनकी ज़्यादा सेवा करेगा, त्यों-त्यों उसे ज़्यादा तनख़्वाह मिलेगी।' इतना कहकर वह जवान वहाँ से चला गया।

संध्या होने पर हबीब सकुचाते-सकुचाते घर लौटे। विविध प्रकार के व्यंजनों की सुगंधि से वे चकित हो गए। उनकी पत्नी ने आगे बढकर हँसते-हँसते कहा—"ओ हो, आपका मालिक तो बडा दयालु है। आज मेहरबानी करके उसी ने यह सब भेज दिया है और कहलाया है कि खूब मन लगाकर चाकरी करते जाना।" हबीब बोले—"बड़े अचरज की बात है दस दिन की साधारण-सी चाकरी के बदले में उसने मुझपर इतनी दया की। और अधिक सेवा करने पर तो वह न जाने अपनी

कितनी कृपा दिखावेगा ? इसके बाद हबीब दुनिया से विरक्त होकर और भी अधिक भक्ति-भाव से धर्म-साधना में लग गए।

एक दिन तपस्वी हुसेन हबीब के पास आए। हबीब के घर में उस समय रोटी का एक टुकड़ा और थोड़ा-सा नमक था, वही उन्होंने हुसेन के आगे रख दिया। इतने में एक भिखारी आगया। हबीब ने हुसेन के आगे रखा हुआ वह टुकड़ा उठाकर भिखारी को दे दिया। इस पर हुसेन बोले—"हबीब ! तुम में इतनी भी अक्ल नहीं ? अतिथि को परसा हुआ अन्न वापस उठा लेना अनुचित है। यदि भिखारी को भीख देनी थी तो कुछ बचा रखना था।" यह सुनकर हबीब कुछ बोले नहीं। कुछ ही देर बाद एक आदमी भोजन पदार्थों से भरे थाल और पाँच सौ मुद्रा लेकर हबीब की सेवा में आया। हबीब ने धन गरीबों को बाँट दिया और वे मिष्टान्न हुसेन के आगे रखकर वे बोले—"आप महापुरुष हैं, यदि आप में थोड़ा-सा भी विश्वास होता तो ज्ञान और विश्वास का अच्छा संयोग होता। और वह संयोग प्रभु-दर्शन के लिए बहुत ज़रूरी है।"

हबीब अरबी भाषा अच्छी तरह नहीं जानते थे, इसलिये वे क़ुरान का शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाते थे। एक दिन संध्या के समय हुसेन हबीब के पास आए। उन्हें नमाज़ के कुछ शब्द अशुद्ध बोलते सुनकर वे अपनी अलग शुद्ध नमाज़ पढ़ने लगे। रात्रि को स्वप्न में मानों उन्होंने ईश्वर से पूछा—'हे प्रभु ! तुम्हें किस में संतोष है ?' उन्हें उत्तर मिला—'तूने मेरा संतोष तो पाया है, पर उसके लिए तू ठीक रीति नहीं निबाहता।' हुसेन ने पूछा—'यह कैसे ?' उत्तर मिला 'यदि तूने हबीब के साथ ही नमाज़ पढ़ी होती तो तेरा विशेष कल्याण होता। हबीब के भक्ति-भाव की ओर ध्यान न देकर तूने ध्यान दिया उसके उच्चारण की ओर। उसके पवित्र अंतःकरण की ओर तो तूने ध्यान दिया ही नहीं। जीभ से शुद्ध उच्चारण और हृदय

के पवित्र भावों में ज़मीन आसमान का अन्तर है । शुद्ध वाणी की अपेक्षा शुद्ध विचार बहुत अधिक उत्तम है ।'

एक दासी हबीब के यहाँ तीस वर्ष से रहती थी, तो भी हबीब ने एक दिन भी उसका मुँह नहीं देखा था । एक दिन हबीब ने उससे कहा—'बहन ! भीतर जाकर मेरी दासी को बुला ला ।' दासी बोली—'आप जिसे बुलाते हैं, वह तो मैं ही हूँ ।' क्या आप नहीं पहचानते ? हबीब बोले—'तीस वर्ष से मैंने ईश्वर के सिवा किसी की ओर स्थिर दृष्टि से नहीं देखा तो फिर तुम्हें कैसे पहचानता ?'

एक दिन किसी ने हबीब से पूछा—'आप सब कामों से निपटकर एकांत सेवन करते हैं, तो भी आपको संतोष कैसे होता है ?' हबीब ने कहा—'हृदय को सरल और पवित्र करने ही से संतोष होता है । जिस हृदय में असरलता की गंध भी नहीं रहती, वही हृदय संतोष पा सकता है ।'

एक दिन एकांत में बैठकर हबीब ने कहा था—'हे प्रभु ! जिसे तुझसे संतोष नहीं, उसे दूसरे किससे संतोष होगा ? और जिसे तुझसे प्रेम नहीं, उसका दूसरे किससे प्रेम होगा ?'

महर्षि हबीब के पास जब कोई क़ुरान पढ़ता तो वे भक्ति-भाव से रुदन करने लगते । क़ुरान सुनकर जब उनकी आँखें छलकने लगतीं तो लोग पूछते—'हबीब ! आप आज्ज़म देश के रहनेवाले हैं, क़ुरान का अर्थ भी नहीं समझते, तो भी आप रोने कैसे लगते हैं ?' उसके उत्तर में महात्मा हबीब कहते—'मेरी जीभ भले ही आज्ज़मी हो पर मेरा दिल तो अरबी है ।'

कैसे और कहाँ महर्षि हबीब का स्वर्गवास हुआ, इसका उल्लेख नहीं मिलता है ।



१७—मलिक दिनार दमस्की

तपस्वी मलिक दिनार हुसेन बसराई के साथी थे। उनके पिता ग़ुलाम थे, तो भी उनका यह भाग्यशाली पुत्र जीवन्मुक्त पुरुष हुआ। उन्होंने कठोर साधनाओं के द्वारा ख़ूब लाभ उठाया था। वे अतीव सुन्दर और बलशाली थे। वे दमास्कस शहर में रहते थे। उस शहर की मस्जिद में उन्होंने नियमित रूप से कुछ समय तक साधना की। उस मस्जिद को बनवाने वाला मनिया नाम का एक व्यक्ति था। उस मस्जिद की मालिकी पाने के लोभ ही से मलिक दिनार वहाँ जाकर व्रत-साधना में लगे थे। एक वर्ष तक वे उसी लोभ के मारे मस्जिद में उपासना करते रहे। एक वर्ष के बाद मस्जिद से घर लौटते समय उन्हें रास्ते में दैववाणी सुनाई दी—"मलिक, मलिक! यह क्या तू धर्म-कार्य भी एक क्षुद्र लालसा के लिए कर रहा है! देख, लौटकर मत जा!" यह आज्ञा सुनकर वे उलटे पाँव मस्जिद में लौट आए और विचारने लगे—"हाय, मैंने यह क्या किया? एक वर्ष तक कपट और सकाम भाव से ईश्वर की उपासना करके मैं प्रभु का विश्वास और प्रेम ही भूल गया, तुच्छ लालच में फँस गया। सिर्फ आज ही मैं पवित्र अंतःकरण से उपासना कर सका हूँ।"

दूसरे दिन प्रातःकाल कुछ उपासक आकर कहने लगे कि इस मस्जिद के लिए एक योग्य उपदेशक की ज़रूरत है। सब की नज़र मलिक दिनार पर पड़ी और उन्हें उनसे योग्य दूसरा नहीं दिखाई दिया। उन्होंने उनसे मस्जिद का मुखिया बनने की विनती की। उनकी बात सुनकर उन्होंने मन ही मन कहा—'हे प्रभो! एक वर्ष तक मैं कपट-भाव से तेरी उपासना करता रहा, तब तो किसी ने मेरी ओर नज़र नहीं उठाई। आज तुझे अपना हृदय अर्पित करते ही, तुझपर सच्चा विश्वास करते ही, तूने इतने लोगों को उसी बात के लिये मेरे पास भेज दिया; तेरी

महिमा अपार है, तेरी उसी महिमा की शपथ खाकर मैं कहता हूँ कि अब मेरे मन में वह लालसा रह ही नहीं गई है।' वे उसी समय मस्जिद छोड़कर चल दिये और और भी अधिक भक्ति-भाव से प्रभु के ध्यान में लग गए।

बसरा में एक धनवान रहता था। एक बेटी छोड़कर वह मर गया। वह कन्या बहुत ही सुन्दरी और धर्म परायणा थी। वह कन्या साबेत नाम के अपने एक सम्बन्धी के पास जाकर बोली—'मेरी मन्शा मलिक दिनार की पत्नी होने की है; कारण, वैसे धार्मिक पति को पाकर मैं अपने जीवन को उन्नत बना सकूँगी।'

साबेत ने यह बात मलिक दिनार से कहकर उनसे कन्या की शादी कर लेने की विनती की। मलिक दिनार बोले—''मैंने इस संसार का त्याग कर दिया है। औरत तो दुनिया की जड़ है, मैं किसी भी तरह शादी नहीं कर सकता।'

मलिक दिनार का एक युवक पड़ोसी बहुत ही पाखण्डी और ज़ुल्मी था। उसके रंग-ढंग देखकर मलिक दिनार बहुत दुःखी होते। एक दिन उस पड़ोसी से हैरान होकर बहुत से लोग अपना दुखड़ा सुनाने उनके पास आए। मलिक दिनार सब के साथ उस युवक के यहाँ गए। उन्होंने उसे बड़ी शांति के साथ उपदेश दिया, तो भी उस अभिमानी ने धमकाकर कहा—'मैं ही बादशाह का प्रीतिपात्र हूँ; किसकी ताक़त है जो मुझे कोई कुछ कहे?'

मलिक दिनार बोले—'हम सब बादशाह से जाकर यह सब हाल कह देंगे।'

युवक—'चाहे जो कहो न! बादशाह मेरी ही बात मानेगा।'

मलिक दिनार—'यदि राजा भी हमारी फ़र्याद नहीं सुनेगा तो हम राजा के राजा उस प्रभु के सामने पुकारेंगे।'

युवक—'वह तो बहुत दयालु है।'

मलिक दिनार निराश होकर लौट आए। उस जवान का जुल्म धीरे-धीरे बढ़ने लगा। फिर एक बार बहुत से लोग मलिक दिनार के पास इकट्ठे होकर आए और अपनी बुरी हालत सुनाने लगे। वे फिर एक बार उसे समझाने के लिए गए।

जाते समय रास्ते में उन्हें सुनाई दिया—'अरे दिनार ! तुममें से कोई भी मेरे बंधु पर हाथ न उठावे !' यह सुनकर सब चकित हुए। मलिक दिनार को दूसरी बार आया देखकर वह जवान बोला—'फिर क्यों चला आया ?'

मलिक दिनार बोले—'भाई ! तुम्हें एक खुश-खबर सुनावें। हम लोगों ने दैववाणी सुनी है कि तुम प्रभु के सखा हो।'

युवक ने कहा—'महात्मन् ! मुझे भी अपने किए हुए कृत्यों पर बहुत पछतावा है। कल से मेरा मन बदल गया है। जो कुछ मेरे पास है, उसे मैं प्रभु के नाम पर छोड़ देता हूँ।' इतना कहकर उसने अपना धन ग़रीबों को बाँट दिया और प्रभु का मार्ग पकड़ लिया।

उसके बाद उसे किसी ने नहीं देखा। मलिक दिनार ने बहुत दिनों के बाद उसे मक्का में अंतिम स्थिति में देखा। वह तृण के समान विनयी, देह से दुर्बल हो गया था। मौत के किनारे बैठा वह कह रहा था—"अहा, प्रभु मुझे अपना बंधु बता रहे हैं; मैं उन्हीं बंधु के पास जाऊँगा, जिससे मेरे बंधु को सन्तोष हो, वही मेरी इच्छा है। मेरे बंधु को तो संतोष होगा उसकी सच्ची भक्ति से ! अपने कृत्यों के लिये तो मैं पछता रहा हूँ, अब फिर कभी उसका गुनाह नहीं करूंगा।" इतना कहकर उसने शरीर छोड़ दिया।

मलिक दिनार भाड़े के मकान में रहते थे। एक यहूदी उनका पड़ोसी था। उनके दरवाज़े के सहारे यहूदी ने अपना पाखाना बनवाया, जिससे आने-जाते उन्हें दुर्गंध आती। यहूदी भी ऐसा था

कि कई दिन में पाखाना साफ़ करवाता। मलिक दिनार कष्ट सहते रहे, पर उन्होंने किसी से कुछ कहा नहीं। आख़िर एक दिन ख़ुद यहूदी ने इसका ज़िक्र किया—"आपको मेरे पाखाने के कारण कोई तकलीफ तो नहीं होती ? उसे देखकर क्रोध तो नहीं आता ?"

उन्होंने उत्तर दिया—"तक़लीफ़ क्या होती ? नाक बन्द करके निकल जाता हूँ। क्रोध क्यों करता भाई। प्रभु की आज्ञा है कि मेरा भक्त कभी क्रोध न करे।"

यहूदी उनकी ऐसी विनम्रता और प्रभु-परायणता देखकर अपने किये पर पछताने लगा। माफ़ी माँगकर उसने उनसे धर्म की दीक्षा ली।

२/। मलिक दिनार कई वर्षों से केवल सूखी रोटी खाते थे। शाम को बाज़ार से रोटी ले आते और उसे खाकर पानी पी लेते। उससे उनकी तन्दुरुस्ती बहुत ठीक रहती। दैवयोग से वे एक बार बीमार हुये। बीमारी में उन्हें मिठाई खाने का शौक़ हुआ। बहुत अधिक रोकने पर भी जब मन न माना तो वे दूकानदार से कुछ सामान ख़रीद लाए। रोज़ सूखी रोटी ख़रीदनेवाले दिनार आज इस सामान का क्या करेंगे, यह जानने के कौतूहल से दूकानदार ने एक आदमी उनके पीछे लगा दिया। थोड़ी दूर जाने पर मलिक दिनार ने उस सामान की ओर देखकर अपने आप कहा—"अरे मन ! तेरे लिये इतना भोग ही बस है, और आगे नहीं।" वह सामान एक ग़रीब को देकर उन्होंने फिर कहा—"अरे मेरे दुर्बल मन ! नियमों से बाँधकर मैं तुम्हें तकलीफ़ ज़रूर देता हूँ, पर वैर-भाव से नहीं, मित्रभाव से ही। धैर्य धर, एक दिन तेरे इस दुःख का अन्त ज़रूर आयेगा और तुझे ऐसा सुख मिलेगा जिसका कभी अन्त न होगा।" कुछ देर बाद वे बोले—"लोग कहते हैं लगातार चालीस दिन तक पौष्टिक आहार न खाने से आदमी की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। मैंने तो बीस वर्ष तक

एक बार भी वैसी कोई चीज़ नहीं खाई, फिर भी मेरी बुद्धि तो दिन पर दिन सुधरती ही मालूम देती है।

मलिक दिनार चालीस वर्ष तक बसरा में रहे, पर एक बार भी उन्होंने खजूर नहीं खाया था। खजूर का मौसम आने पर वे कहते, "देखो, खजूर न खाने से मेरे शरीर का कोई नुक़सान नहीं हुआ और बराबर खजूर खाते रहने से तुम्हारे शरीर का कोई फ़ायदा नहीं हुआ।" चालीस वर्ष के बाद एक दिन उन्हें खजूर खाने की प्रबल इच्छा हुई तो उन्होंने कहा—"अरे लोभी मन! निश्चय जान, मैं तेरी वासना कभी पूरी न करूँगा।"

एक रात में उन्होंने सपने में देखा कि कोई उनसे आग्रह कर रहा है—"तपस्वी दिनार! खजूर खा लो। मन को और ज्यादा तकलीफ न दो।" इस सपने से तो उनका मन और भी अधिक ललचाया तो उन्होंने कहा—"अरे मन! सात दिन तक रोज़ा और उपासना करेगा तो तेरी इच्छा पूरी करूँगा।" इस प्रकार सात दिन के बाद रोज़ा और उपासना की समाप्ति पर खजूर ख़रीदकर खाने के लिए वे एक मस्जिद में गये। उन्हें देखकर एक बालक ने अपने पिता को पुकारकर कहा—"देखो, देखो! एक यहूदी मस्जिद में बैठकर खजूर खाने जा रहा है।"

पिता ने जवाब दिया—"यहूदी का मस्जिद में जाने से मतलब?" इतना कहकर वह यहूदी को मस्जिद में से निकाल देने के लिए लकड़ी लेकर आया, पर सामने मलिक दिनार को देखकर उसने माफी माँगते हुए कहा—"महात्मन्, कसूर माफ़ हो! हमारे यहाँ यहूदी के सिवा दिन में कोई नहीं खाता। सभी रोज़ा रखते हैं। बालक ने आप को पहचाना नहीं, बिना जाने आपको यहूदी बता दिया।"

सुनते ही मलिक दिनार पछताने लगे। उन्होंने बालक की बोली में प्रभु की प्रेरणा देखी। वे बोले—"हे प्रभु! खजूर चखा भी नहीं

कि तू ने मुझे एक वालक के मुँह से यहूदी बताया, खजूर खा लेता तो मुझे नास्तिक कहलाना पड़ता। हे प्रभु, मैं सौगन्ध खाता हूँ कभी खजूर न खाऊँगा।"

एक दिन बसरा शहर में आग लगी। मलिक दिनार घर की छत पर घूमते हुए इधर-उधर देख रहे थे। नगर-वासी रोते कलपते दौड़-धूप मचा रहे थे। लोग अपना-अपना सामान बाहर घसीट रहे थे। उन्हें देखकर वे बोले—जिसका भार कम है वही इस समय निश्चिन्त है; जिसके पास ज़्यादा सामान है, वही चिन्तित है। उसी का नुक-सान भी होगा! अहो! परलोक प्रयाण के बारे में भी ठीक यही बात है।

जाफ़र ने एक बार मलिक दिनार के दर्शन मक्का में किये थे। "लब्बेक" अर्थात् 'तुम्हारी शरण में आया हूं' कहते ही मलिक मूर्च्छित हो गये। मूर्च्छा भंग होने पर जाफ़र के पूछने पर उन्होंने बताया कि वे इस डर से मूर्च्छित हो गए थे कि उनकी बात के जवाब में कहीं खुदा यह न कह दे कि तू मेरे पास न आ।

दिनार, जब 'मैं तेरी पूजा करता हूँ और तेरी अनुकूलता की विनती करता हूँ' कहते तो रो पड़ते। वे कहते—"यदि ये वचन ईश्वरीय ग्रंथ के न होते तो मैं ऐसा कभी न कहता। कारण, दरअसल मैं तो ख़ुद अपनी ही पूजा करता हूँ और इधर-उधर भटककर लोगों की अनुकूलता खोजता रहता हूँ। प्रभु की अनुकूलता का कौन कहे मैं तो उसकी निंदा करता हूँ।"

एक स्त्री ने एक दिन दिनार को 'कपटी' कहकर पुकारा। वे झट बोले—"बहुत ठीक! बीस वर्ष तक किसी ने मुझे अपने सच्चे नाम से नहीं पुकारा, आज तूने मेरे सच्चे नाम से पुकारा। बहुत ठीक, पहचाना बहन तूने!"

महर्षि दिनार तपस्वी हुसेन बसराई के समकालीन थे, इसलिए उन्हें हुए भी बारह सौ वर्ष बीत गए।

उपदेश-वचन

१—"मैं कौन हूँ?" "ईश्वर का दिया खानेवाला और शैतान का हुक्म बजानेवाला!"

२—इस मस्जिद में से सबसे अधिक पापी को बाहर निकलने के लिए कहा जाय तो मैं ही सबसे पहले निकलूँगा।

३—इस दुनिया में लोगों की दोस्ती बाहर से देखने में सुन्दर, पर भीतर से ज़हरीली होती है।

४—मायावी संसार से सदा सचेत रहना, यह बड़े-बड़े पण्डितों के मन को भी वश में कर लेता है।

५—जिन्हें ईश्वर की स्तुति और ईश्वर का स्मरण करने के बदले लोगों को शास्त्र के वचन सुनाना ही अच्छा लगता है, प्रायः उन सब का ज्ञान ऊपरी है, जीवन सारहीन है।

६—महामुक्त प्रभु तुम्हारी अखण्ड सेवा करता है, तुम भी उसकी अखण्ड सेवा करके मुक्त बनो।

७—ईश्वर ने कहा है कि मैं तुम्हें अपनी ओर अनुरागी होने को कहता हूँ, पर तुम अनुराग नहीं दिखाते। मैं संगीत करता, पर तुम नाचते नहीं।

८—ईश्वर ने कहा है—हे सत्यनिष्ठ जनो! संसार में गुणगान करके संपत्तिवान बनो। मेरा गुणगान इस लोक में संपत्ति-दायक और परलोक में भी लाभदायक है।

९—ईश्वर ने कहा है—जो ज्ञानी संसार पर प्रेम रखता है उसके हृदय में से मैं ईश्वर-स्तवन और उसके गुणगान में से मिठास हर लेता हूँ।

१८—जुन्नुन मिश्री

तपस्वी जुन्नुन मिश्र-वासी थे । उनके तप का प्रभाव और तेज असाधारण था। वे तत्त्वज्ञान के गूढ तत्त्वों को बतानेवाले और कठोर साधना करनेवाले थे । मिश्र के लोग उनके जीवन के मर्म.को नहीं समझते थे, और इसीलिए उन्हें अधर्मी मानते थे । उनके जीवन-काल में किसी ने उनके प्रति सहानुभूति नही दिखाई । वे अपने हृदय के भावों को साधारण मनुष्य के आगे प्रकट नहीं करते थे । इसोलिए लोग उन्हें उनके जीवन-काल में पहचान नहीं पाये । उनके जोवन में परिवर्त्तन इस प्रकार हुआ था —

एक बार उन्होंने सुना कि अमुक स्थान में एक तपस्वी रहते हैं । वे उनका दर्शन करने गए । उन्होंने जाकर देखा—तपस्वी पेड की डाल से औंधे लटक रहे थे और अपने आप कह रहे थे—"अरी अभागी काया, यदि तू धर्म-साधन में सहायक न होगी तो तुझे इसी तरह दुःख दूँगा; भूख और प्यास से तेरा नाश कर दूँगा !" तपस्वो के ये वचन सुनकर जुन्नुन रो पड़े । रोने की आवाज़ सुनकर तपस्वी ने उन्हें अपने पास बुलाकर कहा—"गुनाह की कमी न होने पर जिसे शर्म लेशमात्र भी नहीं, उस पर दया करने वाला कौन ?" जुन्नुन ने इस कथन का स्पष्ट मतलब जानना चाहा । तपस्वी ने बतलाया—'मेरा यह शरीर प्रभु की सेवा—पूजा में मददगार नहीं होता, उसे तो लोगों के साथ हिलमिलकर बातें बनाना और मौज़ करना सुहाता है । इसीलिए मैं आज उसे संयम का अभ्यास करा रहा हूँ ।"

जुन्नुन ने कहा—"क्या आपने किसी की हत्या अथवा दूसरा कोई भारी गुनाह किया है ?"

तपस्वी—'नहीं तो ।"

जुन्नुन—"तो आप महा वैराग्यवान महात्मा हैं ।"

तपस्वी—"अरे, नहीं। तुम्हें असली वैराग देखने हैं तो सामने के पर्वत-शिखर पर जा।"

जुन्नुन ने पहाड़ की चोटी पर जाकर देखा, एक झोंपड़ी के द्वार पर एक त्यागी बैठे हैं। उनका एक पैर झोंपड़ी के भीतर था और दूसरा कटा हुआ पैर झोंपड़ी के बाहर पड़ा था, जिस पर चींटियाँ लगी हुई थीं। जुन्नुन ने पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और सारी हकीक़त पूछी।

त्यागी ने बताया—"मैं एक दिन अपनी झोंपड़ी में बैठा था। सामने से एक युवती स्त्री निकली। उसे देखने के लिये मेरा मन चंचल हो उठा और खड़े होकर झोंपड़ी के बाहर एक पाँव रखते ही मैंने देववाणी सुनी—"अरे साधु! तुझे ज़रा भी शर्म नहीं? तीस वर्ष से तू भजन करता है और प्रभु-भक्त कहलाता है, तो भी शैतान के फन्दे में फँस ही गया!"

"ऐसी वाणी सुनकर मैं काँप उठा। झोंपड़ी के बाहर मैंने जो पाँव रक्खा था उसे मैंने काटकर बाहर फेंक दिया और उसी समय से यहाँ बैठा मैं देख रहा हूँ कि अब क्या होता है? भाई, तू मेरे जैसे पापी के पास क्यों आया? यदि तुझे प्रभु-परायण धार्मिक महात्मा के दर्शन करने हैं तो उस पर्वत पर जाकर देख।"

जुन्नुन उनके बताए हुए पर्वत पर न चढ़ सके। निराश वापस लौटकर उन्होंने उसी त्यागी से उस दूसरे महात्मा का हाल पूछा। त्यागी बोले—"उस पर्वत पर बहुत काल से एक साधु पुरुष तप कर रहे हैं। एक दिन किसी ने आकर उनसे कहा—'यदि आदमी व्यापार धंधा न करे तो जीविका कैसे चले? उद्यम पर ही तो जीविका का आधार है, केवल ईश्वर के अनुग्रह से क्या होना है?'

"यह सुनकर उन्होंने उसी वक़्त प्रतिज्ञा की—'यदि मनुष्य उद्योग न करे तो क्या ईश्वर उसका निर्वाह चलाने में असमर्थ होगा? मैं

आज प्रतिज्ञा करता हूँ कि मनुष्य के द्वारा उपार्जित किसी वस्तु का उपभोग नहीं करूँगा।"

"इस प्रतिज्ञा के मुताबिक़ कई दिन तक तो उन्होंने कुछ भी नहीं खाया। आख़िर उस करुणामय प्रभु ने मधु मक्खियों का एक दल भेजकर उनकी रक्षा की। उन मक्खियों के मधु ही से अब उनका पोषण होता है।"

यह सब हक़ीक़त देख-सुनकर ज़ुन्नुन का दिल पिघल गया और उन्हें विश्वास हो गया कि जो ईश्वर का भरोसा रखते हैं, ईश्वर अवश्य उनका निर्वाह करता है। वहाँ से लौटते समय मार्ग में एक अंधे पक्षी को वृक्ष पर से नीचे आते देखकर उन्होंने यह जानने का विचार किया कि इस अंधे और हतभागी पक्षी को ख़ुराक कहाँ से और कैसे मिलती है? उन्होंने देखा, पक्षी ने नीचे उतरकर ज़मीन में चोंच मारी। वहां अनाज के कुछ दाने और जल की बूँदें मिल गईं। खा-पीकर पक्षी वृक्ष पर वापस लौट गया। यह दृश्य देखकर वे विह्वल-से होगये और ईश्वर पर उनका विश्वास और भी दृढ़ होगया। वास्तव में उनके नव जीवन का अभ्युदय उसी घड़ी से हुआ।

ज़ुन्नुन अपने मित्रों के साथ एक रात को एक जगह बैठे थे। वहाँ पहले किसी धनवान का मकान था। उस जगह को खरोंचने से उन्हें बहुत-सा सोना मिल गया, उस सोने पर ईश्वर का नाम अंकित था। ज़ुन्नुन के मित्र उस सोने को बाँट लेने के लिए तैयार होगए, किन्तु ज़ुन्नुन ने उनसे असम्मत होकर कहा—'इस सोने पर तो मेरे सखा का नाम अंकित है, इसे तो मैं लूँगा।' उस सोने को माथे से लगाकर उन्होंने उसे प्रभु के निमित्त परमार्थ में लगा दिया। उसी रात को उन्होंने स्वप्न में सुना—'ज़ुन्नुन! धन की अभिलाषा सभी करते हैं, पर तूने उससे भी ऊँची अभिलाषा की है। तूने मेरे नाम के प्रति प्रीति

दिखाई है, मैं तुम पर ख़ुश हुआ हूँ, मैंने तेरे लिए तत्वज्ञान का द्वार खोल दिया है।'

जुन्नुन ने कहा—"एक दिन मैं नदी तट पर गया। ज्यों ही मैं वज़ू करने के लिए पानी में उतरा, मेरी दृष्टि एक मकान की छत पर पड़ी। वहाँ मैंने एक अतीव सुन्दरी युवती को खड़ी देखा। मैंने उससे पूछा—'हे सुन्दरी ! तू किसकी स्त्री है ?'

"युवती ने कहा—'जुन्नुन, मैंने तुम्हें दूर से देखकर उन्मत्त जाना, नदी तट पर आने पर ज्ञानी जाना, और भी नज़दीक आने पर तुम्हें जाना ईश्वरदर्शी साधु। पर मालूम होता है तुम न तो उन्मत्त हो, न ज्ञानी और न ईश्वरदर्शी साधु !'

"मैंने युवती से उसके कथन का स्पष्टी-करण पूछा तो उसने बतलाया—'यदि तू ईश्वर के प्रेम में पागल होता तो वज़ू नहीं करता, ज्ञानी होता तो दूसरे की स्त्री पर नज़र न डालता और जो ईश्वरदर्शी होता तो ईश्वर को छोड़कर तेरी नज़र दूसरी ओर नहीं दौड़ती।'

"इतना कहकर वह युवती ग़ायब होगई। मैंने उस युवती को देव-दूती के समान समझा। मेरे मन की आग भभक उठी। ज्ञानशून्य-सा होकर मैं वहीं पानी में गिर पड़ा। एक व्यापारी की नाव जारही थी। उसने मुझे बचा लिया। उस व्यापारी के कीमती मोती खो गए थे, उन्होंने मोतियों की चोरी का शक मुझ पर कर लिया। वे मुझे अनेक कष्ट देने लगे, तो भी मैं शांत बना रहा। वे मुझे पीटते तब मैं केवल यही कहता—'हे प्रभु ! तू ही सब जानता है।' बाद में वे मोती दूसरी जगह मिल गए, मुझे निर्दोष मानकर उन्होंने मेरे पाँव पड़कर क्षमा माँगी।"

तपस्वी जुन्नुन ने तप की कठोर साधना की थी। उनकी संगति से उनकी बहन भी तपस्विनी हो गई थीं। एक दिन एक पहाड़ पर घूमते समय जुन्नुन ने बहुत से रोग-पीड़ितों को एक जगह इकट्ठे देखा।

कारण पूछने पर उनमें से एक ने बताया कि यहाँ झोंपड़ी मे एक तपस्वी रहते है और बरस भर में एक बार वे बाहर आकर फूँक मारकर लोगों का रोग दूरकर देते हैं और फिर झोंपड़ी में लौट जाते हैं। उनके बाहर आने का दिन होने के कारण प्रतीक्षा में सब रोगी बैठे थे।

कुछ देर बाद वे तपस्वी बाहर आये। उनका शरीर हड्डियों का पींजरा-सा, शरीर का रंग एकदम पीला और आँखें गड्ढों में घुसी हुई थी; परन्तु उनके चेहेरे पर तेज़ बरस रहा था। उस परम तेजस्वी ने बाहर आकर स्नेह भरी स्थिर दृष्टि से कुछ देर तक देखकर दृष्टि आकाश की ओर उठाई। अंत में प्रत्येक रोगी पर एक-एक फूँक मारकर उन्होंने उसे रोग से मुक्त किया। उन्हें वापस झोंपड़ी में लौटते देखकर ज़ुन्नुन ने आगे बढकर उनके पाँव पकड़कर कहा—'महात्मन्! आपने बाह्य रोगियों को तो रोग-मुक्त कर दिया, पर मैं तो मानसिक दुःख भोग रहा हूँ। ईश्वर के नाम पर मैं माँगता हूँ, मुझे नीरोग करो।'

उस तपस्वी ने उत्तर दिया—'ज़ुन्नुन! मुझे छोड दे। महिमा और गौरव के उच्च सिंहासन पर आसीन मेरा और तेरा वह मित्र यह सब देख रहा है। तू उसे छोड़कर मेरी शरण लेरहा है, इससे तो हम दोनों दोष-भागी होंगे।' इतना कहकर तपस्वी अपनी कुटिया में लौट गये।

एक बार तपस्वी ज़ुन्नुन को रोते देखकर किसी ने उसका कारण पूछा तो वे बोले—"गत रात मैंने सपना देखा कि कोई कह रहा है—'अपने रचे हुए सब मनुष्यों के आगे मैंने एक संसार रखा है। उनमें से हज़ार में से नव-सौ उस संसार को ग्रहण करते हैं और एक सौ उसका त्याग। और उन सौ त्यागियों के आगे स्वर्ग की लालसा रखता हूँ तो उनमें से नव्वे त्यागी स्वर्ग के लोभ मे आजाते हैं और केवल दस स्वर्ग की उपेक्षा करते हैं। स्वर्ग की उपेक्षा करनेवाले उन दस को जब नरक का डर दिखाता हूँ तो उनमें नौ डरकर भाग जाते

हैं, केवल एक निर्भय बनकर स्थिर रहता है। तात्पर्य यह कि, हज़ार में से केवल एक ऐसा होता है जो संसार की माया में मुग्ध नहीं होता, स्वर्ग की लालसा नहीं करता और नरक से भी भयभीत नहीं होता।"

एक बालक ने वसीयत में एक लाख मुद्रा पाकर उन्हें ज़ुन्नुन को दे देने का इरादा ज़ाहिर किया, तो उन्होंने उसे यह कहकर रोक दिया कि इक्कीस वर्ष से कम आयु होने के कारण तुम्हें दान करने का अधिकार नहीं, अभी धीरज रख।

समय पाकर वह बालक बड़ा हुआ। तपस्वी ज़ुन्नुन का शिष्य बनकर अपनी सारी दौलत फ़क़ीरों को बाँटकर ख़ुद वह ग़रीब बन गया। कुछ समय बीतने पर उसने देखा, वे फ़क़ीर फिर खाली हो गये। अब वह चिंता करने लगा कि हाय, मेरे पास कुछ भी नहीं बचा। एक लाख मुद्रा और होती तो इन्हें फिर बाँट देता।

युवक की यह चिन्ता देखकर महर्षि ज़ुन्नुन ने समझा अभी इसे धर्म का सच्चा ज्ञान नहीं हुआ। अभी इसे सांसारिक दौलत ही की कीमत मालूम है। उसका वह मोह छुड़वाने के लिए उन्होंने उससे कहा—'तपस्वी अपने पास धन न होने से दुःखी नहीं होते, वे तो द्रव्य पाकर स्वेच्छाचारी होना चाहते ही नहीं। उनकी तो अभिलाषा होती है तप और धर्म रूपी धन पाना।'

एक दिन एक युवराज अपने नौकरों के साथ मसजिद के पास से जारहा था। ज़ुन्नुन के मुँह से यह सुनकर वह उनके पास आया—'ख़ुद कमज़ोर होकर जो अपने से बलवान् के साथ विरोध करता है, उसके समान मूर्ख कौन होगा?' युवराज ने इसका तात्पर्य पूछा तो उन्होंने बतलाया—'मनुष्य ख़ुद बहुत ही दुर्बल है, पर तो भी वह महा प्रबल परमात्मा का विरोधी बनता है।' यह सुनकर युवराज का चेहरा उतर गया और वह बिना कुछ बोले वहाँ से चल दिया। कुछ दिन

बीत जाने पर उसने आकर ज़ुन्नुन से पूछा—'महात्मन्! प्रभु के पास जाने का रास्ता कौन-सा है?'

ज़ुन्नुन बोले—'भाई! प्रभु के पास जाने के रास्ते दो हैं, एक साधारण, दूसरा असाधारण। यदि तू साधारण रास्ते से जाना चाहता है तो पाप, संसार और इंद्रियों की प्रवृत्ति का त्याग कर; और यदि असाधारण मार्ग से जाना चाहता है, तो अंतःकरण को पूरी तरह विषय-रहित बनाकर उसे ईश्वर में लीन कर दे, ईश्वर के सिवा सब बातें भूल जा।'

राजकुमार ने असाधारण मार्ग पकड़ा। अपने बहुमूल्य वस्त्राभूषण का त्याग करके उसने फ़क़ीरी बाना धारण किया। साधना में प्रवृत्त होकर वह आगे जाकर एक सच्चा तपस्वी बन गया।

महर्षि ज़ुन्नुन का जीवन बहुत उन्नत था, पर लोग उनके स्वरूप को नहीं पहचान पाये थे। सभी मिश्रवासी उन्हें काफ़िर—परधर्मी—समझते थे। उस समय मत-उक्कोल नाम का एक आदमी बग़दाद का ख़लीफ़ा था। मिश्रदेश भी उसके अधीन था। लोगों ने ज़ुन्नुन के विरुद्ध उसके कान भरे। उसने उन्हें पकड़ बुलवाया। ख़लीफ़ा के आगे जब वे बन्दी की हालत में खड़े थे, एक बुढ़िया ने आकर धीरे से उनके कान में कहा—'इस ख़लीफ़ा से ज़रा भी न डर। तू तो ईश्वर का दास है। बिना उसकी इच्छा के उसके दास का कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता।'

ख़लीफ़ा की आज्ञा से ज़ुन्नुन क़ैदखाने में भेज दिये गये। चालीस दिन तक वे क़ैद में रहे। तपस्वी बशर शाफ़र की बहन रोज़ क़ैदखाने में उनके लिए रोटी भेजती; पर चालीस दिन तक उन्होंने एक भी टुकड़ा नहीं खाया। बशर की बहन को जब यह हाल मालूम हुआ तो उसे बहुत दुःख हुआ और उसने उन्हें कहलाया—'मैं जो रोटी भेजती

हूँ वे निर्दोष और पवित्र अन्न को बनी हैं। आप उन्हें क्यों नहीं खाते ?'

जुन्नुन ने उत्तर भिजवाया—'मेरे पास पहुँचने तक ये रोटियाँ पाक नहीं रहीं, बीच ही में क़ैदखानेवाले छूकर उन्हें नापाक कर देते थे।' चालीस दिन के बाद वे क़ैद से बाहर निकाले गए। भूख-प्यास से अशक्त बने महर्षि जुन्नुन चलते-चलते गिर पड़े। उनके सिर में चोट लगी और ख़ून बहने लगा। ख़लीफा के सामने हाज़िर किए जाने पर उन्होंने अपने उपदेशों का मतलब विस्तार से उसे सुनाया। ख़लीफ़ा मत-उक्कोल और उसके दरबारी उनकी बातें सुनकर रो पड़े। जुन्नुन की असर करनेवाली बोली से सारे लोग मुग्ध होगए। ख़लीफ़ा ने जुन्नुन का शिष्य बनकर उन्हें बड़े आदर से मिश्र वापस भेज दिया।

जुन्नुन के एक शिष्य ने चालीस बार चेल्ला किए, अर्थात् निर्जन स्थान में बैठकर चालीस दिन तक विशेषरूप से भजन-साधन किया। उसने और भी कठिन साधनायें कीं। एक दिन उसने आकर जुन्नुन से कहा—'मैंने अनेक कठोर साधनायें कीं, तो भी परमात्मा मुझसे नहीं बोला, उसने मेरी ओर देखा तक नहीं। अपनी बड़ाई के लिए नहीं कहता, सचमुच मैंने बहुत कष्ट उठाकर, तन, मन, लगाकर उस प्रभु की सेवा की है; पर मेरा दुर्भाग्य है कि मैं अभी तक प्रभु का कृपा-पात्र नहीं बन पाया। मैं साधनाओं से उकता-सा गया हूँ। मुझे डर है, कहीं मेरा बाक़ी जीवन निराशा ही में न बीत जाय? मैंने बहुत समय तक प्रभु का द्वार खटखटाया, पर वह खुला ही नहीं, भीतर से एक शब्द भी नहीं सुनाई दिया। मैं बहुत ही दुःखी हूँ, कृपाकर मेरे दुःख को दूर करने का उपाय बतावें।'

महर्षि जुन्नुन ने कहा—'जाओ, आज रात को ख़ूब खाना खाओ। रात की नमाज़ मत पढ़ो, ख़ूब सोओ और जब तक ख़ुदा

खुश होकर दर्शन न दे, इसी प्रकार चलते रहो। आख़िर वह गुस्से में होकर तुम्हें सज़ा देने के लिए आवेगा ही। उसने आज तक तुम्हारी ओर करुणा भरी निगाह से नहीं देखा है तो अब वह ज़रूर गुस्से में होगा।'

यह सुनकर वह शिष्य चला गया। उसने खाया पिया तो खूब, पर साँझ को नमाज़ पढ़े बिना वह न रह सका। नमाज़ पढ़कर सो गया। नींद में उसने हज़रत मुहम्मद साहब को सपने में देखा। उन्होंने उससे कहा—'तेरे सखा ने तुझे सलाम कहलाया है और आज्ञा दी है कि जो मेरे मन्दिर में आकर सहज ही में उकता जाता है, वह कापुरुष है। साधना में तो दृढ़ संकल्प और अपार उत्साह की आवश्यकता है। चालीस वर्ष से तुम जो चीज़ चाहते हो, वही मैं अब तुम्हारी गोद में देना चाहता हूँ, तुम्हारी आशा पूरी करना चाहता हूँ। पर एक काम करना उस दुष्ट चोर जुन्नुन को मेरा सलाम कहकर कहना कि ऐ मिथ्यावादी दुश्मन! यदि सारे शहर में मैं तुझे बदनाम न करूँ तो मेरा तेरा प्रभु नहीं। जबतक मैं ऐसा न करूँगा तू मेरे प्रेम में मस्त और मेरे आश्रितों को उलटे रास्ते चलाना न छोड़ेगा।'

यह स्वप्न देखकर वह जाग उठा और रोने लगा। जुन्नुन के पास आकर उसने सारा हाल कह सुनाया। यह सुनकर कि ईश्वर ने उन्हें सलाम कहलाया है और साथ ही चोर और मिथ्यावादी कहा है, जुन्नुन की आंखों से आनन्द के आँसू बहने लगे। वे सोचने लगे—कोई भी उपदेशक अपने शिष्य को उपासना न करने को कहे तो क्या यह उचित है? पर उपदेशक तो एक हकीम है। रोगी के लाभ के लिए यदि ठीक मालूम दे तो हकीम विष का भी प्रयोग करता है। जुन्नुन ने अपने शिष्य पर ऐसा ही प्रयोग यह समझकर किया था कि उसका शुभ फल होगा और प्रभु प्रसन्न होगा। उन्हें विश्वास था कि यह धार्मिक व्यक्ति बिना नमाज़ पढ़े नहीं रह सकेगा। ईश्वर ने इब्राहिम को पुत्र

का बलिदान देने की आज्ञा दी थी, पर यही समझकर कि वह पुत्र-हत्या करेगा। यही बात यहाँ भी हुई।

एक दुबला-पतला मनुष्य मक्के की मसजिद की फेरी दे रहा था। उससे जाकर जुन्नुन ने पूछा,—'क्या तू प्रभुप्रेमी है?'

उसने उत्तर दिया—'जी हाँ।'

'तेरा सखा तेरे नज़दीक है या तुझसे दूर?'

'नज़दीक।'

'वह तेरे अनुकूल है या प्रतिकूल?'

'अनुकूल।'

'अचरज की बात है! तेरा सखा तेरे नज़दीक भी है और अनुकूल भी है, फिर भी तेरी यह हालत?'

'अरे भलेमानुस! क्या तू नहीं जानता कि दूर के प्रतिकूल सखा की अपेक्षा नज़दीक के अनुकूल सखा की सज़ा का भय हज़ार गुना ज़्यादा होता है?'

महर्षि जुन्नुन ने एकबार एक स्त्री से पूछा—'बहन! प्रेम की सीमा कहाँ तक है?'

वह बोली—'भाई! प्रेम-पात्र यदि असीम और अमाप हो तो फिर प्रेम की भी सीमा कैसी?'

महात्मा ज़ुन्नुन ने कहा है, 'देशाटन करते एकबार मैं बरफ से ढकी ज़मीन पर जा पहुँचा, वहाँ मैंने एक अग्निपूजक को देखा। वह ज़मीन पर अनाज के दाने बखेर रहा था। मैंने उससे पूछा—'भाई! ज़मीन तो बरफ़ से ढकी है, तू उस पर अनाज क्यों बखेर रहा है?' यहाँ तो कुछ उगने का नहीं!'

उस आदमी ने उत्तर दिया—'आज बरफ से सारी ज़मीन ढक गई है, बिचारे पक्षियों को खोजने पर भी कहीं खाने को नहीं मिलेगा।

उन्हीं के लिए मैं ये दाने बखेर रहा हूँ। यहाँ आने पर पक्षियों को सहज ही दाना मिल जायगा और प्रभु मुझ पर प्रसन्न होंगे।'

ज़ुन्नुन—'ईश्वर से विमुख व्यक्ति भी यदि बीज बोवे—दान-पुण्य करे तो क्या उसका फल होगा ? ईश्वर क्या उसे मंजूर करेगा ?'

वह आदमी—'मंजूर करेगा या नहीं, यह देखा जायगा। अभी तो मुझे अपना यही कर्त्तव्य दिखाई देता है।'

पीछे ज़ुन्नुन मक्का गए। वहाँ उसी अनाज बखेरनेवाले को उन्होंने एक परम भक्त की तरह काबा की प्रदक्षिणा करते देखा। ज़ुन्नुन को देखकर वह बोला—'क्यों भाई ! देखा ? प्रभु ने मेरी सेवा मंज़ूर की या नहीं ? मेरे बोए बीजों में फल आए या नहीं ? मुझ पर दया करके प्रभु ने मुझे यह पवित्र तीर्थ दिखाया या नहीं ?'

यह बात सुनकर ज़ुन्नुन बड़े आनन्दित हुए। वे बोल उठे—'हे प्रभु ! तेरी दया क्या बखानूँ ? चालीस वर्ष के इस अभक्त मनुष्य को तूने एक मुट्ठी अनाज के दानों से अपने पास बुलाकर उसके लिए मुक्ति का मार्ग खोल दिया। मैं तेरे गुण क्या गाऊँ ?'

इतने में उन्हें कोई अज्ञात वाणी सुनाई दी—'ज़ुन्नुन ! ईश्वर किसी को अपनी ओर खींचता है तो किसी मतलब ही से ! प्रभु के काम में तू क्यों बीच में आता है। तेरी बुद्धि की तो एक हद है, पर ईश्वर का ऐश्वर्य निःसीम है।'

महर्षि ज़ुन्नुन जब मृत्यु शैय्या पर थे, तब उनके आत्मीयजनों ने पूछा—'आपकी कोई अभिलाषा हो तो कहें।' वे बोले—'मेरी तो यही अभिलाषा है कि जिसके नज़दीक मेरी मौत हो रही है, अपने उसी सखा का मैं फिर भजन कर लूँ, उसे जान लूँ और देख लूँ।' इतना कहकर उन्होंने एक प्रेम और भक्ति-भाव भरी अरबी की कविता कह सुनाई। फिर एक दिन वे पीड़ा से बेहोश होगए। यूसफ़ हुसेन नाम के एक कुटुम्बी ने उनसे आख़िरी उपदेश माँगा तब वे बोले—'अब मेरे मन को

दूसरी बातों की ओर आकर्षित मत करो। इस समय मैं अपने प्रभु की करुणा में डूब रहा हूँ।' इतना कहते-कहते उस महात्मा ने इस शरीर का त्याग कर दिया।

जब उनका शव श्मशान ले जाया जारहा था, उस समय धूप तेज़ थी। कहते हैं, पक्षियों के झुण्ड के झुण्ड आकर ऊपर उड़ने लगे और उन्होंने अपनी पाँखें फैलाकर शव पर छाया कर दी। उनके जीवन-काल में जो मिश्रवासी उनसे ईर्षा करते थे, उन्हें देखकर जलते थे, वे ही उनके देहांत के बाद अपने किए पर पछताने लगे, ख़ुद अपनी निंदा करने लगे।

उपदेश-वचन

१—विपत्ति को सह लेने में अचरज नहीं, अचरज है वैसी हालत में भी शांत रहने में।

२—मनुष्य मात्र इन छः विपत्तियों में ग्रस्त है—(१) पारलौकिक कर्त्तव्य से विमुखता, (२) शैतान की ग़ुलामी, (३) मौत के नज़दीक आनेपर निराशा, (४) ईश्वर को संतुष्ट करने की अपेक्षा लोगों को संतुष्ट करने की विशेष चेष्टा, (५) सात्विक धर्म-कार्यों को छोड़कर राजसी तामसी वृत्तियों से प्रेम और (६) अपने दोषों को बचाने के लिये प्राचीन धार्मिक पुरुषों के कपोल-कल्पित दोषों का प्रकाश करना तथा उनके सद्गुणों से परे रहना।

३—तुम नाराज़ हो जाओ तो भी अपने से नाराज़ न होनेवाले से दोस्ती करना।

४—जो ईश्वर से डरकर चलता है वही धर्म के सच्चे मार्ग पर है; और जो निडर होकर चलता है वह धर्म का मार्ग भूला हुआ है।

५—ईश्वर से डरकर जो काम किया जाता है वह सुधरता है, और जो काम बिना उसके डर के किया जाता है वह बिगड़ता है।

६—जबतक लोक और लौकिक पदार्थों में आसक्ति रहेगी, तबतक ईश्वर में सच्ची आसक्ति न हो सकेगी।

७—जो सत्य-प्रेमी बनता है उसके हृदय में सत्य-स्वरूप परमात्मा ऐसे सत्य प्रकट करता है, जिनकी प्राप्ति दूसरों के लिये दुर्लभ होती है।

८—ईश्वर का कहना है—'जब मैं अपने दास पर प्रेम करता हूँ, तब मैं ख़ुद उसकी आँखें, कान और हाथ आदि बन जाता हूँ। मेरा दास मेरे द्वारा ही देखता है, सुनता है, बोलता है और मेरे द्वारा ही सारा लेन-देन करता है।

९—मन के रोगी होने के ये चार लक्षण हैं—(१) उपासना से आनन्दित न होना, (२) ईश्वर से डरकर न चलना, (३) ज्ञान प्राप्त करने के मतलब से किसी चीज़ को न देखना और (४) ज्ञान की बात को सुनकर भी उसके मर्म को न समझना।

१०—पाप के लिए प्रायश्चित्त करना तो साधारण है, पर आलस के लिए प्रायश्चित्त करना असाधारण है।

११—प्रायश्चित्त दो प्रकार के हैं—पाप करने के बाद प्रभु के दंड के डर से प्रायश्चित्त करना और ईश्वर से शर्माकर प्रायश्चित्त करना प्रत्येक इंद्रिय के लिए प्रायश्चित्त है। शास्त्र-विहित न हों, ऐसे संकल्पों का त्याग मन का प्रायश्चित्त है, वैसी बातों को न देखना आँखों का, असत्य बातें न सुनना कानों का, निषिद्ध वस्तुओं को न लेना हाथों का और निषिद्ध स्थान में न जाना पाँवों का प्रायश्चित्त है।

१२—ईश्वर का स्मरण मेरी ज़िन्दगी की ख़ूराक, उसकी प्रशंसा मेरी ज़िन्दगी का पेय और उसकी लज्जा मेरी ज़िंदगी के कपड़े हैं।

१३—जिसकी जीभ सत्य और हितकर वाणी बोलती है वही वास्तविक सत्य-वक्ता है।

१४—सत्य ईश्वर की तलवार है, उसका प्रहार बिना असर किये नहीं रहता।

१५—प्रभु-प्रेम मनुष्य से प्रभु-प्रेम की बातें करवाता है, लज्जा उसे मौन रखती है और प्रभु का भय उसे व्याकुल बनाता है।

१६—दानादि सत्कर्मों को करते समय होनेवाली अपनी प्रशंसा की ओर कान भी न दो। वह प्रशंसा तुम्हारी नहीं, उस ईश्वर की महिमा है।

१७—भावावेश अंतःकरण की गहरी गुप्त क्रिया है। संगीत ईश्वर-प्रेरित उद्दीपन व उत्तेजन है। भावावेश में हृदय संगीत से उत्तेजित होता है, ईश्वर को खोजने के लिए व्याकुल बनता है। जो मनुष्य ईश्वरभाव की वृद्धि के लिए संगीत सुनता है, उसे तो उसके फलस्वरूप लाभ ही होता है। परन्तु जो संगीत इंद्रियों की तृप्ति के लिए सुना जाता है उससे तो ईश्वर-विरोधी-भाव और विषय-प्रेम ही की वृद्धि होती है।

१८—पहले प्रभु के दास बनो, और जबतक वैसे न बन पाओ, 'मैं ही प्रभु हूँ' ऐसा मत कहो, नहीं तो घोर नरक की यातना भोगनी होगी।

१९—जो मनुष्य सांसारिक विषयों तथा विषयी लोगों के संसर्ग से दूर रहता है और साधु-जनों ही का संग करता है, वही सच्चा प्रभु-प्रेमी है; कारण, ईश्वर-परायण साधु-जनों से प्रीति करना और ईश्वर से प्रीति करना एक समान है।

२०—ईश्वर के अनुयायी जब प्रभु प्रेम में मग्न होकर ओजस्वी वचन बोलते हैं तो वे सत्य-लोक ही का वर्णन करते हैं और जब वे अधर्म का निषेध करते हुये बोलते हैं उस समय उनके उन तप्त व तेजस्वी शब्दों में साक्षात् नरक का वर्णन दिखाई देता है।

२१—ईश्वर की कठोर से कठोर आज्ञा का पालन करने में भी प्रसन्न होना सीखो। ईश्वर का आदेश सुनने, समझने की इच्छा हो तो पहले अभिमान छोड़कर, आदेश को सुनकर, उसके पालन में जुट जाओ। भयानक विपत्ति में भी हरएक साँस के साथ प्रभु की प्रीति बनाये रहो।

२२—सहनशीलता और सत्यपरायणता के संयोग के बिना प्रभु-प्रेम पूर्णता को प्राप्त नहीं होता।

२३—सच्चे प्रभु-प्रेमी के दो लक्षण हैं, स्तुति निंदा में समभाव रहना और धर्म-पालन और अनुष्ठान में कोई लौकिक कामना न रखना।

२४—बाहरी आँखों का नाता बाहरी चीज़ों से है और भीतरी आँखों का नाता है परमात्मा की श्रद्धा से।

२५—विश्वास के तीन लक्षण हैं—सब चीज़ों में ईश्वर को देखना, सारे काम ईश्वर की ओर नज़र रखकर ही करना और हरएक हालत में हाथ पसारना तो उस सर्वशक्तिमान के आगे ही।

२६—संत-समागम और हरि-कथा प्रभु-श्रद्धा उत्पन्न करते हैं; प्रभु के विश्वास से तीव्र जिज्ञासा, जिज्ञासा से विवेक वैराग्य, वैराग्यादि से तत्त्वज्ञान, तत्त्वज्ञान से परमात्म-दर्शन और परमात्म-दर्शन से सर्वोपरि स्थान प्राप्त होता है।

२७—संसारासक्त लोगों से दूर रहो, दान देनेवाले की प्रशंसा या ख़ुशामद मत करो और दुःख देनेवाले का भी तिरस्कार न करो।

२८—जो मनुष्य दुःख में प्रभु का चिंतन करता है, वह महान् है।

२९—जो मनुष्य इस जगत की थोड़ी-सी चीज़ों ही से संतोष कर लेता है, वही सच्ची शांति पाता है।

२०—ईश्वर से डरनेवाले का मन ईश्वर को नहीं छोड़ता, उसके मन में प्रभु-प्रेम दृढ़ होता है और उसकी बुद्धि पूर्णता को प्राप्त होती है।

२१—बड़प्पन को खोजनेवाला तो हलकाई ही को पाता है।

२२—इस संसार में एक ईश्वर का भय दूसरे सब भयों से मुक्त करता है।

२३—जिसका वाह्य जीवन उसके आंतरिक जीवन के समान नहीं है, उसका संसर्ग मत करो।

२४—जो मनुष्य गंभीरता-पूर्वक प्रभु-स्मरण करता है वह दूसरे सब पदार्थों को भूल जाता है, उसे तो सभी पदार्थों में एक वही प्रभु दिखाई देने लग जाता है।

२५—मनुष्य कब ईश्वरार्पण हो सकता है ? जब कि वह अपने आपको—अपने हरएक काम को बिल्कुल भूल जाय, सर्व-भाव से उसका आसरा ले-ले और उसके सिवा किसी दूसरे की न आशा रखे, न उससे सम्बन्ध रखे।

२६—भय का मार्ग कब सुगम हो ? जब कि मनुष्य अपने आपको रोगी जानकर, रोग बढ़ने के डर से, सारी दुनयावी चीज़ों से मुँह मोड़ ले।

२७—निर्भय होने का क्या लक्षण है ? संसार-प्रेमी लोगों से निस्पृह—इच्छा-रहित होना और मन को साधन, भजन में लगाकर बड़प्पन के मोह से दूर होना।

२८—सच्चा एकांत कब हो ? जब कि ओछे और निंद्य जीवन से परे हो जाओ।

३९—संसार, अर्थात् ? जो ईश्वर से तुम्हें परे रखे।

४०—अधम कौन ? जो ईश्वर के मार्ग का अनुसरण नहीं करता।

४१—किसका संग किया जाय ? जिसमें 'तू-मैं' का भाव नहीं।

४२—निंद्य जीवन से बैर बाँधकर ईश्वर के मित्र बनो। ईश्वर से वैर बाँधकर निंद्य जीवन की दोस्ती न करना।

४३—एक छोटे से जीवन को भी अपने से नीचा मत समझो। बाहरी दुनिया की ओर देखो भी तो ऊपर ही ऊपर से, भीतरी आँखों को तो उस प्रभु की ओर लगाये रहो।

४४—जिस समय तुम ईश्वर के सच्चे प्यारे बन जाओगे, ईश्वर तुम्हें उसी समय संपूर्ण संतोष देगा; इसलिये उसका विश्वास छोड़कर संशय में न पड़ना।

४५—विपत्ति में भी सहनशील और प्रभुभक्त बने रहना।

४६—आगे पीछे का विचार छोड़ो। जो हो गया है और जो होगा उसकी चिंता न करो, वर्त्तमान में प्रभु के भजन में लगे रहो।

४७—इस संसार में सुखी कौन ? दूसरे सब पदार्थों से जिसने ईश्वर को पहचान लिया है वह।

४८—यदि तुमने ईश्वर को पहचान लिया है तो तुम्हारे लिये एक वही दोस्त काफ़ी है। यदि तुमने उसको नहीं पहचाना है तो उसे पहचाननेवालों से दोस्ती करो।

४९—ऊपर चढ़ने की सीढ़ियाँ ये हैं:—

(१) सांसारिक पदार्थों के पीछे दौड़ना छोड़ना।

(२) सांसारिक विषयों से विरक्त होना।

(३) परमात्मयोग के मार्ग को पकड़ना।

(४) निर्मलता और प्रभुप्रेम प्राप्त करना।

१६—जुन्नेद बग़दादी

तपस्वी जुन्नेद बग़दाद के रहनेवाले थे। वे गुरुओं के भी गुरु, विद्या-विशारद तथा समर्थ तत्त्ववेत्ता थे। साधुता, सत्यभाषण और साधनादि में सभी इन्हें अग्रगण्य समझते थे। आरंभ से अंत तक उनका जीवन प्रशंसनीय, पवित्र और सब के लिए अनुकरणीय रहा। उनके वचनों और धर्म-विधि के प्रमाणों की सब मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते। उनका कोई विरोधी न था। तत्त्व-ज्ञान-संबंधी अनेक ग्रंथों की रचना उन्होंने की थी। तपस्वी 'सर्री शक्ति' के ये भानजे व शिष्य थे।

बचपन ही से जुन्नेद ज्ञानेच्छु, मननशील और कुशाग्रबुद्धि थे। वे प्रतिभावान् थे। एक दिन पाठशाला से घर लौटकर उन्होंने देखा, पिता रोरहे थे। उन्होंने पिता से इसका कारण पूछा तो उत्तर मिला—'तेरे कल्याण के लिए मैंने कुछ चीज़ें तेरे मामा के पास भेजी थीं, पर उन्होंने उन चीज़ों को लौटा दिया है, जिससे मुझे बहुत ही दुःख हुआ है।'

पिता का उत्तर सुनकर जुन्नेद ख़ुद वे चीज़ें लेकर मामा के पास गए। मामा का दरवाज़ा खटखटाकर वे बोले—'मामा! द्वार खोलो, मैं भेंट देने आया हूँ।'

मामा बोले—'जुन्नेद! तेरी भेंट मंजूर न होगी।'

जुन्नेद—'मामा! जिसने आप पर कृपा की है और मेरे पिता के प्रति न्याययुक्त व्यवहार रखा है, उस प्रभु के नाम पर आपको मेरी भेंट लेनी होगी।'

सर्रीशक्ति ने पूछा—'प्रभु की उस कृपा और व्यवहार को तूने कैसे जाना जुन्नेद?'

जुन्नेद—'उस प्रभु ने आपको साधुता दी है और मेरे पिता को धन-दौलत। आप मेरी भेंट लें या न लें आपकी ख़ुशी की बात है,

पर योग्यपात्र को भेंट देना मेरे पिता का कर्त्तव्य था और उन्होंने वैसा ही किया है।

यह सुनकर सरीशक्ति संतुष्ट होगए और बोले—'वत्स! भेंट मंजूर करने के पहले मैं तुझे ही ले लेता हूँ।' द्वार खोलकर उन्होंने जुन्नेद को छाती से लगाकर भेंट स्वीकार की।

सात वर्ष के जुन्नेद को साथ लेकर सरीशक्ति मक्का गए। पवित्र काबा के दर्शन करके चार सौ धर्माचार्यों की सभा में धर्म-चर्चा सुनने के लिए गए। वहाँ 'कृतज्ञता' पर चर्चा होरही थी। सभी अपनी-अपनी समझ के अनुसार उस विषय पर बोले। सरीशक्ति ने जुन्नेद से कहा—'बेटा जुन्नेद! इस विषय पर तू भी कुछ बोल।'

थोड़ी देर तक सिर झुकाये रहने के बाद जुन्नेद बोले—'प्रभु ने जो धन-दौलत दी है, उसे पाप-कार्य में लगाकर अपराधी बनने से बचना ही सच्ची कृतज्ञता दिखाना है।'

जुन्नेद की बात सुनकर सभी धर्माचार्यों ने स्वीकार किया कि उनका कथन बहुत ही ठीक है। इससे सुन्दर बात किसी ने नहीं कही। सभी ने उन्हें आशीर्वाद दिया।

सरीशक्ति ने पूछा—'जुन्नेद! ऐसे सुन्दर वचन कहना तूने कहाँ सीखा?'

'आपकी सत्सगति के प्रभाव से।' जुन्नेद ने कहा।

मक्का से बग़दाद लौटकर जुन्नेद काँच का व्यापार करने लगे। वे रोज़ दूकान जाते पर वहाँ भी परदे के पीछे बैठकर उपासना करने ही में अधिक समय बिताते। आख़िर, उन्होंने यह व्यापार छोड़ दिया। सरीशक्ति के घर के कोने की एक कोठरी में बैठकर मनोनिग्रह करने और ध्यानमग्न होने में वे समय बिताने लगे। वे इतने ध्यानस्थ रहने लगे कि ईश्वर के सिवा दूसरी कोई चीज़ उनके मन में जगह नहीं पाती थी। इस प्रकार उन्होंने चालीस वर्ष बिता

दिए। वे रात भर ईश्वर का नाम जपते रहते। इतने वर्षों के प्रयास के बाद उन्हें अपना लक्ष्य सिद्ध होता दिखाई दिया। मन में ऐसा भाव आते ही उन्हें मालूम दिया कि उनसे कोई अपराध बन पड़ा है। उन्होंने अपना दिल टटोलकर देखा, उसमें से 'अहं' भाव का नाश नहीं हुआ था। वे फिर अपनी उसी कोठरी में बैठकर जप में लग गए। कभी-कभी लोगों को उपदेश भी देते रहते थे। उनके उपदेश से लोगों का अनिष्ट होता है, ऐसा कहकर कुछ लोगों ने उनकी शिकायत ख़लीफा से की। ख़लीफा ने उन्हें यह कहकर टाल दिया कि वे बिना कारण जुन्नेद को सज़ा नहीं दे सकते।

ख़लीफा का चरित्र अच्छा नहीं था। एक रूपवती दासी को उसने रखेल बना रक्खा था। उस दासी को गहने कपड़े से सजाकर खलीफा ने सिखाया—'तू बुरका डालकर जुन्नेद के पास जा और उनसे आसरा देने के लिए विनती कर। यह भी कहना मेरे पास धन-दौलत की कमी नहीं है, पर दुनिया से मुझे वैराग होगया है और मैं अब आपकी सेवा में रहकर समय बिताना चाहती हूँ।' तरह तरह की मीठी बातें बनाकर जुन्नेद को फाँसने की तरकीब करना।"

ख़लीफा ने दासी के साथ एक नौकर भी भेज दिया था। जुन्नेद के पास आकर उस सुन्दरी युवती दासी ने अपना बुरका उठा दिया। सामने एक स्त्री को देखकर जुन्नेद ने नज़र नीची करली। वह दासी रो-धोकर तरह-तरह की बातें बनाती रही पर वे चुपचाप नीची नज़र किये सब कुछ सुनते रहे। उसके चुप होजाने पर उन्होंने गर्दन उठाकर सिर्फ़ इतना कहा—'हाय, अफ़सोस! ईश्वर की लीला। वह स्त्री अचानक वहीं लोट गई और उसके प्राण-पखेरू उड़ गए। ख़लीफा के नौकर ने लौटकर ख़लीफा को सारी हक़ीकत कह सुनाई। यह सुनकर ख़लीफ़ा मन ही मन पछताने लगा, वह समझ गया कि साधु पुरुष के साथ अनुचित व्यवहार करनेवाले को दण्ड मिले बिना नहीं रहता। ख़लीफ़ा

ने जुन्नेद के पास आकर पूछा—'इस खूबसूरत बुत का इस तरह नाश करने की गवाही आपके दिलने कैसे दी ?'

जुन्नेद ने उत्तर दिया—'सारे समाज के मालिक ! आपने भी तो एक त्यागी की चालीस वर्ष की उपासना पर पानी फेरने का इरादा किया था ? इस घटना में मेरा तो कोई दोष नहीं, उसका करनेवाला तो वह ईश्वर ही है। मेरे बारे में भला-बुरा सोचने का आपको कोई कारण नहीं होना चाहिए।'

जुन्नेद हमेशा रोज़ा रखते; किन्तु यदि कोई धर्म-बंधु बीच में आ जाता तो वे उस नियम को तोड भी देते और कहते—रोज़ा रखने में जितना फ़ायदा है, उससे कम फ़ायदा धर्म-बंधु की संगति मे नहीं।

जुन्नेद ने फ़क़ीरी बाना नहीं पहना था। वे एक गृहस्थी पंडित के से कपड़े पहनते। किसी ने इसका कारण पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया—'फ़क़ीरी बाने ही से यदि मतलब सिद्ध होता तो मैं ज़रूर वैसे कपड़े पहन लेता।'

जुन्नेद का नाम चारोंओर फैल गया। लोग उनके उपदेशों की क़ीमत करने लगे। यह देखकर उनके गुरु सरी शक्ति ने उनसे सार्वजनिक उपदेश देने के लिए आग्रह किया। इस पर वे बोले—'गुरु की मौजूदगी में शिष्य उपदेश दे, यह उचित नहीं।'

उसके कुछ दिन बाद जुन्नेद को सपने में हज़रत पैग़म्बर मुहम्मद साहब ने सार्वजनिक उपदेश देने की आज्ञा दी। सपने का हाल उन्होंने गुरुजी को कह सुनाया। अब तो उन्हे गुरुजी के आग्रह को मानना पड़ा; पर उन्होंने इरादा किया कि सभा में चालीस से अधिक श्रोता न हों। चालीस आदमियों को जब उन्होंने उपदेश सुनाया तो कहते है, बाईस के प्राण तो वहीं छूट गये और बाकी अठारह मूर्च्छित हो गए। इस घटना के बाद उन्होंने उपदेश देना बन्द कर दिया।

फिर भी लोग बार-बार आग्रह करते तो वे कहते—'मेरे व्याख्यान से आपको कोई लाभ नहीं होगा, मैं किसी का वध नहीं करना चाहता।'

दो वर्ष यों ही बीत गए। एक दिन बिना किसी के आग्रह किये उन्होंने व्याख्यान दिया। लोगों ने इसका कारण पूछा तो वे बोले—'हज़रत पैग़म्बर मुहम्मद साहब ने एक जगह कहा है कि सम्प्रदाय में जो सबसे ओछा है वही उपदेशक का काम करेगा। मैं आप सबसे ओछा हूँ, इसी से यह काम करता हूँ।'

जुन्नेद एक दिन विचार-शून्य होकर बोले—'हे प्रभु! मेरा मन मुझे लौटा दो।' इसके उत्तर में उन्हें सुनाई दिया—'जुन्नेद! मैंने तेरा मन इसलिए चुरा लिया है कि तू मेरे साथ रह सके। क्या तू उस मन को वापस लेना चाहता है? मुझे छोड़कर क्या तू दूसरी चीज़ों से अनुराग करना चाहता है?'

जुन्नेद ने एक बार वन में से जाते समय एक कँटीले पेड़ के नीचे एक युवक को देखकर उससे पूछा—'भाई, तुम यहाँ क्यों बैठे हो!'

वह बोला—'मेरे पास एक सुन्दर भावना थी, वह यहाँ खो गई है, उसे खोज रहा हूँ।'

जुन्नेद मक्का जाकर लौट आये, पर वह युवक तो वहीं उसी हालत में बैठा था। उन्होंने फिर उसका कारण पूछा। अबकी बार युवक ने उत्तर दिया—'मैं जो चीज़ खोज रहा था, वह मुझे यहाँ मिल गई है, इसलिए इसी जगह का आसरा लेकर बैठ गया हूँ। अब मैं विचार कर रहा हूँ कि खोजने और पाने की दो हालतों में से कौन-सी अधिक अच्छी है?'

जुन्नेद के पैर में एक बार पीड़ा होने लगी। क़ुरान का 'फातेह' नाम का अध्याय पढ़कर दर्द की जगह फूँक मारी। उसी क्षण ऐसी

वाणी सुनी कि मेरे आध्यात्मिक वचनों का उपयोग शरीर के लिए करते तुझे शर्म नहीं आई ?'

जुन्नेद की एक बार आँख दुखने लगी। हकीम ने हिदायत की, आँखों से जल न छुआना। वज़ू करते समय भी आँखे धोने की उसने इजाज़त न दी। हकीम के चले जाने पर जुन्नेद का मन नहीं माना। उन्होंने वज़ू करके नमाज़ पढ़ी और सो रहे। सोकर उठे तो देखा आँखें ठीक हो गई थीं। इसका रहस्य उन्हें इस देववाणी से मालूम हुआ—'जुन्नेद ! अपने संतोष के लिए मैंने तेरी आँखों में यह माया कर दी थी। अपने ऐसे प्रेम के बदले में यदि तू सारे नरक-वासियों का छुटकारा भी मुझसे माँगे तो मैं देने को तैयार हूँ।'

दूसरे दिन हकीम यह सब हाल सुनकर बहुत चकित हुआ। उसने कहा—'आँख का रोग आप को नहीं, मुझे हुआ था।'

एक बार किसी ने जुन्नेद से बार-बार कहा—'आजकल तो धार्मिक मनुष्य मिलने ही मुश्किल हैं।' इस पर वे बोले—'यदि तुम्हें तुम्हारी सेवा करनेवाले धर्मपरायण मनुष्यों से मिलना है तो वैसे मनुष्य तो मिलने ज़रूर मुश्किल हैं, किन्तु यदि तुम ख़ुद धर्म-परायण मनुष्यों की सेवा करना चाहते हो तो वैसे बहुत से मिलेंगे।'

एक सभा में उनकी बहुत प्रशंसा की गई तो उन्होंने कहा—'आप लोग जिसके बारे में कह रहे हैं, उसमें मेरा लेश-मात्र भी अधिकार नहीं है। आप लोगों की यह प्रशंसा मेरी नहीं, उस ईश्वर की है।'

किसी ने पूछा—'हृदय कब सुखी होता है ?'

उन्होंने उत्तर दिया—'जब हृदय में प्रभु वास करते हैं।'

एक बार एक आदमी उनके पास पाँच सौ मुद्राओं की भेंट ले आया। उससे प्रश्न करके जुन्नेद ने मालूम किया कि उसके पास और भी दौलत है, तथा वह अभी और भी अधिक दौलत की अभिलाषा

रखता है। इस पर वे बोले—'अपनी यह रक़म वापस ले जाओ। यही इष्ट है कि यह रकम तुम्हारे पास रहे। मैं तो अपने पास कुछ भी नहीं रखता। मेरी कोई अभिलाषा भी नहीं।'

जुन्नेद एक दिन ज़ोर-ज़ोर से रो रहे थे। किसी ने उनसे इसका कारण पूछा, तो वे बोले—'मैने सुन रखा है कि विपत्ति अजगर के समान है। यदि यह सच है तो सबसे पहले उसके पेट में जाने को मैं तैयार हूँ। मैं तो बहुत रोज़ से विपत्ति की बाट जोह रहा हूं। पर मेरा सखा कहता है कि उसके प्रति मेरी ऐसी साधना नहीं हुई कि मैं विपत्ति की आशा कर सकूँ; इसीलिए मैं रोरहा हूँ।'

एक मनुष्य मसजिद में आकर भीख माँग रहा था। उसे देखकर जुनेद ने कहा—'अरे निरोगी मज़बूत आदमी ! तू मेहनत करने लायक़ है फिर भी भीख माँग रहा है ?' उसी रात को उन्होंने सपना देखा कि कपड़े से ढका हुआ एक बर्त्तन पड़ा है और उसमें से आवाज़ आरही है—'ले खा, ले खा'। कपड़ा हटाते ही उसमें पड़ा उस भिखारी का शव दिखाई दिया। वे बोल उठे—'मैं मनुष्य का मांस खाऊँ ?'

बर्त्तन में से फिर आवाज़ आई—'मनुष्य का मांस तो तू आज सवेरे मसजिद में ही खा चुका था।'

जुन्नेद समझ गए, इस सपने का मतलब सवेरे की उस घटना ही से है। उन्होंने भिखारी का अपमान किया था। अपनी भूल के लिए उन्हें पछतावा हुआ। दो बार उपासना करने के बाद वे उस भिखारी की खोज में निकले। खोजते-खोजते वह नदी के किनारे बैठा दिखाई दिया, वह कोमल-कोमल घास की पत्तियाँ तोड़कर नदी में धो-धोकर खा रहा था। जुन्नेद को पास आते देखकर वह बोला—'जुन्नेद ! तुमने मुझे जो पीड़ा पहुँचाई थी उसका प्रायश्चित्त किया ?'

जुन्नेद—'हाँ, कर लिया।'

भिखारी—'तो ठीक। लौट जा, दास का प्रायश्चित्त वह प्रभु स्वीकार करता ही है। पर सावधान रहना, फिर कभी प्रायश्चित्त न करना पड़े!'

जुन्नेद ने कहा है कि ईश्वर पर कैसा प्रेम रखना यह उन्होंने एक हज्जाम से सीखा था। मक्का में एक दिन एक हज्जाम को एक आदमी की हजामत करते देखकर वे बोले—'ख़ुदा की ख़ातिर तू मेरी हजामत कर देगा?'

हज्जाम बोला—'ख़ुदा के नाम पर तो बहुत ही ख़ुशी से।' ख़ुदा का नाम लेते ही उसकी आँखें प्रेम से भर आईं और वह उस आदमी का काम छोड़कर बोला—'आप ज़रा ठहरें, इस भाई ने ख़ुदा का काम बताया है, सब से पहले उसी का काम करूँगा।' बड़े आदर-भाव से मेरा मस्तक चूमकर उसने मेरी हजामत बनाई। यही नहीं, उसने उन्हें कुछ सिक्के एक काग़ज़ में लपेट कर दिए और कहा—'इन्हें मंज़ूर करो, ज़रूरत पड़ने पर इन्हें काम में लाना।' उसे लेकर उन्होंने निश्चय किया कि अब उन्हें जो सब से पहले दान मिलेगा उसे वे उस हज्जाम को उसकी मेहनत के बदले में दे देंगे। दो-तीन दिन बाद ही एक बसरा-वासी ने एक थैली उनको भेंट भेजी। उसे लेकर वे उस हज्जाम के पास गए। उनके इरादे को सुनकर वह बोला—'आपको ईश्वर की शर्म भी नहीं आती? आपने ईश्वर के नाम पर मुझसे हजामत बनवाई और अब आप उसका बदला चुकाने आये हैं? ईश्वर के नाम पर काम करके उसकी मज़दूरी लेनेवाला आपने कभी देखा है? आपकी बात सुनकर मैं तो चकित-सा हो रहा हूँ।'

महर्षि जुन्नेद एक दिन बग़दाद शहर में से जा रहे थे। वहाँ पेड़ में लटकते हुए एक चोर के शव को देखकर उन्होंने उसका पैर चूमकर कहा—'वाह! तुझे धन्य है!'

किसी ने इसका कारण पूछा तो उन्होंने कहा—'मैं इसे इसलिए धन्यवाद दे रहा हूँ कि इसने अपने काम के लिए प्राण भी दे दिए। जिस काम को इसने हाथ में लिया उसी में इसने अपना प्राण होम दिया। प्राण-पण से किसी काम को करना क्या वंदनीय नहीं है?'

एक आदमी ने उनसे कहा—'मैं भूख-प्यास से तड़प रहा हूँ।'

'बहुत ठीक, निश्चिन्त रह! ईश्वर की जिस पर मेहरबानी होती है उसी को खाने-पीने की तंगी होती है। तुझ पर भी ईश्वर की वैसी ही कृपा हुई है, उसकी निन्दा न करना भाई!'

एक बार वे अपने शिष्यों के साथ बैठे थे। वहाँ एक धनवान आदमी आया और उनके शिष्यों में से एक को अपने साथ उठाकर ले गया। थोड़ी देर बाद वह शिष्य अपने सिर पर खाने-पीने के सामान का एक बड़ा-सा बोझा उठाये वापस आया। वह धनवान उसके साथ था। अपनी मण्डली के लिये खाने-पीने की उन चीज़ों को आई देखकर जुनैद को बड़ी लज्जा मालूम हो। उन्होंने अपने शिष्य से कहा—'जा, यह सामान इसी विषयी धनवान को लौटा दे। तू ऐसा बोझा ढोने का काम करेगा तो फिर साधु-जीवन क्या पालेगा?' बाद में वे उस धनवान को संबोधन करके बोले—'फक़ीरों के पास धन-दौलत नहीं होती, पर उनके पास होता है उनका लक्ष्य; उनके पास संसार नहीं, पर परलोक होता है।'

दूसरा एक धनवान केवल उन्हीं फ़क़ीरों को दान देता जो पवित्र होते। वह कहा करता—'फक़ीरों का एक लक्ष्य होता है वह ईश्वर। आपदा आने पर भी उनका मन ईश्वर से नहीं हटता। जिनका मन दुनिया की चीज़ों मे फँसा है, वैसे हज़ारों को दान देने की अपेक्षा एक ऋषि को दान देना उत्तम है, कारण, उससे उनका मन ईश्वर ही में लगा रहने में समर्थ बनता है।' जुनैद ने मंजूर किया कि उसका कहना बहुत ठीक है।

कई दिन बाद वही दाता धनवान दान देते-देते ख़ुद ग़रीब बन गया। जुनैद ने कुछ रक़म उसके पास भेजकर बतलाया—'इस रक़म से फिर रोजगार शुरू करो। तुम्हारे सरीखा मनुष्य व्यापार करके धन प्राप्त करे, यह अनुचित नहीं है।'

जुन्नेद के एक शिष्य के पास बहुत धन-दौलत थी। तमाम दौलत उनके चरणों में भेंट करके उसने पूछा कि अब एक मकान बाक़ी रहा है, उसका क्या करे? जुन्नेद ने वह मकान बेचकर उसकी क़ीमत भी ले आने की आज्ञा दी। शिष्य ने आज्ञा का पालन किया। सारी रक़म इकट्ठी हो जाने पर उन्होंने उसे शिष्य के हाथ से नदी में फेंकवाकर उसके जीवन का सन्मार्ग खोल दिया।

अपने बहुत से शिष्यों में से जुन्नेद को एक शिष्य सब से अधिक प्रिय था। इससे कोई-कोई असंतुष्ट रहते, इसलिए उन्होंने एक दिन कहा—'वह अधिक ज्ञानी और नीति-परायण है। उसके गुणों के कारण ही मैं उसे ज़्यादा चाहता हूँ। देखो, मैं अभी परीक्षा करता हूँ; तुम सब को विश्वास हो जायगा।' प्रत्येक शिष्य के हाथ में एक-एक छुरी और एक-एक पक्षी देकर उन्होंने कहा—'जाओ, किसी एकांत स्थान में जहाँ कोई न देखता हो, इनकी बलि दे आओ।' सभी अलग-अलग जगह जाकर पक्षियों की बलि दे आए; किन्तु वह शिष्य जीता पक्षी ही लेकर लौट आया।

जुन्नेद ने पूछा—'क्यों, तुमने इसकी बलि नहीं दी?'

शिष्य—'गुरुदेव! मुझे कोई एकान्त जगह मिली ही नहीं। मैं जहाँ-जहाँ गया, ईश्वर तो वहाँ मौजूद ही था।'

जुन्नेद—'देखो, इसके ज्ञान से अपने ज्ञान की तुलना करो।'

एक युवक के मन में, तपस्वी जुन्नेद की संगति से, वैराग्य उत्पन्न हुआ। अपनी दौलत ग़रीबों को बाँटकर उसने एक हज़ार मुद्रा जुन्नेद की भेंट करना चाहा। पर लोगों के यह बतलाने पर कि जुन्नेद ऐसी

भेट मंजूर नहीं करेंगे, उसने एक, दो, तीन, चार इस प्रकार हज़ार तक गिनकर सब मुद्रायें नदी के पानी में फेंक दो। खाली हाथ जुन्नेद के पास जाकर उसने यह हाल कह सुनाया। सुनकर जुन्नेद बोले—'जिस जगह पर तुझे एक क़दम उठाकर पहुँच जाना चाहिए था, वहाँ पहुँचने के लिये तुझे एक हज़ार क़दम उठाने पड़े, इससे मालूम देता है अभी तेरा दौलत का मोह नहीं छूटा है। धर्मकार्य में यदि तू इस प्रकार गिन-गिनकर आगे बढ़ेगा तो उस स्थान तक पहुँच ही नहीं पावेगा। जा बाज़ार में किसी सर्राफ की दूकान पर बैठकर अभी तो धन-दौलत गिनने की अपनी मन्शा पूरी कर!'

एक साधक के मन में अहंकार समा गया और वह समझने लगा कि भजन-साधना में उसकी ख़ूब उन्नति हुई है, इसलिए अब किसी निर्जन स्थान में जाकर रहना चाहिए। ऐसा सोचकर वह महर्षि जुन्नेद का साथ छोड़कर एक निर्जन स्थान में जाकर रहने लगा। वहाँ रोज़ रात को एक ऊँट आता और उन्हें सुनाई देता—'चलो, तुम्हे स्वर्ग में ले चलूं।' वह ऊँट पर सवार होजाता, ऊँट उसे एक रमणीय स्थान में ले जाता। वहाँ जाकर वह बढ़िया खाता, बढ़िया पीता और दास-दासियों से सेवा करवाता। रात भर वह वहाँ सुख भोगता और सवेरे उठकर आँख खोलता तो अपने आप को उसी निर्जन स्थान में पड़ा पाता। 'मुझे देवता रोज़ स्वर्ग में ले जाते हैं।' यह सोचकर वह और भी ज़्यादा घमंडी होगया। जुन्नेद यह हाल सुनकर उसकी झोंपड़ी में आए। उन्होंने देखा उसके अभिमान का कोई पार नहीं है। पूछने पर उस साधक ने सारी हक़ीक़त कह सुनाई। इसपर वे बोले—'आज रात को तुम्हें बुलावा आवे तो वहाँ जाकर तीन बार कहना—लाहौल विलाकूवत इल्ला बिल्लाहे!'

रात को उसी तरह ऊँट आया और वह उस जगह जा पहुँचा। वहाँ पहुँचकर उसने उस वाक्य का तीन बार उच्चारण किया। पल भर

में वहाँ की सब चीज़ें चीख़ मारकर ग़ायब होगईं और वह अहंकारी साधक अकेला रह गया। उसने देखा, वह निहायत ख़राब जगह है, मरे हुये जीवों की हड्डियों के वहाँ ढेर लगे हुए हैं और बड़ी बुरी बदबू फैल रही है। अब उसे अपनी भूल मालूम दी और वह फिर गुरु की शरण में आगया। वह जान गया कि शिष्य का अकेले रहना महा भयंकर है। वह स्वर्ग अहंकारी साधक का स्वप्न हो अथवा कल्पना-जनित मनोराज्य हो, किन्तु उससे उसे तो बोध ही प्राप्त हुआ।

एक बार उनके एक शिष्य से अपराध हो गया। शर्मिन्दा होकर वह जुनैद का साथ छोड़कर छिपकर रहने लगा। एक दिन जुन्नैद बाज़ार में से होकर अपने धर्म-बंधुओं के साथ जारहे थे। सहसा उन्होंने उस शिष्य को देखा। वह तो गुरु को देखते ही वहाँ से भाग खड़ा हुआ। उसे भागते देखकर जुनैद अपने साथियों से बोले—'आप लोग मेरी झोंपड़ी में चलें। मेरा एक पक्षी उड़ गया है, मुझे उसे पकड़ना है।'

वे शिष्य के पीछे दौड़ पड़े। उन्हें आता देखकर वह और भी तेज़ दौड़ने लगा। पर वह ऐसी जगह जा निकला जहाँ से आगे रास्ता ही नहीं था। शर्म के मारे वह सामने की दीवार की ओर मुँह करके खड़ा रह गया और बोला—'आप कहाँ जारहे हैं!'

जुनैद बोले—'अपने शिष्य के पास। जहाँ रास्ता रुक गया है, वहाँ एक गुरु को आने की ज़रूरत उसी के लिए पड़ी है।'

ऐसी स्नेह भरी बात सुनकर वह पिघल गया। गुरु के साथ लौटकर उसने अपना शेष भावी जीवन सुधारा।

महर्षि जुन्नैद को अपना मरणकाल समीप मालूम दिया, तब उन्होंने अपने साथियों को भोज दिया और बार-बार ईश्वर का नाम लेकर उन्हें प्रणाम किया। फिर क़ुरान के दूसरे अध्याय के सत्रहवें

अवचन तक पाठ किया। जब उनके प्राण कण्ठों में आ गये तो उनके साथियों ने उनसे कहा—'प्रभु को याद करिये।'

वे बोले—'उसकी याद दिलाने की ज़रूरत नहीं, मैं उसे एक पल भी नहीं भूलता।'

तसबीह हाथ में लेकर 'बिस्मिल्लाअर्रहमान् अर्रहीम' का जाप करते हुए उन्होंने सदा के लिए आँखें मूँद लीं।

कहा जाता है कि उनके शव को नहलाते समय, जब उनके नेत्र खोले जाने लगे तो देववाणी सुनाई दी कि मेरे भक्त ने मेरा नाम लेते-लेते आँखें मूँदी थीं, मेरे सिवा और किसी को देखने के लिए उसकी आँखें नहीं खुलेंगी।' तसबीह पकड़ने के कारण मुड़ी हुई अँगुलियाँ जब सीधी की जाने लगीं तो सुनाई दिया—'मेरा जप करने के लिए ये अँगुलियाँ मुड़ी थीं, बिना मेरी आज्ञा के वे सीधी नहीं होंगी।'

उपदेश-वचन

१—जन्म के पहले तू ईश्वर को जितना प्यारा था, उतना ही मृत्यु-पर्यंत बना रहे, ऐसा आचरण कर।

२—धन-दौलत कमाने के पीछे क्यों पड़े हुए हो? तुम्हारी ज़रूरियातों को पूरी करने और तुम्हारी देखभाल रखने का भार तो उस ईश्वर ही ने ले रखा है; यदि उसका भरोसा करोगे तो सब तरह से शांति और सुख पाओगे।

३—प्रभु की गुण-महिमा का ज्ञान पाना ही उसमें श्रद्धा और विश्वास करना है। एक बार उस विश्वास को पाकर फिर उसे खो न देना।

४—अपने निर्वाह के लिए जो चिंता अथवा प्रपंच नहीं करता, वही सच्चा विश्वासी है।

५—ईश्वरीय-ज्ञान का हरएक व्यवहार में पालन करने पर निर्वाह के साधन तो अपने आप दौड़े आवेंगे।

६—अहंभाव को छोड़कर विपत्ति को भी संपत्ति मानना ही सच्चा संतोष है।

७—उच्च और पवित्र भावना एक ऐसी अद्भुत वस्तु है जो मनुष्य के मन में आकर भी स्थिर नहीं रहती। उसका तो मनुष्य पर बहुत प्रेम है, किन्तु मनुष्य की उस पर प्रीति हो तब न?

८—ईश्वर-प्रेरित महापुरुषों के वचनों को साक्षात् ईश्वर के बचन ही मानो और सच्चे संतों के वचनों को उन वचनों की प्रतिध्वनि मानो।

९—जिसका मन पवित्र नहीं, उसका कोई काम पवित्र नहीं होता।

१०—इस नाशवान संसार में जो आसक्त नहीं है, वही सूफ़ी—अनुभव-सिद्ध ज्ञानी ऋषि—है। तल्लीन होकर ईश्वर का गुण गाना, मस्त होकर संगीत सुनना और प्रभु की अधीनता मानकर काम करना ही सूफ़ी का धर्म है। हज़रत इब्राहिम के मुताबिक़ एक सच्चा सूफ़ी भी संसार की आसक्ति से मुक्त और ईश्वराज्ञा के पालन में प्रवृत्त होता है। उसका आत्म-समर्पण हज़रत इस्माइल के समान, पश्चात्ताप हज़रत दाऊद के समान, दीनता हज़रत ईसा के समान, सहनशीलता योब के के समान और अनुराग हज़रत मूसा के समान होता है और उपासना के समय उसका प्रेम होता है महापुरुष मुहम्मद पैग़म्बर साहब के प्रेम के समान।

११—एक सूफ़ी धूल के समान है, उस पर चाहे जितना कूड़ा (विरोध निन्दादि) फेंका जाय, उससे लोक-कल्याण ही बन पड़ेगा।

१२—जो ईश्वर ही में लीन रहता है, वही सच्चा सूफ़ी है।

१३—अपना भार दूसरे पर न लादना और बिना संकोच दान करना बड़ी दिलेरी का काम है।

१४—प्रायश्चित्त की तीन सीढ़ियाँ हैं—आत्म-ग्लानि, दूसरी बार पाप न करने का निश्चय और आत्म-शुद्धि।

१५—जो आँखें ईश्वर की तावेदारी में रहने में भला नहीं मानतीं उनका तो फूट जाना ही अच्छा है, जो जीभ ईश्वर की चर्चा नहीं करती वह गूँगी ही रहे तो उत्तम, जो कान सत्य नहीं सुन सकते वे बहरे ही रह जायँ तो अच्छा, और जो तन ईश्वर की सेवा में नहीं लगता उसका मर जाना ही अच्छा है।

१६—ईश्वर अपने दास को दो प्रकार के ज्ञान में विद्वान् देखना चाहता है—साधना की कुशलता और ईश्वर के रूप के अपरोक्ष ज्ञान में।

१७—आपस में लेने-देने से जो प्रेम पैदा होता है वह प्रेम उस लेने-देने की समाप्ति के साथ ही समाप्त हो जाता है। बिना किसी स्वार्थ की गंध के जो प्रेम होता है, वही सच्चा प्रेम है।

१८—प्रभु के मार्ग में प्राण तक देने की तैयारी न हो तो उसके प्रति प्रेम है ऐसा मानना ही नहीं चाहिये।

१९—सच्चे प्रभु-प्रेमी एकांत और स्तुति-पाठ में भी ऐसी-ऐसी बातें कहते हैं जिन्हें सुनकर साधारण मनुष्य उन्हें बिना सोचे-समझे धर्म-विरुद्ध मानकर उन परम भक्तों को भी 'नास्तिक' कह बैठते हैं।

२०—ईश्वर में निमग्न होना, भावावेश में अपनेपन का नाश करना है।

२१—वास्तविक साक्षात्कार में एक ईश्वर में ही स्थिति होने के कारण अहंभाव और ममता का नाश होता है। वैसी हालत में तुम अपने शरीर और जीव को नहीं देख पाओगे।

२२—किसी वस्तु को उसके मूल स्वरूप में देखना ही उसका वास्तविक दर्शन है ।

२३—बीता हुआ समय लौटकर नहीं आता, इसलिये समय के समान प्रिय वस्तु कोई नहीं ।

२४—ऐसे प्रसंगों में, जिनमें झूठ बोले बिना बचाव होना संभव नहीं हो, उनमें भी सत्य बोलनेवाला ही सच्चा सत्यनिष्ठ है ।

२०—बायजीद बस्तामी

तपस्वी बायजीद बस्तामी का ज्वलंत प्रेम, अडग विश्वास और वैराग्यपूर्ण जीवन प्रशंसनीय था । बचपन ही से वे ज्ञान के प्रेमी और चरित्र के पवित्र थे । वे ईश्वर-चितन में सदा मस्त रहते । उनका जन्म एशिया के बस्ताम देश में हुआ था । उनके दादा मूर्त्तिपूजक थे और उनके पिता पक्के मुसलमान । उनके पिता उन्हें बालक छोड़कर मर गए । उनकी माता अत्यन्त धर्म-परायण थीं । धर्म और नीति की शिक्षा दिलाने के लिये माता ने पुत्र को एक योग्य शिक्षक के पास भेजा । एक दिन उन्होंने पाठशाला में क़ुरान का यह वचन पढ़ा—'मुझे और माता-पिता को धन्यवाद दो ।' इसका अभिप्राय पूछने पर शिक्षक ने विस्तार से सब बातें समझाईं, जिन्हें सुनकर बायजीद के मन में उथल-पुथल मच गई । तुरंत गुरु की आज्ञा लेकर घर पर आकर उन्होंने अपनी माता को क़ुरान का वह वचन सुनाकर कहा—माँ ! मैं इस विलक्षण बात को नहीं समझ पाया । दो मालिकों की सेवा एक साथ किस तरह हो सकती है ? या तो ईश्वर से तुम मुझे माँग लो जिससे मैं आजीवन तुम्हारी सेवा करता रहूँ, नहीं तो मुझे ईश्वर को सौंप दो जिससे मैं उसका दास बनकर जीवन विताऊँ ।'

माता ने कहा—'बेटा ! मैं तुझे सदा के लिए ईश्वर को सौंपती हूँ। मेरे प्रति अब तेरा कोई कर्त्तव्य नहीं रहा। तेरे घर का अपना सारा हक मैं आज से छोड़ती हूँ। जा, उस परवरदिग़ार का दास होकर जीवन बिता।'

माता की आज्ञा पाकर बायजीद देश छोड़कर निकल पड़े। तपोवन में रहकर, अन्न और निद्रा का त्याग करके, तीस वर्ष तक उन्होंने कठोर साधना की। उन्होंने एक सौ तेरह ऋषियों की सत्संगति की थी, जिससे उन्हें बहुत फ़ायदा हुआ। महर्षि सादिक की संगति में भी वे रहते थे। एक दिन सादिक ने उनसे अलमारी में से पुस्तक लाने को कहा। बायजीद ने आश्चर्य से पूछा—'अलमारी कहाँ है?'

सादिक़—'बायजीद! इतने समय से मेरे पास रहते भी तुम्हें यह मालूम नहीं अलमारी कहाँ है?'

बायजीद—'गुरुवर! अलमारी देखने से मुझे क्या सरोकार था? आपके दर्शन-समागम से और आपकी वाणी से मुझे बहुत से फायदे हुये हैं, मैं दूसरी बातों से क्या सरोकार रखता?'

सादिक—'बहुत ठीक। तुम्हारी साधना पूरी हुई है, तुम बस्ताम लौट सकते हो।'

बहुत वर्षों की साधना के बाद उन्नत जीवन का लाभ पाकर बायजीद अपनी माता के दर्शन के लिये बस्ताम आये। एक दिन प्रातःकाल वे अपने घर के द्वार पर पहुँचे तो उनकी माता प्रार्थना कर रही थीं—'हे प्रभु! मेरे दुःखी पुत्र का मंगल कर। साधुजनों को उस पर प्रसन्न कर और उसके जीवन को धर्म-बल से बलवान् कर!' माता की यह प्रेम-पूर्ण प्रार्थना सुनकर बायजीद हर्ष से रोने लगे। किवाड़ खटखटाकर उन्होंने माता को पुकारा—'माँ! तेरा यह दुःखी पुत्र यहाँ हाज़िर है।' माता ने तुरंत द्वार खोलकर प्रेमाश्रु बहाते अपने पुत्र को

भुजाओं में भर लिया और कहा—'पुत्र ! माता की सँभाल बहुत वर्ष बाद ली ! तेरी जुदाई के बोझे को उठाकर मेरी कमर झुक गई।

बायजीद—'माता ! मैं पहले जिस काम को गौण मानकर चला गया था, उसी के महत्त्व को अब समझ गया हूँ। अब मेरा पहला काम होगा तुम्हारी सेवा करना। कठोर तप करके मैंने जो बात पाई, वही मैं एक माता की सेवा करके पा सकता था।'

एक रात को माता ने पानी माँगा। बायजीद ने देखा, घर के किसी बर्तन में पानी नहीं था; वे नदी से जल लाने गए। पीछे से माँ को नींद आगई। पानी लेकर लौटने पर माता को सोई देखकर वे वहीं खड़े रहे। बहुत देर बाद माँ के जागने पर उसे पानी पिलाकर उन्होंने आशीर्वाद पाया। सर्दी होने के कारण पानी का बर्तन थामे रहने के कारण उनकी अँगुलियाँ ठिठुर गईं; पर उन्होंने इस डर से कि बर्तन की आवाज़ से कहीं वे जाग न जायँ, बर्तन को हाथों ही में थामे रहे।

महर्षि बायजीद के घर से मसजिद चालीस क़दम दूर थी। वहाँ जाते-आते रास्ते में वे थूकते भी नहीं थे। वे जब मक्का गए थे तब हर एक क़दम पर स्तोत्र-पाठ करते-करते वहाँ बारह वर्ष में पहुँचे थे। उनका कहना था—'काबा का द्वार इस पृथ्वी के किसी राज का द्वार नहीं है कि उसमें एकदम दौड़कर कोई भी घुस जाय, वह तो सारे ब्रह्मांड के राजाधिराज के मन्दिर का द्वार है, उसमें अनेक साधनाओं के बाद ही प्रवेश किया जा सकता है।'

मक्का के दर्शन करके वे मदीना के दर्शन करने के लिए नहीं गए; पर घर लौटकर फिर दूसरी बार मदीना की यात्रा के लिए गए। एक ही यात्रा में दोनों तीर्थ करने का मतलब सिद्ध कर लेना उन्हें ठीक नहीं मालूम दिया। मक्का जाते समय उनके तप का प्रभाव देखकर सैकड़ों आदमी उनके साथ होगए थे।

बायजीद ने कहा है—'बारह वर्ष तक अपने अंतःकरण रूपी दर्पण

को निर्मल करने की मैंने मेहनत की है, अपने जीवन को साधना में रखकर उसे पश्चात्ताप से शुद्ध किया है। अनेक साधना के बाद यह दर्पण स्वच्छ हुआ है। उसके बाद भी मैं इस दर्पण को साधना और तप से साफ रखने में लगा रहा हूँ। फिर भी मैंने देखा, साधना के अभिमान का भूत इस मन में घुसा ही हुआ है। पाँच वर्ष तक मेहनत करने के बाद मैं उस भूत को बाहर कर पाया। उसके बाद ही मेरा जीवन विनय की प्रभा से प्रकाशित हो पाया है।'

बायजीद चालीस वर्ष तक मसजिद के पास रहे। मसजिद, घर और उपासना में पहनने के उनके कपड़े अलग-अलग थे। बहुत वर्षों तक वे बहुत थोड़ी नींद लेते रहे। मसजिद के मुसाफिरखाने की दिवाल का सहारा लेकर वे सारी रात बिता देते। वे कहा करते थे—'मैं एक धूल के कण से भी पूछता हूँ तो वह कहता है कि मैं बायजीद से श्रेष्ठ हूँ।'

बायजीद ने कहा है कि बहुत समय तक अपनी परीक्षा करके वे जान पाये कि दासत्व और प्रभुत्व ये दोनों ईश्वर की देन ही हैं। पर वे परमेश्वर को बुलाया करते थे, पर अंतर्दृष्टि से देखने पर वे जान गए कि बुलानेवाला तो वही है, वे तो उसके बुलाने पर आए हुए हैं।

महर्षि जुन्नुन मिश्री ने अपने एक शिष्य को भेजकर बायजीद को कहलाया—'हज करने के लिए जाते समय मैं पड़ाव में सोया रह गया और मेरे साथी आगे चले गए। मैं अकेला रह गया हूँ।'

इसके जवाब में बायजीद ने कहलाया—'सारी रात बिना नींद के प्रभु का स्मरण करनेवाला और दूसरे यात्रियों के उठने के पहले ही मंजिल तय कर लेनेवाला ही सच्चा प्रभुभक्त और सत्पुरुष है।' यह जवाब सुनकर जुन्नुन की आँखें हर्ष के मारे भर आईं, उन्होंने कहा—'बस्तामी! तुम्हारा कल्याण हो। इस भवाटवी में मैं तो वैसी उन्नत अवस्था नहीं प्राप्त कर सका, किन्तु तुम तो उस अवस्था को पाने में

समर्थ हुए हो।'

एक बार महात्मा अबु मुसा ने बायजीद से पूछा—'प्रभु की साधना में तुमको क्या कठिनता मालूम देती है?'

उन्होंने उत्तर दिया—'बहुत समय से मैं कठोर निग्रह कर रहा हूँ, तो भी प्रभु के चरणों में मेरा मन स्थिर नहीं होने पाया है। मैं रोता हूँ, सिर धुनता हूँ तो भी वह स्थिर नहीं होता। जिस दिन उस प्रभु की पूर्ण कृपा होगी, उसी दिन वह स्थिर होगा। अपने मन को स्थिर करने ही में मुझे सबसे ज़्यादा कठिनाई मालूम देती है।'

महर्षि इयहा ने बायजीद को लिखा—'जो मनुष्य प्रेम की मदिरा पीकर सदा उन्मत्त बना रहता है, उसके बारे में आपका क्या कहना है?' इसके उत्तर में उन्होंने लिखा—'यहाँ मेरे पास एक ऐसा आदमी है जो रातदिन प्रेम की धारावाही नदी बहा रहा है।'

इयहा ने एक बार उन्हें लिखा था—'मुझे आपके साथ बहुत सी बातें करनी हैं। हम दोनों के लिए यदि स्वर्ग में कोई स्थान तै हुआ होगा तो वहीं बैठकर सब बातें होंगी।' उस पत्र के साथ उन्होंने ज़मज़म के जल में तैयार की हुई रोटी का एक टुकड़ा प्रसाद की तरह भेजा। पत्र और प्रसाद पाकर उन्होंने उत्तर लिखा—'जहाँ ईश्वर की चर्चा होती है, वहीं स्वर्ग है। आपके भेजे प्रसाद में ज़मज़म का जल तो है पर आपने यह नहीं लिखा उसका आटा कैसा है?'

यह उत्तर पाकर इयहा बायजीद से मिलने के लिये उत्कण्ठित हो उठे। वे उनसे मिलने गए। उन्होंने स्वयं कहा है—''रात की नमाज़ के समय मैं उनके यहाँ पहुँचा। उस समय बायजीद किसी से मिलते न थे, इसलिये मुझे सवेरे तक ठहरना पड़ा। सवेरा होने पर मालूम हुआ कि वे अपनी झोंपड़ी में नहीं, पर क़ब्रिस्तान में बैठकर साधना में लगे हैं। मै वहाँ पहुँचा; मैं उनकी ओर बहुत देर तक आँख लगाये रहा, पर वे तो प्रभु के ध्यान में मग्न थे। मुझे लोगों से मालूम हुआ

कि सारी रात इसी प्रकार उन्होंने उस प्रभु के सानिध्य में बितायी है। सवेरे की नमाज़ पढ़ लेने के बाद उन्होंने नेत्र खोले। मैंने प्रणाम किया। बहुत ही स्नेह से उन्होंने मेरे साथ गहन विषयों पर बातें कीं। अंत में उन्होंने कहा—'इयहा! मुझे इस बात की लज्जा का बोध होता है कि मैंने ऐसा कहा है कि मैं ईश्वर को जानता हूँ, क्योंकि सच तो यह है कि कोई भी उसे पूरी तरह नहीं जान पाता। अपना पूरा-पूरा ज्ञान तो स्वयं उसे ही है। ऐसे असीम परमात्मा के आगे मैं कौन? इयहा! सौ बातों की एक बात यह है कि ख़ुद उसके सिवा कोई दूसरा उसे पूरी तरह से जान ही नहीं पाता।"

एक रात को बायजीद क़ब्रिस्तान में जारहे थे। रास्ते में एक बदचलन जवान तँबूरा बजाकर मौज-मज़ा कररहा था। बायजीद उसके पास से 'ओ प्रभु! तू ही महान् और अमर है' कहते हुये निकले। अपने आनन्द में बाधा पड़ी देखकर उस बदचलन जवान ने क्रोध में आकर अपना तँबूरा उनके सिर पर दे मारा। उस मार से तँबूरा और उनका सिर दोनों फूट गये, पर वे नम्रभाव से वहाँ से चले गए। दूसरे दिन सवेरे उन्होंने अपने एक शिष्य के द्वारा उस तँबूरे की क़ीमत और एक मिठाई का थाल उस जवान के पास भेजकर, विनय और आग्रह-पूर्वक कहलाया—'गत रात को मेरे मस्तक से तुम्हारा तँबूरा टूट गया था, मेहरबानी करके उसकी क़ीमत को मंजूर करो। एक नया तंबूरा मँगवा लेना। मिठाई इसलिये भेजी है कि उसे खाकर तुम्हारा क्रोध शांत होजाय।'

महर्षि का ऐसा व्यवहार देखकर वह बदचलन जवान पिघल गया। आकर वह उनके पैरों पर लोटने लगा, अपने किये का पछतावा करके माफ़ी माँगने लगा।

एक बार अपने शिष्यों के साथ एक सँकरे रास्ते से जाते समय बायजीद ने सामने से आते हुये कुत्ते के लिये रास्ता छोड़ दिया। एक

शिष्य को उनकी ऐसी रीति ठीक नहीं लगी। इस पर उन्होंने कहा—'इस कुत्ते ने मुझसे पूछा कि हमने क्या अपराध किया है कि आप हमारे जाति-भाई का चमड़ा पहने हैं? हमारे इस उपयोग का आप क्या बदला चुकावेंगे? इसीलिये मैंने उस कुत्ते को रास्ता देकर उसकी इज़्ज़त की है।'

बस्ताम का रहनेवाला एक साधक बहुत वर्ष से उनके साथ था। एक दिन वह बोला—'महात्मन्! मैं तीस वर्ष से रोज़ रोज़ा और रात को जागरण करता हूँ, तो भी आपने जिस गूढ़ तत्त्व-ज्ञान का उपदेश दिया है उसका आभास मात्र भी मुझे नहीं होता!' बायज़ीद ने उत्तर दिया—'भाई तीस तो क्या तीन हज़ार वर्ष तक भी ऐसा करते रहोगे तो कोई लाभ न होगा।'

उसने पूछा—'यह कैसे?'

बायज़ीद—'भाई, मैंने तेरे जीवन को भाँति-भाँति के परदों से ढक दिया है, इसलिये।'

वह—'इसका उपाय?'

बायज़ीद—'मेरे पास उसकी औषधि तो है, पर तू उसे खा नहीं सकेगा।'

वह—ज़रूर खा लूँगा, मैं तो वैसी किसी औषधि की तलाश में वर्षों से हूँ।'

बायज़ीद—'बहुत ठीक! पहले अपना सिर मुँड़वा ले, इन सुन्दर-सुन्दर गहने कपड़ों को पहनना छोड़ दे, सिर्फ एक कम्बल पहन ले। शहर के ऐसे रास्तों में, जहाँ तुम्हें सब पहचानते हैं, जाकर बैठ जा। बहुत से खिलौने इकट्ठे करके बालकों को अपने पास बुला और उन्हें दो-दो देकर और एक-एक जूता अपने मारनेवाले को एक-एक खिलौना देने को कह। जो ज्यादा मारे उसे ज्यादा खिलौने दे। इस तरह गली-गली में घूमकर अपनी बेइज़्ज़ती करा। तेरे लिये यही बढ़िया दवा

है।' अपने रोग की ऐसी कठिन दवा सुनकर उस साधक के मुँह से निकल पड़ा—'सुभान् अल्लाह !'

महर्षि—'एक नास्तिक भी यदि सच्चे मन से इन शब्दों का उच्चारण करे तो वह आस्तिक बन जाता है; किन्तु लाखों बार इन शब्दों का उच्चारण करके भी तू श्रद्धावान नहीं बना !'

वह साधक महर्षि की बताई कड़वी दवा को नहीं ले सका !

बायजीद के पड़ोस में एक ग़रीब का घर था। सारी रात दीपक जलाने की भी सामर्थ्य उनमें न थी, इसलिये रात को अँधेरा देखकर घर का बालक रोता रहता। महर्षि बायजीद रोज़ रात को उन्हें दीपक दे आते और बालक का रोना रुक जाता। कई वर्षों के बाद उस बालक का पिता परदेश से लौटा। बायजीद की उस दया का हाल अपनी स्त्री से सुनकर वह यह कहकर कि महर्षि के दीपक का प्रकाश अपने घर में आया है अब कोई अन्धकार नहीं रह जायगा, उनका शिष्य बन गया।

एक बार महर्षि बायजीद एक धर्मगुरु के पीछे खड़े होकर नमाज़ पढ़ रहे थे। वह धर्मगुरु उनसे पूछ बैठा—'आप कोई रोज़गार तो करते नहीं, किसी से कुछ माँगते भी नहीं, फिर आपका गुज़रान कैसे चलता है ?'

नमाज़ में विघ्न न डालकर, नमाज़ पढ़ लेने पर वे बोले—'सब का गुज़रान चलानेवाले को न जाननेवाले के पीछे खड़े होकर नमाज़ पढ़ना भी ठीक नहीं।'

एक बार बायजीद नेत्र मूँदे ध्यान में मग्न बैठे थे। बहुत देर बाद नेत्र खोलने पर उन्होंने एक आदमी को अपने पास बैठे देखा। उसने उनसे पूछा—'आप कहाँ थे ?'

बायजीद—'ईश्वर के मन्दिर में।'

वह—'मैं भी मसजिद ही में था, वहाँ से आरहा हूँ, पर वहाँ तो मैंने आपको नहीं देखा।'

बायजीद—'मैं मसजिद के परदे के भीतर था और तुम बाहर। बाहरवाले भीतर के आदमी को कैसे देख पाते ?

एक बार एक आदमी ने उनसे कहा—'आप कृपाकर स्थिर चित्त होकर मेरी एक बात सुन लें।'

उन्होंने उत्तर में कहा—'मैं तीस वर्ष से इसी बात के लिये प्रभु से विनती करता रहा हूँ, अब इसी क्षण चित्त को कैसे स्थिर कर लूँ ?'

एक दिन किसी ने उनसे उनकी उम्र पूछी, तो उन्होंने बतलाया—'चार वर्ष !' इस जवाब का मतलब समझाते हुये उन्होंने आगे कहा—सत्तर, वर्ष तक तो मैं संसार के मोहजाल में फँसा रहा, आखिरी चार वर्ष ही से मैं उस जाल से छूटकर उसे देखने लगा हूँ। जितने समय तक मैं उस जाल में फँसा था, उसे अपनी उम्र में क्यों गिनूँ ?'

'आपने जो लाभ प्राप्त किया है, वह किस प्रकार ?' एक बार इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा था—'दुनिया की सारी चीज़ों और लालसाओं को पहले एक जगह करके उन्हें वैराग्य की साँकल से बाँधकर त्याग की नदी में डुबाकर मैं यह लाभ उठा सका हूँ।

किसी ने उनसे पूछा—'आप पानी पर चल सकते हैं ?' उन्होंने उत्तर दिया—'यह काम तो लकड़ी का एक टुकड़ा भी कर सकता है।' उसने फिर पूछा—'आप आकाश मे उड सकते हैं ?' उत्तर मिला—'यह काम तो एक पक्षी भी कर सकता है।' अबकी बार उसने पूछा—'आप एक रात में मक्का जा सकते हैं ?' उन्होंने उत्तर दिया—'यह काम जादूगर का है।'

बायजीद कभी अपनी जीविका की चिंता तो करते ही नहीं थे। उन्हें दृढ़ विश्वास था कि प्रभु अवश्य रोटी देगा। जब कभी कोई परमेश्वर का गुणगान करता तो उनका चेहरा आनन्द से खिल उठता, और जब कभी कोई उनका गुणगान करता तो वे नाराज़ होकर उठकर वहाँ से चले जाते।

एक दिन उनके एक शिष्य ने कहा—'मुझे बहुत ही अचरज होता है कि अमुक व्यक्ति प्रभु को जानता है, फिर भी उसकी उपासना नहीं करता।'

महर्षि—'मुझे तो अचरज होता है ईश्वर को जान लेनेवाले को उपासना करते देखकर ! ईश्वर का ज्ञान ऐसी चीज़ है कि उससे आदमी मोहित और विह्वल बन जाता है, स्थिर चित्त से वह उपासना कर ही नहीं सकता।'

बायजीद ने अपनी साधना के बारे में स्वयं कहा है—'सोलह वर्ष तक देहली पर खड़े रहने के बाद मुझे मालूम हुआ कि मैं बहुत ही नापाक और बदचलन हूँ। पीछे मेरे मन में परमात्मा की भक्ति जागी और मैंने उससे कहा—'हे प्रभो ! तेरे सिवा मेरा कोई नहीं, तुम मेरे हो तो फिर सब कुछ मेरा है।' उसकी पहली कृपा यह हुई कि मेरे मन के क्लेश दूर हुये। उसकी आज्ञाओं का पालन करनेवाले को उसने सब कुछ दिया है; पर मैंने तो एक उसके सिवा और किसी चीज़ की कामना नहीं की। उसके प्रत्यक्ष प्रभाव से मुझे नया जीवन-सा आता दिखाई दिया। मैं पहले समझता था कि मेरा उस पर प्रेम है, पर बाद में ध्यान देने पर उससे उलटी ही बात मालूम दी। मुझ पर उसका प्रेम तो उसके प्रति मेरे प्रेम के बहुत पहले का है। सभी अपनी-अपनी साधना में लगे हैं, मुझे तो सर्वत्र उसी की कृपा व्याप्त दिखाई देती है। लोग मरनेवालों के पास से ज्ञान सीखते हैं, पर मैंने तो उस अविनाशी अनन्त प्रभु से शिक्षा प्राप्त की है। दुनियावी बातों की शिक्षा मुझे तो कष्टदायी ही मालूम हुई है।

'मैंने विश्वासपूर्ण नेत्रों से ईश्वर की ओर नज़र की थी, उसने मुझे सारी दुनियावी चीज़ों से ऊपर पहुँचाकर अपनी रोशनी से रोशन कर दिया। बहुत-सी अनोखी बातों से मेरे आगे गम्भीर रहस्य प्रकट हुए। अपनी महिमा और अपना प्रताप उस परमात्मा ने मुझे दिखाया;

उसकी ओर से नज़र उठाकर जो मैंने अपनी ओर देखा तो उसके ज्ञान के उजाले के सामने अपने ज्ञान को अँधेरे के समान पाया, उसके गौरव के सामने मेरा गौरव तो छिप गया। वह था पूर्ण निर्मल और मैं था महामलिन ! और भी आगे नज़र पसारने पर मुझे उसी की ज्योति में मेरी ज्योति दिखाई दी। सत्य और विचाररूपी नेत्रों से देखने पर मुझे मालूम दिया कि ये सब पूजा-पाठ मेरे द्वारा नहीं, उसी के द्वारा होरहे हैं, पूजा करने का मेरा अभिमान चूर होगया। मैंने आश्चर्य-चकित होकर पूछा—'हे प्रभो ! यह कैसी बात है ?'

"उसने बताया—'सब कुछ मैं ही हूँ। मेरे सिवा दूसरी कोई चीज़ नहीं। तू सिर्फ़ काम करता रह, तेरी काम करने की शक्ति और उस काम की सिद्धि भी मैं ही हूँ।' बाद में उस प्रभु ने मेरी बाहरी और भीतरी दोनों आँखें मूँदकर अपने स्वरूप और कार्य का दर्शन कराकर मुझे शिक्षा दी, मेरे निजी अस्तित्व को मिटाकर मुझे अपने सच्चिदानन्दमय रूप में जीवित किया। वह मुझे असत्य में से सत्य में, अन्धकार में से प्रकाश में ले गया। मैंने उसी के द्वारा उसे उसके वास्तविकरूप मे देखा; उसी के साथ मैं शान्ति से रहने लगा। बुरी बातें बनाने से मैंने जीभ को चुप रखा, कानों को बुरी बातें सुनने से रोका, इन्द्रियों की लालसा को चूर कर दिया; तब ईश्वर ने दया दिखाई। उसने मेरे हृदय में सच्चे ज्ञान का उदय किया। अपनी कृपा से उसने वाणी को नया रूप दे दिया, अपनी ज्योति से मेरे चक्षुओं को और ही बना दिया और उन नई आँखों से मै सारी दुनिया को देखने लगा। उसकी कृपा से प्राप्त वाणी और नेत्रों से मैंने उसकी स्तुति की, उसे देखा। मुझे वह कहता सुनाई दिया—'वायजीद ! देख, जहाँ कुछ भी नहीं है, वहीं सब कुछ है।'

"मैंने निवेदन किया—'हे प्रभो ! मुझ में कहीं अहंकार न आजाय, इसकी दया रखना। आपने मुझे नवजीवन दिया है, तो भी और

अनुभव करने की भूख मिटी नहीं। मैं आपके बिना होकर रहूँ उससे तो यही बेहतर होगा कि आप मुझे मेरे बिना करके ही रखें।" बाद में उसी प्रभु ने मुझे आज्ञा दी—'बायजीद! अब विधि-निषेध की हद के भीतर रहकर साधना में चित्त लगा, उससे तेरा यत्न सफल होगा।'

मैं बोला—"प्रभो! मेरी यही कामना है। मुझे विश्वास है कि यदि आप मुझे अपनी वंदना में लगायेंगे तो ही मुझसे वैसा बन पड़ेगा। मैं ख़ुद तो कुछ भी करने के लायक़ नहीं। यदि आप मुझे दण्ड भी देंगे तो उससे मेरा पाप दूर ही होगा।"

"प्रभु ने पूछा—'तुझे यह शिक्षा किसने दी?"

'मैंने कहा—'जवाब देनेवाले की अपेक्षा पूछनेवाला इस विषय में ज़्यादा जानता है। कारण, जानने की इच्छा करनेवाला और जाना जानेवाला एक ही है।' मन का मैल साफ़ होने पर ही प्रभु की प्रसन्नता की ध्वनि सुनाई दी, उसके सन्तोष के चिह्न दिखाई दिए और मैं जान पाया कि मुझे जगानेवाला वही है और उसी की कृपा से आनन्द की यह सेज सजी है, जिस पर मैं सुख से सोया हूँ।"

"उसने मुझसे कहा था—'बायजीद! जो चाहे सो माँग ले।'

"'मैंने कहा—'हे प्रभो! मैं तो आप ही को चाहता हूँ, और कुछ भी नहीं। आप महान् से महान् हैं, परम कृपालु हैं: मुझे आप ही से शान्ति मिलेगी। मुझे अपने से ज़रा भी अलग न करना, मेरे सामने अपने सिवा और किसी को न आने देना।'

"पीछे मुझे गौरव का ताज पहनाकर उसने कहा—'जिस सत्य को तूने देखा है, सुना है, उसी को तू कहता है, उसी की तू खोज करता है।'

मैंने कहा—'मैंने जो कुछ देखा है आपके द्वारा, जो कुछ सुना है

वह भी आपही से। आपने जो कुछ सुनाया है, मैं तो उसकी प्रशंसा करता हूँ।'

"बाद में उसी से उसकी महिमा और गुणगाने की शक्ति पाने से मानो मुझे नए पंख मिल गए। मैं उन पंखों से महत्व के आकाश में उड़ने लगा। मुझे दुर्बल और व्याकुल जानकर उसने मुझे अपने बल से बलवान् बनाया, अपनी शोभा से शोभित किया और एकता के मन्दिर का द्वार मेरे लिए खोल दिया। जब मेरे सारे भाव उसके भावों में मिल गए तो उसने मुझे अपने मन्दिर ही का एक आदमी मानकर उसमें बुला लिया। एकता की रोशनी आते ही जुदाई दूर होगई। उसने आशीर्वाद दिया—'जो इच्छा मेरी है, वही तेरी भी हो। तेरी वाणी मेरी इच्छा की विरोधी न हो। अहंभाव तुझे मुझसे दूर न करे।'

इस प्रकार उसने मुझे अपना बना लिया। फिर भी उसने एक गहरा हमला करके मेरी परीक्षा ली। परीक्षा की आग से मैं और भी शुद्ध होकर निकला। उसके प्रति मेरी भक्ति ख़ूब बढ़ने लगी। मैंने प्रार्थना ही में अपने उद्देश की सिद्धि देखी। अंधकार दूर करने का तेज़ दीपक मुझे दिखाई दिया। मौन-भाव! वैराग्य का साफ़-सुथरा बाना पहनकर मैं देवलोक मे रहने लगा। मन का द्वार खुलते ही सारा अंधकार दूर होगया। मैंने ऐसी जीभ पा ली थी जो अभेद के सिवा कुछ भी नहीं बोलती थी। मेरी जीभ उसकी कृपा की प्रशंसा करने में, मेरा हृदय और मेरी आँखें उसके अवर्णनीय सौन्दर्य को देखने में मशग़ूल थे। मैं उसी से बातें करता, उसी की शक्ति से श्वासोच्छ्वास लेने लगा, मैं उसी के सहारे जीता हूँ और कभी नहीं मरूँगा। मैं ऐसी जगह जा पहुँचा जहाँ से मेरे भजन-साधन अनन्त की ओर तथा मेरे लक्षण अनादि की ओर होगए। मेरी जिह्वा उसी अभेद की जिह्वा बन गई।"

मैं जो उपदेश देता हूँ, वे मेरे अपने नहीं हैं। मैं वक्ता कहलाने योग्य नहीं; मेरी जीभ का चलानेवाला तो वह ईश्वर है, मैं तो साधन मात्र हूँ। मुझे निमित्त बनाकर उसने कहा—'बायजीद ! लोग तुझे देखना चाहते हैं।'

मैंने कहा—'प्रभो ! मै तो नही चाहता कि उनकी नज़र में पड़ूँ तो भी आपकी यदि ऐसी मर्जी है तो मैं आपके खिलाफ़ कैसे होऊँगा ! आप मुझे चाहे जहाँ भेजें, पर अपना अभेद भाव मुझसे बनाए रहें जिससे जहाँ कही मैं देखा जाऊँ, मेरे रूप में आप ही दिखाई दें।'

वह तो ठहरा भक्तवत्सल। उसने मेरा यह मनोरथ पूरा करने के लिए और लोक-प्रतिष्ठा की हानि दिखाकर मुझे अपनी ओर जल्दी वापस लौटा लेने के लिये कहा—'ठीक, जा मेरी प्रजा से इज्ज़त हासिल करने के लिए जा'। मैंने प्रभु के मन्दिर से एक कदम ही बाहर रखा था कि मुझे सुनाई दिया—'लौट आ, मेरे भक्त ! मेरे पास लौट आ। अब भूल-चूक कर भी मुझे छोड़कर मत जाना। मेरे सिवा और कोई रास्ता तेरे लिए नहीं है।'

अपने जीवन की ऐसी बहुत सी बातें स्वयं बायजीद ने कही है। वे यह प्रार्थना किया करते थे—

"हे प्रभो ! अभी कितने समय तक आपके और मेरे बीच में 'तू और मैं' का अंतर बना रहेगा ? मेरा अपनापन तो मुझ से ज़रूर और जल्द दूर कर दें। ऐसा हो जाने से तो फिर मेरा अपनापन आपही में लीन होजायगा। हे परमेश्वर ! जबतक मै आपके पास रहता हूँ तब तक तो अपने आपको सबसे ऊपर पाता हूँ, पर जब मैं अपने पास ही—अपने देहाभिमान, अज्ञान, अहंकार, ममता में—फँसा रहता हूँ, तब तो अपने आपको पाता हूँ सबसे नीचे। हे प्रभो ! यदि आप मुझे अपनाकर, अपने सखा के ऊँचे पद पर बैठा लें; अथवा मुझे अपना

तत्त्व जानने के योग्य बना दें, आपकी अगर इतनी मेहरबानी हो जाय तो फिर मुझे दुनिया के आगे योगी अथवा ज्ञानी बनने की ज़रूरत ही नहीं रह जायगी। हे नाथ! मैं तो आपके आगे हाथ पसारकर ही माँगूँगा और जो कुछ पाऊँगा सो आप ही से। हे प्रभो! इस दास के उद्वेगी मन में भी आपके आश्वासन कितने उत्तम लगते हैं। हे दीनानाथ! पापियों के लिए भी आपके बोध-वचन कितने मधुर हैं। आपके ये उन्नत भाव तो ऐसे हैं कि मनुष्य तो उन्हें अपनी ओछी बुद्धि के कारण नाप ही नहीं पाता, उन्हें व्यक्त तो कर ही कैसे सकें! अनंत जिह्वायें हों तो भी वह उनका वर्णन नहीं कर सके। हे प्रभु! मैं आपसे प्रेम करूँ इसमें तो अचरज की बात ही कौन-सी है, कारण मैं ठहरा दास, दुर्बल, दीन, हीन और भिक्षुक; अचरज तो इसमें है कि प्रभु सर्व-शक्तिमान, सर्वज्ञ, अपार ऐश्वर्य-सम्पन्न होकर भी मुझे प्यार करते हैं।'

"हे दीनानाथ! मैं तो ऐसा निर्बल और अयोग्य हूँ कि अपना सारा समय आपकी साधना में नहीं बिताता। रात की उपासना भी बराबर नहीं होती और मैं ज़्यादा रोज़ा भी नहीं कर पाता। बार-बार धर्म-ग्रंथ का अध्ययन भी मुझसे नहीं बन पड़ता, जिसके कारण आपका यथार्थ वर्णन करनेवाली स्तुति भी मुझे नहीं आती। आप जानते हैं मैं कुछ भी नहीं जानता; यह जो कुछ कह रहा हूँ मेरी लियाक़त के कारण नहीं, पर अपनी लज्जा के कारण कह रहा हूँ। आपकी कृपा के इस अमूल्य अनुपम वस्त्र को पाकर मैं ध्यान, भजन, त्याग आदि वस्त्रों को बराबर नहीं सँभाल पाता हूँ। क्या कहूँ! प्रभो! शर्म के मारे मैं गड़ा जा रहा हूँ। सत्तर वर्ष तक मैं नास्तिक ही बना रहा। मेरे बाल भी सफ़ेद हो गए। और अब आख़िरी हालत में आपका नाम रटता हुआ जङ्गल में आपके पास शिक्षा पाने के लिए आया हूँ। अब जाकर मैंने विश्वास की धरती पर क़दम रखा है। अपनी जिह्वा को भी

मैंने आपके गुणगान में श्रम लगाया है। आपका कोई काम हेतु के अधीन नहीं रहता, इसीसे मैं समझता हूँ कि आपकी प्रसन्नता का आधार मेरे तप पर नहीं है। मैंने तो जो कुछ किया है वह तृण के समान है। हे दयालु! आपने मेरे अनेक अन्यायों को देखा है; मुझे क्षमा करें। मैंने तप किया है, आपकी साधना की है, उसके मेरे अभिमान को नष्ट करें; अज्ञान-जन्य दूषणों को दूर करके मेरे पापों को अपनी कृपा से धो दें।"

बायजीद का सारा जीवन ईश्वर के भजन स्मरण ही में बीता था। उनका देहांत भी ईश्वर का नाम लेते-लेते ही हुआ था।

हजरत मुहम्मद साहब के दौहित्र साधु सादिक के बायजीद समकालीन थे, जिससे मालूम होता है कि उन्हें हुए ग्यारह सौ वर्ष होगए। उन्होंने शादी की थी या नहीं, इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता।

उपदेश-वचन

१—मेरे हृदय में एक बार ऐसी ध्वनि सुनाई दी—'बायजीद! मेरा भण्डार विविध रत्नों से भरपूर है, यदि तू मुझे चाहता है तो ऐसी चीज़ ले आ जो मुझमें न हो।' यह सुनकर मैंने कहा—'हे प्रभु! ऐसी कौन-सी वस्तु है जो आपके पास न हो?' उत्तर मिला—'दीनता, अर्थात् सब लौकिक पदार्थों का त्याग।'

२—जो कुछ त्याग वैराग्य मुझमें है, वह सब ईश्वर की मेहरबानी के कारण है। 'ईश्वर की कृपा के बिना मनुष्य के प्रयत्न से कुछ भी नहीं मिल सकता।' इस वचन का मूल्य मेरे लिए मृत्यु-लोक और स्वर्गलोक से भी ज्यादा है; किंतु इस प्रकार के भक्त से भी वह भक्त अधिक भाग्यशाली है जो बिना किसी दूसरे यत्न के एक मात्र प्रभु कृपा

से योग्य भण्डार और प्रभु-दर्शन रूपी सर्वोपरि धन को पा लेता है।

३—मक्का मे जाकर पहले तो मैंने मसजिद ही देखी। दूसरी वार मसजिद में जाकर उसके मालिक को देखा, परन्तु तीसरी वार तो न मैंने मसजिद ही देखी और न उसके मालिक ही को। मैं तो ईश्वर में इतना डूबा हुआ था कि मै उसके सिवा और किसी चीज़ को देख ही नही सका।

४—मैं तीस वर्ष तक यही कहता रहा कि हे प्रभो! मेरा यह काम करो, मुझे यह दो, वह दो, पर उस प्रभु को थोड़ा-सा पहचानते ही मैंने केवल इतना ही कहा—'हे नाथ! आप स्वयं मेरे हो जायँ। दूसरी बातों में आपकी जैसी इच्छा हो करें।'

५—प्रातःकाल उसके स्मरण से निकले हुए प्रेम-पूर्ण उच्चारण 'आहा, हे प्रभो!' मुझे इतने प्रिय मालूम देते हैं कि जगत की सारी सम्पत्ति पाने के लोभ से भी मैं उन्हें नहीं छोड़ूँ।

६—जो मेरे साथी थे, वे तो दुनिया की एक चीज़ पाकर उसी मे लुभा गए; मैंने तो उनमें से किसी में न फँसकर, अपने आपको सब तरह से उस स्वामी को अर्पण कर दिया है, अपने लिए कुछ भी नही रखा है।

७—चालीस वर्ष तक मैं दुनिया के लोगों को ईश्वर की ओर आने के लिए पुकारता रहा; पर कोई भी नहीं आया। आख़िर, उस बाहरी काम से थककर मैं प्रभु के मन्दिर में गया; वहाँ जाकर मैंने देखा वहाँ तो मुझसे भी पहले बहुत से लोग पहुँच चुके थे और उन पर प्रभु की कृपा भी मुझसे कहीं अधिक थी!

८—एक दिन मैं अपने मन के पीछे पड़ा हुआ था। दूसरे दिन सवेरे ही मुझे सुनाई दिया—'वायजीद! मुझे छोड़कर तू दूसरी चीज़ के पीछे क्यों पड़ा है? मन से तुझे क्या सरोकार है?'

९—जो मनुष्य प्रभु के सिवा दूसरी चीज़ों का अनुसरण करता है, उसे विचारहीन ही कहना चाहिए; कारण, मनुष्य अपनी विचार-शक्ति का पूरा उपयोग किये बिना ही अपने आसपास जो-जो अनित्य पदार्थ देखता है उनकी ओर दौड़ता है।

१०—ईश्वर के गुणों का अपने में आरोप करनेवाला योगी अधम है।

११—अंतःकरण में एक भण्डार है, उस भण्डार में एक रत्न है, वह रत्न है—'प्रभु-प्रेम'। इस रत्न को पानेवाला ही ऋषि है।

१२—जो मनुष्य साधनारूपी हथियार से दुनिया की सारी कामनाओं का नाश कर देता है, जिसकी सारी आकांक्षायें एक प्रभु-प्रेम में अदृश्य हो जाती हैं, ईश्वर जिसे चाहता है उसी से जो प्रेम करता है और जिस प्रकार ईश्वर रखना चाहता है, उसी प्रकार जो रहता है, उसी को सच्चा योगी और पुरुषार्थी समझो।

१३—अभिमानपूर्वक की हुई हज़ारों तपश्चर्याओं से पाप के लिए किया हुआ एक गहरा पछतावा भी श्रेष्ठ है।

१४—अंतःकरण में उपजा हुआ ईश्वर-दर्शन का एक कण जितना उत्साह भी स्वर्ग के लाखों मंदिरों के मिठास से अधिक मीठा होता है।

१५—सच्चा ऋषि जब बाहर से चुप होता है, तब वह भीतर ही भीतर ईश्वर से बात करता रहता है, और जब उसके नेत्र मुँदे होते हैं, तब वह ईश्वर की महिमा अथवा उसके स्वरूप को देखता रहता है।

१६—भले ही तुम पैदल चलते रहो, पर मन पर तो सवारी गाँठे ही रहना।

१७—प्रभु के भक्त के पास दुनियावी अपनी कोई चीज़ नहीं होती। त्याग वैराग्य के समान दूसरा कोई साधन नहीं।

१८—ऐसी कौन-सी चीज़ है जिसके छोड़ने से एक बात की ओर

पूरी तरह से झुककर सफलता प्राप्त की जा सके ? एक साथ बहुत से कामों का बोझ उठाना छोड़कर एक ही काम को हाथ में लेना।

१९—ईश्वर को जानकर भी उससे प्रेम न करना असंभव है। जो परिचय प्रेम-शून्य है वह परिचय ही नहीं।

२०—प्रभु का दास जब से दुनियावी परदों से ढकता जाता है, तभी से प्रभु की पूजा और साधना छोड़ता जाता है।

२१—जो ईश्वर को जानता है, वह ईश्वर को छोड़कर और किसी बात की चर्चा ही नहीं करता।

२२—किसी ने एक ऋषि से पूछा—मैं क्या करूँ ? उसने उत्तर दिया—वह प्रभु क्या करता है ?

२३—ईश्वर जिस पर ख़ुश होता है उसे नदी की-सी दानशीलता, सूर्य की सी उदारता और पृथ्वी की-सी सहनशीलता प्रदान करता है।

२४—साधारण श्रेणी के यात्री तो बाहरी मन्दिर की अपने शरीर से फेरी देते हैं और दुनियावी चीज़ों की ख़्वाहिश करते हैं, किन्तु सच्चे प्रभु-प्रेमी तो अपने हृदय से स्वर्ग की फेरी देते हैं और सबके मालिक उस परमेश्वर को पाने की ख़्वाहिश करते हैं।

२५—हज़ारों बार दूध में फिरने पर भी जिस प्रकार कड़छे को उसका स्वाद मालूम नहीं देता, उसी प्रकार बहुत से विद्वान् विद्या के और बहुत से वेषधारी त्याग-वैराग्य के उपकारक तत्त्व से अपरिचित ही रहते हैं।

२६—ये सब वाद-विवाद, शब्दाडंबर और अहमिता और ममता तो परदे के बाहर की बातें हैं। परदे के भीतर तो नीरवता, स्थिरता और शांति व्याप्त है।

२७—सत्कार्यों से सत्संगति अच्छी है; उसी प्रकार कुकर्मों की अपेक्षा कुसंगति बुरी है।

२८—साधना के लिये जो कुछ करना पड़े, सब करना; परन्तु उसमें भी प्रभु-कृपा का प्रताप ही समझना, अपना पुरुषार्थ नहीं।

२९—ऋषि वही है जिसे कोई भी विषय मलिन नहीं कर पाता; बल्कि मलिनता भी जिसे छूकर पवित्र हो जाती है।

३०—पीड़ा की आग तो उसी को सता सकती है जो ईश्वर को नहीं पहचानता। ईश्वर को जाननेवाला तो धधकती हुई आग को भी ठंडी और सुखदायक मान लेता है।

३१—जो ईश्वर के नजदीक आगया उसे किस बात की कमी? सभी पदार्थ और सारी सम्पत्ति उसी की हैं, क्योंकि उसका वह परम-प्रिय सखा सर्वव्यापी और सारी सम्पत्ति का स्वामी है।

३२—जो अपना परिचय ईश्वर-ज्ञानी कहकर देता है, वह मूर्ख है; जो यह कहता है कि मैं उसे नहीं जानता, वही ज्ञानी है।

३३—सारी दुनिया तुझे अपना ऐश्वर्य और स्वामित्व भी सौंप दे तो तू फूल न जाना और सारी दुनिया की ग़रीबी भी तेरे हिस्से में आजाय तो उससे नाराज़ न होना। चाहे जैसी हालत हो, एक उस प्रभु का काम बजाने का ध्यान रखना।

३४—जो मनुष्य लौकिक लालसा के वश में होकर ऋषि मुनियों के हृदयस्थ हरि की आवाज़ की अवगणना करता है, उसे तो ग्लानि का कफन ओढ़कर अपमान की भूमि ही में दफनना पड़ता है, और जो इन्द्रियों और भोगेच्छा को दुर्बल बनाकर लौकिक पदार्थों से दूर रहता है, वह सत्य, सुख-शांति का कफन धारण करके सम्मान की भूमि में—ख़ुद प्रभु की गोद में—दफ़नाया जाता है।

३५—जो मनुष्य दुनियावी इज़्ज़त के लिये मरता है, वह परमात्मा और उसकी मेहरबानी से दूर ही रहता है; परन्तु जो मनुष्य प्रभु को पाने के लिये दुनिया से दूर भागकर दुनियावी इज़्ज़त को तिलाञ्जलि दे देता है वह उसकी समीपता, कृपा, प्रतिष्ठा और अंत में परम-पद पाता है।

३६—या तो जैसे बाहर से दिखाते हो वैसे ही भीतर से बनो, नहीं तो जैसे भीतर हो वैसे ही बाहर से दिखाओ।

३७—प्रभु ही में सब लोगों की स्थिति और गति देख सकने पर ही पक्के पाये पर प्रभु-दर्शन हुए जानना।

३८—धर्म की भूख, बादल के समान है। जहाँ वह बराबर जमी और चातक की-सी आतुरता की गरमी बढ़ी कि तुरंत ईश्वर की कृपा का अमृत बरसने लगा।

३९—जो मनुष्य अपने ही बल पर ईश्वर को पाना चाहता है, वह तो उल्टे मृत्यु के मुँह में जा पहुँचता है।

४०—ईश्वर को जाननेवाले का हृदय निर्मल काँच की हाँडी में जलते हुये दीपक के समान है। उसका प्रकाश सर्वत्र फैलता है। खुद उसे तो फिर अँधेरे का डर ही कैसा ?

४१—अपमान और ईश्वर की आज्ञा को न मानना मनुष्य के लिये मौत के समान होना चाहिये।

४२—प्रभु ने मेरे हृदय को ऊँचा उठा दिया। सारे स्वर्गलोक में घूम-फिर आने पर मैंने अपने हृदय से पूछा—तू क्या ले आया ? वह बोला—प्रभु के प्रति प्रेम और प्रसन्नता।

४३—शरीर के लिये कड़ी-से-कड़ी सज़ा कौनसी ? आलस्य। नरक की अग्नि से भी आलस्य अधिक दुखदायक है।

४४—जिस तपस्या में 'मैं करता हूँ' ऐसा अहंभाव नहीं है, वही सच्ची तपस्या है।

४५—ईश्वर का कहना है कि बहुत से लोग बाहरी वेष से मेरे नज़दीक दिखाई देते हैं, पर अन्दर से वे मुझसे बहुत दूर होते हैं; और ऐसे लोग भी हैं जो बाहर से मुझसे दूर दिखाई देते हैं, पर भीतर से मेरे नज़दीक होते हैं।

४६—एक बार प्रभु ने मुझसे पूछा—बायजीद ! बोल, क्या इच्छा है ? मैंने कहा—प्रभो ! जो इच्छा आपकी है वही मेरी भी हो। उसने कहा—यह तो सहज बात है। जब से मैंने जगत की रचना की है तभी से सब के लिये खुला सदावत है। जो जितना मेरा बनेगा, मैं भी उसका उतना ही बनूँगा।

४७—एक बार प्रभु ने कहा—बहुत से लोग मुझे अपने जैसा ही एक आदमी सोचते हैं, उनका सोचना ठीक है। कारण, यदि मेरा स्थूल और सूक्ष्म जगत में व्याप्त विराटरूप उनके सामने आजाय तो उन्हें ऐसा धक्का लगे कि उनके प्राण ही निकल जायँ। जो सर्वत्र है—सबसे परे, श्रेष्ठ और सुदूर है—जो समुद्र के समान अनादि, अनंत है और जिसकी गंभीरता और गहराई की सीमा नहीं, वैसा अनंत, अमाप मेरा स्वरूप है।

४८—तीन बातें ध्यान देने लायक हैं—(१) जब कभी कोई खराब आदमी से काम पड जाय तो उसके नीच स्वभाव को अपने भले स्वभाव से ढक लेना, इससे स्वयं तुम्हें संतोष होगा—(२) जब कभी कोई तुम्हें दान दे तो पहले कृतज्ञ होना उस प्रभु का, उसके बाद उस उदार हृदय दाता को धन्यवाद देना—(३) जब कभी विपत्ति आ पड़े तो तुरंत विनीत-भाव से उस विपत्ति को सहने के लिये प्रभु से प्रार्थना करना।

४९—इन असंख्य तारों और नभ-मण्डल के सिरजनहार की नज़र तू जहाँ-कहीं होगा वहीं रहेगी, ऐसा विचारकर सदा-सर्वदा सावधान रहना।

५०—बीमारी की हालत में जो नज़दीक रहकर तुम्हारी सेवा करे, पाप बन पडने पर भी जो पश्चात्ताप स्वीकार करे और जिससे तुम्हारी कोई बात छिपी न हो ऐसे सखा—परमेश्वर—के साथ रहो।

५१—किन-किन बातों से ईश्वर की प्राप्ति होती है? गूँगे, बहरे और अन्धेपन से। प्रभु के सिवा न कुछ बोलो, न सुनो और न देखो।

५२—ये सब आडम्बर और अभिमान हैं ईश्वर से दूर और अपने शरीर पर आसक्त होने के कारण।

५३—मनुष्य का सच्चा कर्त्तव्य क्या है? ईश्वर के सिवा किसी दूसरी चीज़ से प्रीति न जोड़ना।

२१—यूसुफ़ हुसेन रयी

तपस्वी यूसुफ़ विविध विद्याओं में निपुण और तपस्वियों मे अग्रगण्य थे। महर्षि अबु तालिब और अबु सैयद के साथ उनकी गहरी दोस्ती थी। वे तपस्वी जुन्नुन मिश्री के शिष्य थे। उन्होंने बड़ी उम्र पाई थी। वे रय देश के वासी थे।

यूसुफ बहुत ही ख़ूबसूरत थे। अरबिस्तान में मुसाफ़िरी करते समय वे एक धनवान् के यहाँ किसी काम से गये। वहाँ किसी अमीर की लड़की भी आई हुई थी। भाग्य-जोग से वह युवती यूसुफ़ की ख़ूबसूरती को देखकर उन पर मुग्ध होगई। मौक़ा पाकर अमीर की लड़की ने अपना इरादा यूसुफ़ को कह सुनाया। सुनते ही वे तो काँपने लगे। तुरन्त वहाँ से भागकर वे मिश्रदेश में पहुँचे। उन दिनों महर्षि जुन्नुन का नाम मशहूर होरहा था। यूसुफ उन्हीं के पास प्रभु के नाम पर दीक्षा लेने गए। बहुत-सा समय बीत गया पर जुन्नुन ने उनसे कोई बात नहीं की। चार वर्ष बीत जाने पर जुन्नुन ने उनसे पूछा—अरे युवक! मेरे पास तू किस मतलब से आया है?

यूसुफ़—उस प्रभु के बड़े नाम के ख़ातिर आप मुझे दीक्षा दें, मेरी यही अर्ज़ है।

यह सुनकर जुन्नुन कुछ भी नहीं बोले। एक दिन ढक्कनदार एक खप्पर यूसुफ के हाथ में देकर उन्होंने उसे नील नदी के उस पार एक अमुक व्यक्ति को दे आने के लिए उन्हें भेजा।

खप्पर लेकर वे चले, पर उस खप्पर में क्या है यह जानने के कौतूहल से उन्होंने उसे रास्ते में खोल लिया। खोलते ही उसमें से एक चूहा कूदकर निकल भागा। अब तो यूसुफ बहुत ही निराश होकर सोचने लगे कि अब उस आदमी के पास जाऊँ अथवा महर्षि के पास लौट जाऊँ? बहुत अधिक सोच-विचार के बाद वे खाली खप्पर लेकर उस आदमी ही के पास गए। उन्हें आया देखकर वह आदमी मुस्करा-कर बोला—यूसुफ! तुमने जुन्नुन से उस महान् प्रभु के नाम पर दीक्षित होने की प्रार्थना की है?

यूसुफ—हाँ।

वह—महर्षि ने तुम्हारी सहनशीलता की परीक्षा लेने के लिए ही खप्पर में रखकर यह चूहा भेजा था। तुम तो एक चूहे को भी नहीं सँभाल सके, प्रभु के महान् नाम को तो सँभाल ही कैसे पाओगे?

बहुत ही शर्मा कर यूसुफ जुन्नुन के पास लौटे। उन्हें देखकर जुन्नुन बोले—कल रात को मैंने प्रभु से सात बार प्रार्थना करके पूछा कि तुम्हें दीक्षा दूँ या नहीं? पर प्रभु ने इजाज़त नहीं दी। तो भी मैंने तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए ऐसा किया था, उसमें भी तुम सफल नहीं हुए। अब तुम अपने देश को लौट जाओ, जब समय आये तब आना।

यूसुफ ने बहुत ही विनीत भाव से कहा—गुरुदेव, बरबस मुझे अपने मुल्क को लौट जाना पड़ता है, पर मेरे कल्याण के लिए मेहरबानी कर मुझे कोई उपदेश तो दें।

महर्षि बोले—मैं तुम्हें तीन उपदेश देता हूँ—उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ। जो कुछ तुमने पढ़ा-लिखा है उसे भूल जाओ; सब कुछ

भूल जाओ और अपने आपको मूर्खों से भी मूर्ख मानो यह उत्तम उपदेश है। ऐसा ही करने से तुम्हारे और ईश्वर के बीच का परदा हटेगा।

ऐसा करने में अपनी असमर्थता बताने पर जुन्नेद ने दूसरा उपदेश दिया—मुझे भूल जा; किसी के आगे भी न मेरा न मेरे इस उपदेश ही का ज़िक्र करना।

वैसा करने में जब यूसुफ़ ने अपनी असमर्थता बताई तो जुन्नेद ने तीसरा उपदेश दिया—लोगों को धर्मोपदेश देना और ईश्वर की ओर लगे रहना।

यह उपदेश सुनकर यूसुफ़ उत्साह के साथ बोले—ईश्वर की मर्जी हुई तो मैं ऐसा कर सकूँगा।

जुन्नुन—पर ख़याल रखना तेरे उपदेशों मे ज़रा भी अहंभाव न आने पाये।

'जो आज्ञा' कहकर यूसुफ़ स्वदेश को लौट गए। वे स्वदेश में आबरूदार थे। उन्हें वापस आया सुनकर लोग उनकी अगवानी के लिए गए; उनका बहुत आदर-सत्कार हुआ।

अब वे उपदेश देने लगे। पर श्रोता एक दो दिन ही उनके उपदेश सुनकर उकता गए; कारण, उनके उपदेश में न तो नवीनता होती और न स्वर्गीय आकर्षण ही। तीन-चार दिन बाद ही बोलने और सुननेवाले वे अकेले ही रह गये। एक दिन उन्होंने मसजिद में उपदेश देने का इरादा ज़ाहिर किया, पर वहाँ भी कोई सुननेवाला नहीं आया। अब क्या करना चाहिये, यह सोचकर वे अस्थिर होगए; परन्तु इतने ही में एक ऐसी अलौकिक घटना घटी जिससे यूसुफ के जीवन में स्वर्गीय प्रकाश प्रकट हुआ जिससे वे परम भक्त बन गए।

इब्राहिम खैयास नाम का एक साधक था। एक रात को उसे आज्ञा सुनाई दी कि जा-यूसुफ के पास जाकर कह-कि तू तो धर्मभ्रष्ट

है। ऐसा करना इब्राहिम के लिए बहुत ही मुश्किल होगया। जो अपने आप को साधु बताता है उसे वह ऐसा क्योंकर कह सकता है? इब्राहिम इस विचार मे कुण्ठित-सा होगया। दूसरी रात को भी उसे वही आज्ञा सुनाई दी, पर वह तो गहरे विचार ही में बैठा रहा। तीसरी रात को भी उसे वही बात सुनाई दी और उसके साथ यह भी सुनाई दिया कि यदि तू यूसुफ को जाकर धर्मभ्रष्ट नही कहेगा तो तेरा भी अहित होगा।

आख़िर उस देववाणी को सुनकर इब्राहिम को उठना पडा। मसजिद के दरवाज़े पर जाकर उसने देखा, यूसुफ वहीं बैठे थे। उसे देखते ही उन्होंने पूछा—तुम कोई शास्त्रीय वचन सुना सकोगे? इब्राहिम ने अपने सपने का वचन कह सुनाया। सुनते ही यूसुफ इब्राहिम के पैरों पर गिरकर आँसू बहाने लगे। बहुत देर के बाद सिर उठाकर वे बोले—इब्राहिम! सवेरे से लेकर शाम तक मेरे पास कुरान का पाठ होता रहता है तो भी मन नहीं पिघलता और एक भी आँसू नहीं गिरता; पर तुम्हारा यह वचन सुनते ही मेरी तो और ही हालत होगई है। लोग मुझे धर्मभ्रष्ट कहते हैं सो बिलकुल वाजिब है।

इस घटना के बाद यूसुफ का जीवन ही बदल गया। वे दीन और विनयी बन गये। अनेक साधकों की संगति में रहकर उन्होंने कठोर साधनायें कीं और उसके फल-स्वरूप वे लोगों के श्रद्धापात्र और परम धार्मिक ऋषि बन गये।

अब्दुल नाम का एक पागल जवान अपने माँ-बाप का कुपुत्र था। वह बदचलन और जुआरी था। वह एक दिन तपस्वी यूसुफ के पास आया। यूसुफ ने उससे कहा—जिस प्रकार एक आदमी दूसरे आदमी को किसी काम से अपने पास बुलाता है, उसी प्रकार ईश्वर पापियों को अपने पास बुलाता है।

अब्दुल यह सुनकर आर्त्तनाद करने लगा। अपने कपड़े फेंककर वह क़ब्रिस्तान की ओर चला गया। वहाँ वह बेहोश होकर पड़ रहा। यूसुफ़ ने सपने में यह वाणी सुनी—'यूसुफ़! उस पछतावा करनेवाले जवान को सँभाल ले।' यूसुफ़ ने क़ब्रिस्तान में जाकर उस जवान के सिर को अपनी गोद में रख लिया और ख़ुद उसके होश में आने की राह देखने लगे। तीन दिन के बाद वह जवान होश में आया।

नेशापुर में एक सौदागर के यहाँ बहुत ही ख़ूबसूरत तुर्की दासी थी। उसका एक क़र्ज़दार दूसरे गाँव में चला गया था। उससे मिलने के लिये सौदागर का बाहर जाना पड़ा। नेशापुर में एक भी ऐसा आदमी नहीं था जिस पर विश्वास करके वह अपनी उस दासी को उसके पास छोड़ जाता। बहुत सोचने के बाद उसे तपस्वी अबु उस्मान ख़ैरी का ध्यान आया। दासी को कुछ दिन के लिये अपने पास रखने के लिये उसने उनसे विनती की। पहले तो उन्होंने मंजूर नहीं किया, पर बहुत आग्रह करने पर उस्मान ने उसका कहना मान लिया। वह दासी उस्मान के यहाँ आकर रहने लगी। दैवयोग से एक दिन उस्मान की नज़र उस दासी पर पड़ी। उसकी उस निहायत ख़ूबसूरती को देखकर वे मोहित होगये। उनका चित्त डाँवाडोल होगया। अनेक उपाय करने पर भी वह स्थिर न हुआ। धर्माचार्य अबु हाफ़िज़ के पास जाकर उन्होंने अपने दिल की हालत कह सुनाई। हाफ़िज़ ने उन्हें महर्षि यूसुफ़ के पास जाने की सलाह दी। ढूँढते-ढूँढते वे यूसुफ के शहर में पहुँचे। लोगों ने उन्हें देखकर कहा—आप निर्मल चरित्रवाले हैं, सूफ़ी हैं, फ़क़ीरी वेश में है। बड़े अचरज की बात है, आप यूसुफ़ के पास जाना चाहते हैं। उस अधर्मी और बदचलन से आपको क्या सरोकार है? उससे मेलजोल करने से तो बेइज़्ज़ती ही होगी। सोच समझकर आप वापस लौट जायँ।

ऐसा सुनकर अबु उस्मान खिन्न होकर नेशापुर लौट आये। लोगों के अपवाद से डरकर उन्हें वापस आया देखकर अबु हाफिज़ ने उन्हें कह सुनकर फिर यूसुफ के पास भेजा। अबकी बार उन्होंने लोगों से यूसुफ की पहले से भी ज़्यादा निंदा सुनी, तो भी उन्होंने लोगों से कहा—मुझे उनसे बहुत ज़रूरी काम है, उनका घर बताने की मेहरबानी करो।

लोगों के घर बता देने पर वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा झोपडी के दरवाज़े में एक तेजस्वी वृद्ध पुरुष बैठा है और उसके पास बोतल और प्याला पड़ा है। अबु उस्मान ने जाकर सलाम की। यूसुफ़ ने उनसे बहुत अच्छी-अच्छी बातें कीं। उनकी विवेक-पूर्ण बातें सुनकर उस्मान ने चकित होकर पूछा—आप की कांति इतनी तेज़ है, आप की ज़बान में इतनी मिठास और उपदेश भरा है फिर भी आप का आचरण ऐसा क्यों है?

यूसुफ बोले—मेरे पास पानी के लिये कोई बर्तन नहीं है, इसलिये इस बोतल को साफ करके उसमें साफ पानी भर लिया है। कोई प्यासा चला आये तो उसके लिये यह प्याला रख छोड़ा है।

उस्मान—आप ऐसा क्यों करते हैं? लोग व्यर्थ आप पर भाँति-भाँति के आक्षेप लगाते हैं, आपकी निंदा करते हैं।

यूसुफ़—मेरी निंदा हो, इसी के लिये तो मैं ऐसा करता हूँ। अगर मैं बदचलन और निंदित मशहूर हो जाऊँ तो फिर कोई सौदागर अपनी ख़ूबसूरत दासी को क्यों मेरे पास रख जायगा? यह कितने फायदे की बात होगी?

यह सुनकर उस्मान यूसुफ़ के पैरों पर गिरकर रोने लगे।

जागरण के कारण यूसुफ हुसेन रयी की आँखें सदा सुर्ख़ रहतीं। शरीर दुर्बल होगया था। किसी ने उनकी बहन से उनके तप के बारे

में पूछा तो वे बोलीं—यूसुफ़ रात की नमाज़ खतम करके सुबह होने तक स्थिर होकर आसन पर खड़े रहते हैं।

ऐसा करने का कारण पूछने पर यूसुफ़ ने बतलाया था—रात को नमाज़ पढ़ने के लिये खड़ा होता हूँ तो ईश्वर की महिमा के अनेक गूढ़ तत्त्व अंतःकरण में स्फुरित होने लगते हैं, जिनके कारण मैं नीचे बैठना ही भूल जाता हूँ और खड़े-खड़े ही रात बीत जाती है।

मरते समय यूसुफ़ ने कहा था—हे परमेश्वर! मैंने अपना कर्त्तव्य लोगों के प्रति वाणी द्वारा और तेरे प्रति कार्य के द्वारा बजाया है। मेरे अपराधों को क्षमा करना।

उपदेश-वचन

१—जो यह जानते हैं कि ईश्वर हमारा हरएक काम देखता है, वे ही बुरा काम करने से डर सकते हैं।

२—जो गंभीरता-पूर्वक ईश्वर का स्मरण चिंतन करते हैं, वे ही दूसरी सब चीज़ों को भूल सकते हैं।

३—ईश्वर के भजन-पूजन में जो दुनिया की सारी चीज़ों को भूल जाते हैं, उन्हें सब चीज़ों में ईश्वर ही ईश्वर दिखाई देने लगता है।

४—जो ईश्वर का प्रेम करते हैं, उन्हें लोगों की ओर से तो क्लेश और अपमान ही मिलता है; किन्तु ख़ुदा के बंदे भी ऐसे होते हैं कि वे उसके बदले में लोगों की ओर दया ही दिखाते हैं।

५—सभी हालतों में प्रभु और प्रभु-भक्तों का दास होकर रहना ही अनन्य और एक निष्ठ भक्ति करना है।

६—अपने प्यारे के श्रवण, मनन, कीर्त्तन आदि में जो बाधायें हों उन्हें दूर करना सच्चे प्रभु-प्रेम का चिह्न है।

७—भीतर से प्रभु की गाढ भक्ति करनी, किन्तु बाहर उसे प्रसिद्ध न होने देना साधुता का मुख्य चिह्न है।

८—ईश्वर की उपासना में मनुष्य ज्यों-ज्यों डूबता जाता है, त्यों-त्यों प्रभु-दर्शन के लिये उसकी आतुरता बढ़ती जाती है; यदि एक पल के लिये भी उसे साक्षात्कार हो जाता है तो वह उस स्थिति की अधिकाधिक इच्छा में लीन हो जाता है।

९—विशुद्ध प्रभु-प्रेम जगत् में एक दुर्लभ पदार्थ है। मन में से कपट बुद्धि को दूर करने का जब मैंने प्रबल प्रयत्न किया, तब उस प्रभु ने अनेक सद्गुणों के रूप में आकर मेरे हृदय पर अधिकार कर लिया।

१०—लोभी मनुष्य सबसे नीच और निर्लोभी साधु सबसे उच्च है।

११—जो चिंतन करके ईश्वर को पाता है, वही उसकी मानसिक पूजा कर सकता है।

२२—अलहुसेन नूरी बग़दादी

तपस्वी अलहुसेन नूरी प्रभु-प्रेम में मस्त, तेजस्वी, तत्त्वज्ञानी थे। उन्होंने बहुत ही कठोर व्रत और साधनायें की थीं, जिससे लोग उन्हें 'कमरए सूफ़िया' (पवित्रात्माओं का चाँद) कहा करते थे। वे जैसे पवित्र चरित्र के थे, वैसे ही परम ज्ञानी भी थे। सर्रीशक्ति से उन्होंने धर्म की दीक्षा ली थी। महात्मा जुन्नेद से उनका गहरा संबंध था। उनकी धर्म-प्रणाली महात्मा जुन्नेद की धर्म-प्रणाली से मिलती-जुलती थी। तपस्वी अहमद यारी की संगति का भी उन्होंने लाभ उठाया था।

वे 'नूरी' क्यों कहलाए? कहा जाता है कि जब वे रात के समय उपदेश करते तो उनके चेहरे के चारोंओर नूर—ज्योति का एक गोल चक्र-सा दिखाई देता और उसके प्रकाश से झोपड़ी चमक उठती। एक दूसरा कहना यह भी है कि अलहुसेन की धर्म-चर्चा में आध्यात्मिक गूढ़-तत्त्व प्रकट होते थे, इसलिए उन्हें नूरी का ख़िताब दिया गया था।

अबु अहमद गाज़ी ने कहा है कि नूरी के समान कठोर तपस्या करते हुए उन्होंने किसी को नहीं देखा। महर्षि जुन्नेद का तप भी उनके तप के आगे फीका-सा मालूम देता था।

शुरुआत में वे दूकान जाने का नाम लेकर घर से बाहर निकल पड़ते और बाज़ार मे से रोटियाँ खरीदकर ग़रीबों को बाँट देते। फिर मसजिद में जाकर नमाज़ पढ़ते और तब दूकान जाते। उनके घरवाले समझते कि हुसेन दूकान पर नाश्ता करते हैं। इस प्रकार बीस वर्ष बीत गये, वे कहाँ और क्या खाते हैं यह कोई नहीं जान पाया।

नूरी ने स्वयं कहा है—मैंने बहुत वर्षों तक तपस्या की; लोगों की संगति से परे मैं बहुत वर्षों तक एकांत में रहा। मैंने कई तरह की साधनायें कीं, तो भी मेरा धर्म-मार्ग साफ़ नहीं हुआ। इसलिए मैंने संकल्प किया कि मेरा शरीर भले ही गिर जाय, पर कार्य-सिद्धि ज़रूर करूँगा। मैंने अपने शरीर को सम्बोधित करके कहा—ऐ शरीर! तूने बहुत वर्षों तक मनमाना खाना-पीना और देखना-सुनना किया है। तूने अपनी मरज़ी के मुआफ़िक सोना-जागना, आना-जाना किया है; ईश्वर को हरएक तरह से भोग किया है। इन सबका दण्ड देने के लिए मैं तुझे कुयें में लटकाना चाहता हूँ। अब तू ईश्वर की इन बेशक़ीमती देनों का मरज़ी के मुआफ़िक उपभोग नहीं कर पायेगा। अब तुझे ईश्वर की मरज़ी के मुआफ़िक़ करना होगा। उसीके प्रमाण से चलकर तू सुखी हो सकेगा।

"इस प्रकार मैंने चालीस वर्ष तक साधना की, तो भी ज़िंदगी में कोई खास फ़ायदा नहीं दिखाई दिया। मैंने विचार कर देखा इसमें किसका क़ुसूर था? हज़रत पैग़म्बर साहब और दूसरे औलिया जो कुछ कह गये हैं वह तो झूठा होना सम्भव नहीं। फिर मुझे प्रभु का साक्षात्कार क्यों नहीं हुआ? ज़रूर इसमें मेरा ही क़ुसूर था।"

'इस तरह सोचकर मैंने अपने क़ुसूरों की खोज की तो मालूम

दिया कि जब मैं सांसारिक कामों में लगता हूँ तो उसी में तल्लीन हो जाता हूँ और उपासना के समय किये हुये विचारों को भूल जाता हूँ। ऐसा होने से मेरा आचरण पवित्र नहीं रहता और वैसा हलका जीवन धर्म साधना को आगे नहीं बढ़ने देता। धीरे-धीरे धार्मिक जीवन बढ़ाकर मैंने उस पशु जीवन पर विजय पाई।"

अलहुसेन नूरी ईश्वर की महिमा गाते-गाते अपने साथियों के साथ नाचते-कूदने और प्रभु-प्रेम में मस्त बन जाते, जिससे जन-साधारण उनके विरोधी और निन्दक बन गये।

गुलाम ख़लील नाम के एक आदमी ने ख़लीफा के पास जाकर अर्ज़ की—हमारे गाँव में एक ऐसी टोली है जिसके लोग धर्म के नाम पर नाचते-कूदते और धर्म के नाम से लोगों को भ्रम में डालते हैं और एकांत में बातें करते हैं। वह क़ाफिरों की टोली है। आप सरीखे धर्म के प्रेमी अगर उनका वध करेंगे तो प्रभु बहुत ख़ुश होगा'

यह सुनकर ख़लीफा ने नूरी और उनके साथियों को पकड़ बुलाया। उनकी मण्डली में महात्मा अबु हमज़ा, रक्काम, शबली, जुनैद आदि धर्म-प्रेमी भी थे। ख़लीफा ने बिना पूछताछ किये सब के सिर काट डालने का हुक्म दे दिया। जल्लाद ने सबसे पहले अपना हाथ रक्काम पर उठाया। यह देखकर हुसेन नूरी दौड़कर हँसते-हँसते उनकी जगह जा खड़े हुये। ख़लीफा के आदमी यह देखकर अचरज करने लगे और बोले—अरे मूर्ख! तलवार कोई खाने की मिठाई नहीं है, गर्दन पर पड़ते ही यह उसे धड़ से जुदा कर देगी। अभी तेरी बारी नहीं आई, बारी आने पर अपनी गर्दन झुकाना।

नूरी—दूसरों के लिये अपना स्वार्थ छोड़ना मेरा धर्म है। ज़िन्दगी से प्यारा चीज़ इस दुनिया में और क्या है? तो भी मेरी मन्शा है कि अपनी ज़िन्दगी की ये बची-खुची थोड़ी-सी घड़ियाँ अपने धर्म-बन्धुओं के

काम में लगा दूँ। मैं अपना गला पहले कटाऊँगा तो मेरे धर्म-बन्धुओं की ज़िन्दगी के कुछ पल बढ़ ही जायंगे।'

नूरी का प्रेम से भरा हुआ ऐसा अलौकिक उदार-भाव देखकर ख़लीफ़ा चकित हो गया। वह बोला—जल्लाद ! ठहर, क़ाजी की राय लेने के बाद इन्हें दण्ड दूँगा।

क़ाजी की राय ली गई। उसने सुन रखा था कि जुनैद बड़े पण्डित हैं, नूरी भी बड़े भक्त हैं। काजी ने उन सबसे धर्म-शास्त्र की बहुत सी बातें पूछीं। पहले सवाल के जवाब ही में शबलीने बड़ी सुन्दर बात कही; दूसरे सवाल का नूरी से तत्काल जवाब पाकर तो क़ाजी खूब शर्मिंदा हुआ। नूरी ने यह भी कहा—क़ाजी ! आप ये बाहरी बातें क्यों पूछ रहे हैं ? ज्ञान की तो कोई बात पूछते ही नहीं ? आप जान लें कि ये सब ईश्वर-प्रेमी हैं, ईश्वर ही में इनका निवास है, उसी में इनकी गति, स्थिति और ज़िन्दगी है। ईश्वर ही के द्वारा वे बोलते और चुप रहते हैं। यदि वे एक पल के लिये भी ईश्वर से अलग किये जायँगे तो जीते नहीं रह सकेंगे। इनका बैठना, उठना, सोना सभी ईश्वर के साथ है। आपने जो प्रश्न पूछे हैं, वे पुस्तक के अभ्यास के हैं, अनुभव से तो उनका कोई ताल्लुक़ ही नहीं।

नूरी की यह बात सुनकर क़ाजी ने ख़लीफ़ा से कहा—हुज़ूर ! यदि इन लोगों को धर्म-द्रोही और ख़राब रास्ते पर चलनेवाला माना जायगा तो मैं कहता हूँ ईश्वर को माननेवाला एक भी आदमी इस दुनिया में नहीं।

ख़लीफ़ा ने उन सब को बन्धन-मुक्त करके उनका आदर-सम्मान किया और कहा—आपको कुछ कहना हो तो ख़ुशी से कहें। वे बोले—हमारा तो इतना ही कहना है कि आप हमें भूल जायँ। हमें पकड़कर इस दुनिया में मशहूर न करें। हम सब स्तुति-निन्दा से परे रहना ही पसंद करते हैं। जिन बातों को आप ग्राह्य समझते हैं,

उन्हें हम अग्राह्य समझते हैं और आप जिन्हें अग्राह्य समझते हैं, उन्हें हम लोग ग्राह्य समझते हैं। उनके वचन सुनकर ख़लीफ़ा की आँखें भर आईं। वह अपने किए पर पछताने लगा। बहुत इज़्ज़त के साथ उसने उन सबको विदा किया।

एक दिन नूरी मसजिद में नमाज़ पढ़ने के लिए गए हुए थे। वहाँ एक जवान मूँछों पर ताव दे रहा था। उसे देखकर वे बोले—भाई! अब प्रभु की दाढ़ी में हाथ न लगाना।

यह बात खलीफ़ा के कानों तक भी पहुँची। मुल्लाओं को बुलाकर, उनकी राय से ख़लीफ़ा ने निश्चय किया कि नूरी ने ऐसा कहकर काफिरी दिखाई है, उसे इसकी सज़ा दी जाना चाहिए।

नूरी फिर पकड़ बुलाए गए और उनसे उस बात का खुलासा पूछा गया। उस पर नूरी ने पूछा—मैं आप से पूछता हूँ मनुष्य किसका ग़ुलाम है?

ख़लीफ़ा—ईश्वर का।

'ईश्वर के ग़ुलाम का शरीर किसका?'

'उसके मालिक ईश्वर का।'

'और उस शरीर की दाढ़ी-मोंछ किसकी?'

'ईश्वर की।'

'तो फिर अपनी उस बात में मैंने कौन-सी अनुचित बात कही?'

'अहो! उस ख़ुदा का शुक्र है, आपने मुझे बेक़सूर को सज़ा देने से बचा लिया' सोच समझकर ख़लीफ़ा ने उत्तर दिया।

नूरी ने कहा है कि चालीस वर्ष तक उनके मन और पशु-वृत्तियों के बीच लड़ाई चलती रही। जबतक मन और पशु-वृत्तियों का मेल नहीं टूटा था, उनके हृदय में ईश्वर-भाव का उदय नहीं हुआ था। ईश्वर-तत्त्व का लाभ होने ही पर ऊँची भावनाओं का उदय हुआ।

अन्तर में उज्वल ज्योति का दर्शन करके उसकी ओर दृष्टि स्थापित करके वे समय बिताने लगे। उसी से धीरे-धीरे वे ज्योतिष्मान बने।

एक दिन महर्षि जुन्नेद नूरी के पास आए। उन्हें देखते ही नूरी आर्त्तनाद करके धरती पर गिर पड़े और बोले—महात्मन्! मेरे अंतर में घोर संग्राम छिड़ा हुआ है और मैं बहुत ही कमज़ोर होगया हूँ। जब मेरे हृदय में उस प्रभु का प्रकाश फैलता-सा मालूम देता है, तो मैं अपने आपको भूल जाता हूँ और जब मैं अपने आपको याद करता हूँ—मेरा देहाभिमान जागता है—तो प्रभु की वह रोशनी गायब होजाती है। तीस बरस से यही लड़ाई छिड़ी हुई है। जब-जब मैं आर्त्तनाद करता हूँ तो वह कहता है—'चाहे तू रह, या मैं रहूँ।' उनकी बातें सुनकर महात्मा जुन्नेद ने अपने शिष्यों से कहा—बंधुओ! प्रभु की परीक्षा में पार उतरे हुए और प्रभु ही में लवलीन हुए इस प्रेमी महात्मा के दर्शन करो। नूरी से उन्होंने कहा—नूरी! प्रकट अथवा गुप्त रहने से भी तुम न रहो, उस प्रभु ही को रहने दो। प्रभु में तल्लीन होकर उसी में मिलकर एक हो जाओ।

एक बार लोगों ने महर्षि जुन्नेद को ख़बर दी कि नूरी तीन दिन से एक पत्थर पर बेहोश पड़े हैं। उनके मुँह से ज़ोर-ज़ोर से 'अल्लाह, अल्लाह' की आवाज़ निकल रही है। वे न खाते हैं, न पीते हैं, केवल नमाज़ के समय उठकर नमाज़ पढ़ लेते हैं। जुन्नेद के साथियों ने बतलाया कि वे बेहोश नहीं हैं। नमाज़ का वक्त टलने नहीं देते इसी से मालूम होता है कि वे होश में हैं। बेहोश को तो किसी बात का ज्ञान ही नहीं रहता।

जुन्नेद बोले—तुम भूल करते हो, जो ईश्वरीय भाव देह का—दुनिया का—मान भूल जाते हैं, उनके उच्च आचरणों की रक्षा स्वयं प्रभु करता है। अपनी सेवा के कार्य से प्रभु उन्हें वंचित नहीं होने देता।

नूरी के पास आकर जुन्नेद ने उनसे कहा—अलहुसेन ! पुकार-पुकार कर खुदा का नाम लेने से फ़ायदा होता तो मैं भी वैसा ही करता। संतुष्ट रहना चाहते हो तो मौन रहो, उससे तुम्हारा हृदय और भी ज्यादा खुलेगा। यह सुनकर नूरी चुप होगए और बोले—आप मेरे सच्चे गुरू हैं।

एक जवान इस्पहान शहर से नंगे पाँव महात्मा नूरी के दर्शन करने के लिए निकला। नूरी का गाँव नज़दीक आया तो उन्होंने अपने एक शिष्य से कहा कि आज एक साधक इस्पहान से नंगे पाँव आनेवाला है, जाकर उसका रास्ता साफ़ करो। उस जवान के आने पर नूरी ने उससे पूछा—इस्पहान का राजा बहुत-सा धन ख़र्च करके तुम्हारे लिए एक महल बनवा दे, उसमें भाँति-भाँति की सुखदायक सामग्री रखवा दे और अपनी ख़ूबसूरत बेटी से तुम्हारी शादी भी कर दे तो क्या तुम वहाँ जाकर रहना पसंद करोगे ?

दर असल में उस जवान के सामने यही सवाल था। इस्पहान का राजा उसे बहुत-सा धन-दौलत और महल देकर अपनी बेटी व्याहना चाहता था, पर वह जवान उसे मंजूर न करके नूरी के दर्शन करने के लिए चला आया था।

अपनी ही हक़ीक़त उनके मुँह से सुनकर वह बोल उठा—महात्मन् ! उस बात की याद दिलाकर आप मेरा वध न करें।

नूरी बोले—भाई ! जो साधक हज़ारों भुवनों की दौलत से भी लुभाये नहीं लुभा, वही ईश्वर के बारे की बात करने के लायक़ है।

नूरी ने कहा है—एक दिन मैंने यह प्रार्थना की—'हे प्रभो ! मुझे ऐसा गुण और भाव दो जिनमें फिर कभी फेरफार न हो।' इतने ही में मुझे सुनाई दिया—'अलहुसेन ! क्या तू मेरी बराबरी करना चाहता है ? परिवर्त्तन-रहित तो एक मैं ही हूँ। अपने दासों को तो मैंने

ही परिवर्त्तनशील बनाया है। इसलिए देह के नाते तो तेरे और मेरे बीच यह भेद बना ही रहेगा।

शबली ने कहा है--एक बार मैं महर्षि नूरी के पास गया तो मैंने देखा कि वे गहरे ध्यान में मग्न थे। ध्यान में से जाग्रत होने पर मैंने उनसे पूछा कि आपने ऐसा उत्तम ध्यान किससे सीखा। उन्होंने उत्तर दिया—बिलाव से। एक दिन एक बिलाव मेरी झोपड़ी में आकर चूहे के बिल के पास बैठ गया। उस समय वह मुझसे भी अधिक स्थिर और एकाग्रचित्त था। उसीसे मैंने ऐसा ध्यान करना सीखा है।

कादसिया शहर के रहनेवालों ने एक दिन सुना कि पास के जङ्गल में एक फ़क़ीर आए हैं। जङ्गल में हिंसक पशुओं के होते हुए भी वे उनसे नहीं डरते हैं। बहुत-से लोग उनके दर्शन करने के लिए गए। वहाँ जाकर उन्होंने महात्मा नूरी को एक गड्ढे के सामने बैठे देखा। शहर के लोग आग्रह करके उन्हें शहर में ले आये। जङ्गल में रहने का जब उनसे कारण पूछा गया तो उन्होंने बतलाया—बहुत दिनों से मैं जङ्गल में रहता था। वहाँ मुझे खाने को कुछ भी नहीं मिलता था, इसलिए मैं शहर के पास रहने लगा। वहाँ मेरी नज़र खजूर के पेड़ों पर पड़ी। खजूर खाने के लिए मेरा मन ललचाया। मीठी चीज़ें खाने को मन के इस लोभ को देखकर मैंने निश्चय किया कि अब ऐसे जङ्गल में जाकर रहूँगा जहाँ मैं स्वयं हिंसक पशुओं का ग्रास बन जाऊँगा।

एक बार बग़दाद के बाज़ार में आग लगी। बहुत-से लोग जल मरे। जलती हुई दूकानों में से लोग मदद के लिए चिल्ला-चिल्लाकर पुकार रहे थे। एक दूकान में दो बहुत ही ख़ूबसूरत कम उम्र के रोम के रहनेवाले नौकरों को आग ने घेर लिया। उनका मालिक कह रहा था कि जो उन दोनों को बचायेगा उसे मैं हज़ार-हज़ार मोहरें दूँगा; पर आग इतनी भयंकर थी कि किसी की हिम्मत नहीं पड़ी। अपनी जान को जोखिम में डालकर कौन आग में कूदता? पर भागजोग से वहीं

समय वहाँ नूरी आ पहुँचे। यह दृश्य देखकर, 'बिस्मिल्लाह अर्रहमान अर्रहीम' बोलकर वे आग में जा घुसे और उन दोनों को सकुशल बाहर ले आये। उस सौदागर ने तुरंत दो हज़ार मोहरें उनकी भेंट की, पर वे बोले—इन मोहरों को लौटा ले जाओ। उस ईश्वर का आभार मानो। अपना परलोक सुधारने के लिए मैंने इस दुनिया के सुखों को छोड़ दिया है। तुम्हारी दौलत को लेकर मैं क्या करूँगा?

नूरी ने एक दिन एक बूढ़े को बेंत की मार खाते हुए देखा। उसने चोरी की थी और उसी की वह सज़ा पा रहा था। सिपाही उसे बेंतों से पीट रहे थे। चोर का शरीर बहुत ही कमज़ोर हो रहा था, तो भी वह मार खाकर चूँ भी नहीं कर रहा था। बहुत ही धीरज से वह सज़ा भोग रहा था। यह देखकर वे उसके पास गए। उन्होंने पूछा—अरे बूढ़े! तेरा शरीर इतना कमज़ोर है फिर भी तू इतनी सख़्त मार कैसे सह रहा है?

बूढ़ा बोला—भाई! विपत्ति सही जाती है धीरज से, शरीर से नहीं।

उन्होंने पूछा—तुम्हारा वह धीरज कैसा है?

बूढ़ा—विपत्ति को सिर पर देखकर भी मैं अपने आप को विपत्ति से मुक्त मानता हूँ।

एक बार एक अंधा 'हे प्रभो! हे प्रभो!' बोल रहा था। नूरी ने उसके पास जाकर पूछा—क्या तू उस प्रभु को जानता है? अगर जानता है तो फिर जी कैसे रहा है? इतना कहते-कहते वे भावावेश में बेहोश होगए। होश में आने पर वे जङ्गल की ओर दौड़ पड़े। बाँस के जङ्गल में पहुँचकर वे इतने नीचे कूदे कि उनके पाँवों में घाव पड़ गए, तो भी प्रभु-प्रेम की मस्ती के कारण अलहुसेन नूरी को इतना ज्ञान ही नहीं रहा। कहा जाता है कि उनके पैरों में से गिरी हुई रक्त

की बूँदों से अपने आप धरती पर 'अल्लाह' लिखा जाता था। अत्तुनसर्री ने कहा है कि बाँस के जङ्गल में से वे बेहोशी की हालत में ही घर लाए गए। लोगों ने उनसे 'ला इलाहा इल्लिल्ला' कहने का आग्रह किया तो वे बोले—मैं तो उसी के पास जा रहा हूँ। इतना कहकर उन्होंने देह-त्याग कर दिया। महर्षि जुन्नेद ने कहा है कि नूरी के समान सत्यवक्ता कोई हुआ ही नहीं।

उपदेश-वचन

१—जो मन की मलिनता से रहित, दुनिया के जञ्जाल से मुक्त और लौकिक तृष्णा से विमुख है, वही सच्चा सूफ़ी है।

२—सूफ़ी ईश्वरपरायणता की ऊँची अवस्था में अपार सुख शांति भोगते हैं। वे संसार से दूर भागे हुए होते हैं। वे न किसी चीज़ के मालिक और न किसी चीज़ के ग़ुलाम ही होते हैं।

३—जो दुनिया की किसी चीज़ पर अपना बंधन नहीं रखते और न ख़ुद किसी बंधन में बँधते हैं, वे ही सूफ़ी हैं।

४—सच्चे सूफ़ी का धर्म बाहरी आचार और पंडिताई दिखाने में नहीं है, उनका धर्म है पवित्र चरित्र होकर ईश्वर का अनुसरण करना, जो बाहरी दिखावे और ज्ञान की बातें रट लेने ही से नहीं मिल जाता।

५—मुक्त रहना, वीर बनना और बाहरी सुख वैभव से अलग रहना, ईश्वर को पाने के लिए पशु-वृत्तियों की ग़ुलामी छोड़ देना सच्चे सूफ़ी का स्वभाव है। इस उत्तम स्वभाव से दुनिया की दोस्ती को छोड़कर ईश्वर से स्नेह जोड़ने की उसमें ताक़त आती है।

२३—हुसेन मन्सूर

तपस्वी हुसेन मन्सूर को ईश्वर का मार्ग अनुसरण करने के कारण अनेक तकलीफ़ें सहनी पड़ी थीं; पर उन सबों का उन्होंने बड़ी दृढ़ता से सामना किया था। उन तकलीफ़ों को सहने ही में उन्होंने प्राण भी दे दिये थे। उनके जीवन की घटनायें बड़ी अनोखी हैं और उनके काम भी बहुत विचित्र हुआ करते थे। वे एक भक्त और मस्त आदमी थे। वे प्रभु की जुदाई से सदा व्याकुल बने रहते। सभी उन्हें पागल कहा करते, किन्तु वास्तव में वे थे सच्चे प्रभु-भक्त। अपने जीवन में उन्होंने कठोर तप और साधनायें की थीं। वे पूरे वैरागी, उत्तम वक्ता और तत्व-वेत्ता थे। उन्होंने कई ग्रंथों का रचना की थी। भाषा पर उनका जितना अधिकार था, उतना किसी और पर न था। वे अगाध पंडित थे।

उनका सारा जीवन दुःख और तकलीफ़ों से भरा था। अचरज की बात तो यह है कि उस समय के धर्म-परायण लोग भी मन्सूर की निन्दा किया करते थे। कोई इने-गिने आदमी ही उनको समझ सके थे। अब्दुल्ला खलिफ़ सब्ली और अब्दुल क़ासिम नसराबादी मन्सूर की बहुत इज़्ज़त करते थे; पर दूसरे तो अनेकों उन्हें खुल्लेआम काफ़िर और जादूगर कहते। लोगों ने तरह-तरह के दोष उनके मत्थे मँढ़ रखे थे। उनके उपदेश-वचनों के मर्मों को न समझने के कारण उन पर हथियार से वार किया गया था और अंत में बहुत-सी तकलीफ़ें देकर उनकी हत्या कर दी गई थी। उनका सदा का महामन्त्र था 'अनलहक'† और वही उनकी हत्या का कारण हुआ।

उनके जन्म-स्थान के सम्बन्ध में मूल-ग्रंथ में कोई उल्लेख नहीं है, पर अनुमान होता है कि वे बग़दाद के रहनेवाले थे। पहले वे तस्तर में

† 'अहं ब्रह्मास्मि'

अब्दुल्ला तस्वीर के साथ दो वर्ष तक रहे। पहली विदेश-यात्रा उन्होंने सोलह वर्ष की उम्र में की थी। तस्तर से वे बसरा आए और वहाँ से अन्यत्र चले-गये। मक्का-निवासी हज़रत उस्मान के पुत्र उम्मर से उनकी दोस्ती हुई। डेढ़ वर्ष तक वे उम्मर के साथ रहे। अबु इयाकुबोल ने अपनी वेटी की उनसे शादी की। उम्मर की संगति से उनका मन सुमार्ग में लगा और तब वे महर्षि जुन्नेद के पास बग़दाद चले गये। मन्सूर ने जुन्नेद के साथ थोड़ा समय जंगल के एकान्त में बिताया। बाद में मक्का आकर उन्होंने वहाँ के सूफ़ियों के साथ ज्ञान का विनिमय किया। आख़िर बहुत से सूफ़ियों के साथ फिर बग़दाद आकर उन्होंने महर्षि जुन्नेद से बहुत से सवाल पूछे, जिनके जवाब में उन्होंने कहा—'मन्सूर ! तुझे जल्दी ही सूली पर चढ़ना होगा।' इस पर हुसेन मन्सूर ने कहा—जिस दिन ऐसा होगा उस दिन आपको भी फ़क़ीरी बाना छोड़कर दुनियावी आदमियों के-से कपड़े पहनने होंगे। जुन्नेद ने इसका कोई जवाब नहीं दिया।

बहुत-से अगुवा लोगों ने मिलकर ख़लीफ़ा को अर्ज़ी भेजी कि हुसेन मन्सूर को प्राण-दण्ड दिया जाना चाहिये। खलीफ़ा ने इस बारे में महर्षि जुन्नेद की राय माँगी। जुन्नेद अपनी कुटिया छोड़कर विद्यालय में गये। पाण्डित्य के कपड़े पहनकर उन्होंने खलीफ़ा को लिखा—'बाहरी नज़र से तो मन्सूर को मौत की सज़ा देनी ज़रूरी मालूम देती है, भीतर का हाल तो वह प्रभु जाने।'

हुसेन मंसूर अपनी बात का जवाब महर्षि जुन्नेद से न पाकर, निराश होकर, उनकी आज्ञा लिये बिना ही अपनी स्त्री के साथ तस्तर चले गये। वहाँ वे एक वर्ष रहे। लोगों के मन पर उनके चरित्र का बहुत असर पड़ा। अपनी चर्चा में महात्मा मन्सूर दुनिया और दुनियावी लोगों को ऊँचा न बताकर नीचा बताते, जिससे थोड़े समय में लोगों की उनके प्रति अरुचि-सी होगई। झूठी इज़्ज़त के भूखे लोग उनसे द्वेष

करने लगे। उस्मान के पुत्र उम्मर ने भी मन्सूर के खिलाफ़ ख़त लिखे, जिससे ख़ुरासानवालों की नज़र में भी मन्सूर गिरने लगे। दुनियावी लोगों से मन्सूर को वैराग तो था ही, ऐसी बातों से वह वैराग और भी दृढ होगया। अब उन्होंने फ़क़ीरी बाना छोड़कर साधारण आदमियों के-से कपड़े पहन लिये। उन्हीं के मुताबिक़ उन्होंने अपना रहन-सहन भी कर लिया। अपने सच्चे रूप को छिपाकर वे एक दुनियावी की भाँति रहने लगे।

ख़ुरासान, मदरएणहर, निमरोज और किर्माण में रहकर मंसूर ने पाँच वर्ष एक प्रकार से फ़ज़ूल बिता दिए। उसके बाद ईरान जाकर उन्होंने कई अच्छे-अच्छे ग्रन्थों की रचना की। आह्वाज के रहनेवालों को उपदेश देने का काम हाथ में लेकर उन्होंने फिर फ़क़ीरी वेश धारण कर लिया। बहुत-से फ़क़ीरों के साथ वे वहाँ से मक्का गए। मक्का में याक़ूब नहर नाम के एक आदमी ने मंसूर को जादूगर मशहूर करके उनकी निंदा करना शुरू कर दिया।

मक्का से वे बसरा गए। वहाँ एक वर्ष रहकर वे आह्वाज लौट आये। अब उनका ध्यान दूसरे मुल्कों में जाकर लोगों को उपदेश देने की ओर आकर्षित हुआ। वे हिन्दुस्तान भी आये। और भी दूसरे मुल्कों में उन्होंने भ्रमण किया। भ्रमण से लौटकर वे दो वर्ष तक फिर मक्का में रहे। अब उनके उपदेशों में ऐसी बातें हुआ करती थीं जिनके असली मतलब को न समझ सकने के कारण लोग उन्हें ग्रहण नहीं कर पाते थे। उनके ऐसे उपदेशों के कारण उनका बहुत-से शहरों में अपमान हुआ। वे मारपीट कर बाहर निकाल दिए गए।

एक बार उनके साथ मक्का की यात्रा में चार हज़ार का काफ़िला था। काबा के सामने जाकर वे नंगे बदन सवेरे ही से खड़े होगए। गरमी की तेज़ धूप के कारण दिन भर उनका शरीर जलता रहा, पसीना चूता रहा और उस पसीने की धारा से नीचे के पत्थर गीले होगए; पर

वे अपनी प्रार्थना में अटल रहे। रोज़ रोटी का एक टुकड़ा उनके पास रख दिया जाता, पर वे उसमें से एक कौर खाकर बाक़ी छोड़ देते। उन्होंने प्रभु से प्रार्थना की कि हे प्रभो! यदि मैं धर्मभ्रष्ट भी हूँ तो इस हालत में भी मेरा उद्धार करना। इस प्रकार प्रार्थना करने पर उन्होंने आँखें खोलीं तो उन्हें अपने पास बहुत से आदमी प्रार्थना करते हुए दिखाई दिए। उन्होंने फिर प्रार्थना की—हे मेरे परमात्मा! भावुक अपनी भावना में, जप करनेवाला अपने जप में और ज्ञानी अपने ज्ञान में तुम्हें जितना पवित्र मानते हैं उससे भी कई गुना ज्यादा मैं तुझे पवित्र मानता हूँ। हे प्रभो! मेरे हृदय का भाव तू जानता है। मैं तेरे उपकारों का बखान करने योग्य नहीं, यह भी तुझसे छिपा नहीं। मेरे रोम-रोम में तू व्याप्त है, अपने उपकारों का तू ही वर्णन कर सकता है।

उनको रोज़ लगातार साधना करते देखकर किसी ने उनसे पूछा—आप इतने ऊँचे पहुँच गए हैं, फिर भी इतनी और तक़लीफ़ क्यों उठाते हैं? उत्तर में वे बोले—जिस तरह मुरदे को सुख-दुख का अनुभव नहीं होता, उसी तरह प्रभु-प्रेमी को भी नहीं होता।

एक दिन इब्राहिम खायाज़ को किसी काम में लगा देखकर महर्षि मंसूर ने कहा—भाई, सारा दिन तुम पेट की पालना ही में बिता दोगे तो फिर ईश्वर में कैसे लगोगे? सारी उम्र इसी काम में बिता देने का क्या तुमने विचार किया है?

किसी ने सहनशीलता के बारे में उनसे प्रश्न किया तो उन्होंने उत्तर दिया—हाथ-पैर काटकर शरीर को सूली पर चढ़ाया जाय, फिर भी जो चूँ नहीं करे उसी को सहनशील गिनना चाहिए। आगे जाकर खुद अपने ऊपर ऐसा ही मौक़ा आ जाने पर मंसूर ने सच्ची सहनशीलता का परिचय दिया था।

एक बार सब्ली मंसूर को क़त्ल करने का विचार करके उनके पास

आया। उसे देखकर मंसूर बोले—अभी ठहर जाओ, आजकल मैं एक ज़रूरी काम में रुका हुआ हूँ। ऐसे काम में लगे हुए को मारना उचित नहीं।

मंसूर के अनोखे कामों से उकताकर बहुत-से लोग उनके विरोधी बन गए। दूसरी ओर उनके कामों का अनोखापन और भी बढ़ने लगा, उनकी वाणी तेजस्वी होगई। ख़लीफ़ा के आगे उनकी बात चली, सभी ने एक मत से उन्हें प्राणदण्ड देने की राय दी। महर्षि मंसूर 'अनलहक़' का जप करते थे। इसी पर नाराज़ होकर सबने उनके लिए ऐसी कड़ी सज़ा की तजवीज की थी। लोगों ने भी उन्हें 'हु अल हक़'—वह ईश्वर है—का जप करने के लिए समझाया। लोगों को उन्होंने जवाब दिया—हाँ, वही बंधु है, उसका महासागर चारोंओर उछल रहा है। उसमे मेरा 'अपनापन' मिलकर एक रस होगया है। मै अब उससे कैसे अलग हो सकता हूँ? मैं अपना मन्सूरपन भूलकर प्रभुपन को प्राप्त हुआ हूँ। अब महान् पद को छोड़कर फिर छोटा पद क्यों लूँ ?

लोगों ने उनकी बातों का जुम्रेद से मतलब पूछा तो उन्होंने कहा—अफ़सोस! अफ़सोस! उनकी बातों का यही मतलब है कि उनके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर डालो। उनकी बातों का और मतलब समझने का यह मौक़ा नहीं है।

मुहम्मद दाऊद और एक मुसल्माने जाकर उन पर हमला किया। मार-पीटकर वे तो भाग गए, उलटे मन्सूर को ही ख़लीफा के मंत्री ने क़ैद कर दिया। क़ैद में भी बहुत-से लोग उनसे मिलने जाते और धर्म की बातों पर सवाल करते। आख़िर, लोगों को उनके पास जाने की मनाही कर दी गई। वे एक वर्ष तक क़ैद में रहे। एक दिन अब्दुल्ला ख़लीफ़ा अपने साथी के साथ उनके पास गया और उसने

कहा—अपनी पिछली बातों के लिए माफ़ी माँग लेने पर आपका छुटकारा हो सकता है।

'माफ़ी माँगनी चाहिए उसे, जो मुझे माफी माँगने के लिए कहता है।' मन्सूर ने जवाब दिया। यह सुनकर उन दोनों के क्रोध का ठिकाना नहीं रहा और वे मन्सूर को मारने-पीटने लगे।

कहते हैं जेल में रहकर मन्सूर ने कई चमत्कार दिखाए, जिनसे नाराज़ होकर ख़लीफ़ा ने हुक्म दिया कि जबतक वह 'अनहलक़' बोलता रहे, उसे लकड़ियों से पीटा जाय और फिर उसका बध कर दिया जाय।

खलीफ़ा की आज्ञा का पालन हुआ। लकड़ी की हर एक मार के साथ मन्सूर के मुँह से वही 'अनहलक़' शब्द निकलता था। आख़िर, जल्लाद उन्हें सूली पर चढाने के लिए ले गए। उन्हें देखने के लिए हज़ारों की भीड इकट्ठी होगई। मौत को नज़दीक देखकर मन्सूर और भी ज़ोर-ज़ोर से 'हक़, हक़, हक़, अनलहक़' कहने लगे। एक फ़क़ीर ने उनके पास आकर पूछा—प्रेम कैसा होता है ?

वे बोले—उसका उदाहरण अभी देखना, कल देखना, परसों देखना ! उनके कहने का महत्व था कि आज अभी मैं क़त्ल होऊँगा, कल दफ़नाया जाऊँगा और परसों मेरा कोई चिह्न नहीं रह जायगा।

मौत जिस समय सिर पर सवार थी, उस समय भी उनसे जो प्रश्न पूछे गए उनका उत्तर उन्होंने बहुत ही शांति के साथ दिया। सूली के पास जाकर उन्होंने उसका स्नेहभाव से चुम्बन किया। सूली की सीढी पर पाँव रखकर उन्होंने कहा—वीर पुरुषों के लिये सूली स्वर्ग की सीढ़ी है। पश्चिम की ओर मुँह करके उन्होंने ऊँचे हाथ करके प्रार्थना की। कुछ दुष्टों ने उन पर पत्थर फेंके, तो भी वे ज़रा भी विचलित नहीं हुए। पहले उनके हाथ काट डाले गए; वे हँसकर

बोले—मेरे इन बाहरी हाथों को काट देना तो आसान है; पर मेरी आत्मा के उन हाथों को, जो स्वर्ग के शिखर पर से गौरव का मुकुट उतारने के लिये आतुर हो रहे हैं, काटने में कौन समर्थ है ? पैर काटे जाने पर उन्होंने कहा था—इस मृत्युलोक में घूमनेवाले इन पैरों को ही तुम काट सके हो, परमधाम में घूमने की इच्छा रखनेवाले मेरे इन पैरों को काट सको तो जानूँ ?

बहुत ज़्यादा खून बह जाने से उनके चेहरे के फीकेपन से लोग यह न समझ बैठें कि वे वीरता से उस तक़लीफ़ को नहीं सह सके, उन्होंने अपने हाथों से बहते हुए ख़ून को मुँह पर पोत लिया था। अपने ही खून से अपने दोनों हाथ लाल करके उन्होंने कहा था कि यह एक प्रभु-प्रेमी की 'वज़ू' है। जब उनकी दोनों आँखें निकाल ली गईं तो लोगों में हाहाकार मच गया; बहुत-से लोग रोने लगे तो उनमें कई दुष्ट ऐसे भी थे जो फिर से पत्थर फेंकने लगे। जल्लाद जब जीभ काटने लगा तो उन्होंने कहा—'ज़रा ठहर जाओ, मैं एक बात कहना चाहता हूँ।' जल्लाद के रुक जाने पर उन्होंने कहा—हे परमेश्वर ! जिन्होंने मुझे इतनी पीड़ा पहुँचाई है, उन्हें तू सुख से वञ्चित न रखना, उन पर नाराज़ न होना। उन्होंने मेरे हाथ-पैर काट कर तय करने की मेरी मंज़िल को कम कर दिया है, अभी ये मेरा सिर काट देंगे तो मैं सूली पर से तेरे दर्शन करने में समर्थ हो सकूँगा।' उनके नाक कान भी काट डाले गए, जीभ खींच ली गई और साँझ होने पर ख़लीफ़ा की आज्ञा से उन्हें सूली पर चढ़ा दिया गया। प्राण निकलने के पहले उन्होंने क़ुरान की दो आयतें कही थीं। इस धरती पर उनकी वही आख़िरी आवाज़ थी। इस दुनिया में विश्वास और वीरता का अलौकिक आदर्श दिखाकर महर्षि मन्सूर ने हंसते हँसते मौत को बुलाया था। उनके शव का अग्निदाह किया गया था।

उपदेश-वचन

१—जिनकी सदा ईश्वर की ओर दृष्टि है और संसार से जो विरक्त हैं, वही ऋषि हैं।

२—जो लोगों के अत्याचारों से व्यथित नहीं होते, वे ही महापुरुष हैं।

२४—अबुहसन खर्क़ानी

तपस्वी अबुहसन खर्क़ानी प्रभु-श्रद्धा में पर्वत के समान अचल, तत्त्व-ज्ञान में सागर से गहरे और तपस्वियों के गुरु थे। व्रत-साधना में वे अपने शरीर और मन को सदा लगाए रखते और ईश्वर के उस सानिध्य में मस्त बने रहते। वे खर्क़ाँ के रहनेवाले थे। सुल्तान मुहमम्द गज़नी के ये समकालीन थे। सुल्तान एक दिन उनके दर्शन करने के लिए गया। गज़नी से सुल्तान के आने की खबर देने के लिए पहले दूत आया और बोला—आप उनका बाहर आकर स्वागत करें। ईश्वर की आज्ञा है कि प्रभु, प्रभु-परायण और सत्ता-संपत्तिवालों का सत्कार किया जाय।

अबुहसन ने दूत से कहा—'माफ़ करना भाई, सुल्तान से जाकर कह दो हसन प्रभु के सत्कार में लगा है, इस समय वह प्रभु-परायण का भी सत्कार नहीं कर सकता, सत्ता-सम्पत्तिवाले की तो पूछ ही क्या?

सुल्तान इन से यह जवाब सुनकर थोड़ा नाराज़ तो हुआ; पर उसने सोचा—चलकर उस तपस्वी की परीक्षा तो लेनी ही चाहिए।

अपनी शाही पोशाक अपने एक साथी आयाज़ को पहनाकर, सुल्तान खुद एक साधारण अंगरक्षक सिपाही के वेश में उसके साथ-साथ हसन की झोपड़ी तक गया। हसन ने उनकी सलाम का जवाब

भीतर बैठे-बैठे ही दिया, वे बाहर उठकर नहीं आए। एक ही नज़र डालकर हसन उनके चेहरों से असली और नकली सुल्तान को जान गए थे। सिपाही वेशधारी सुल्तान ने कहा—महात्मन् ! आपने सुल्तान का सत्कार नहीं किया। इस पर हसन बोले—यह तो प्रपंच जाल है। इन नौकरों को तो दूर भेजो और तुम मेरे पास आओ। सुल्तान ने नज़दीक आकर उनसे पहले महात्मा बायज़ाद के बारे में पूछा।

'महात्मा बायज़ाद का कहना है कि जिस किसी ने उन्हें देख लिया उसका दुर्भाग्य दूर होगया,' महर्षि हसन ने कहा।

'तो क्या वे हज़रत पैग़म्बर मुहम्मद साहब से भी श्रेष्ठ होगए हैं? उनके दुराचारी काका अबु जोहल और अबुलेह ने उनके दर्शन किए थे, तो भी उनके दुर्भाग्य की सीमा नहीं रही थी,' सुल्तान ने तर्क की।

'ऐसी बेहूदी बातें न करो। पैग़म्बर साहब के दर्शन उनके चार धर्म-प्रचारक बन्धुओं तथा दूसरे कुछ अनुयायियों के सिवा किसी ने नहीं किए थे। ईश्वर के इस वचन का क्या तुम्हें ख़याल नहीं है? वे तुम्हारी ओर नज़र किए हैं, तो भी तुम्हारे दर्शन नहीं कर पाते हैं।' इस उत्तर से संतुष्ट होकर सुल्तान ने उनसे उपदेश के लिए विनती की।

महर्षि ने उपदेश दिया—अन्याय से दूर रहना, समूह के साथ उपासना करना और लोगों पर दया व उदारता रखना।

सुल्तान के आशीर्वाद माँगने पर उन्होंने कहा—हे मेरे प्रभु ! तू धार्मिक जनों को क्षमा कर।

सुल्तान ने फिर दूसरा आशीर्वाद माँगा तो उन्होंने कहा—सुल्तान ! तेरे काम और उनके फल प्रशंसा के योग्य हों।

सुल्तान ने एक हज़ार मुद्रा महर्षि के सामने भेंट-स्वरूप रखी। महर्षि ने अपनी ख़ुराक की रोटी में से एक टुकड़ा उसे देकर खाने के

लिए कहा। सुल्तान उसे दाँतों से कुचलकर गले के नीचे उतारने लगा; पर उससे ऐसा न बन पड़ा। सुल्तान की यह कठिनाई देखकर उन्होंने कहा—क्यों बहुत कड़ी है न? गले के नीचे नहीं उतरती? तुम्हीं बताओ तुम्हारी ये कड़ी मोहरें मेरे गले के नीचे कैसे उतरेंगी? जाओ, इन्हें लौटा ले जाओ।

बहुत आग्रह करने पर भी महर्षि ने एक भी मुद्रा स्वीकार नहीं की। सुल्तान ने उनसे यादगार के लिए उनकी कोई चीज़ माँगी। उन्होंने अपने ओढने का कपड़ा सुल्तान को दे दिया। जाते समय तपस्वी हसन ने खड़े होकर सुल्तान को विदा दी। इस पर मुहम्मद ने पूछा—महात्मन्! जब मैं आया तब तो आपने मेरी ओर बेदरकारी दिखाई थी; पर अब खड़े होकर आपने मेरी इज्ज़त की, इसका क्या मतलब है?

महर्षि—पहले तुम राजा बनकर मेरी परीक्षा लेने आये थे; पर अब तुम दीनता, पवित्रता और साधुता के विचार लेकर जा रहे हो। फ़क़ीरी-दौलत का सूरज अब तुम्हारे ऊपर रोशनी डाल रहा है। मैं उस रोशनी को इज्ज़त के लिये खड़ा हुआ हूँ। पहले मैंने बेदरकारी दिखाई थी तुम्हारी पादशाही की ओर!

सुल्तान बहुत ही ख़ुश होकर लौटा।

एक बार अबुहसन अपनी मण्डली के साथ तपस्वियों की झोपड़ी में बैठे थे। वे सात दिन से भूखे थे। संयोग से एक आदमी एक मन आटा लेकर वहाँ आ पहुँचा। उसने वह सामग्री उन तपस्वियों को भेंट करने का इरादा ज़ाहिर किया।

अबुहसन बोले—हममें से जो तपस्वी हो वह इसे स्वीकार कर ले। मुझमें तो तपस्या का अंश भी नहीं है। किसी ने उस आटे को नहीं लिया।

एक बार किसी ने उनसे अपने पहनने के लिये कफ़नी माँगी।

उन्होंने उससे पूछा—पहले मेरे एक सवाल का जवाब दे। अगर कोई आदमी औरत के कपड़े पहन ले तो वह औरत हो जायगा क्या?

'नहीं।'

'उसी तरह कोई औरत आदमी के कपड़े पहनकर आदमी बन सकती है?'

'नहीं।'

तो फिर फ़कीरों की कफ़नी पहनकर तू फ़क़ीर कैसे बन जायगा?

एक दिन किसी ने उनसे लोगों को परमेश्वर की ओर ले जाने का सरल रास्ता पूछा। उन्होंने जवाब में कहा—लोगो को परमेश्वर की ओर भले ही ले जाना; अपनी ओर न घसीटना!

वह व्यक्ति—महात्मन्! कभी ऐसा भी हो सकता है? कोई लोगों को अपनी ओर थोड़े ही घसीटता है?

हसन—परमेश्वर के नाम पर लोगों को अपनी ओर घसीटनेवाले धर्मध्वजी बहुत-से हैं, इसीलिए तो मैंने ऐसा कहा है।

अबुअली सिना नाम का एक व्यक्ति उनकी कीर्त्ति सुनकर उनसे मिलने के लिए खर्का आया। जब वह पहुँचा तब महर्षि झोपड़ी में न थे। द्वार पर आकर उनकी स्त्री ने पूछा—उस पाखंडी धूर्त्त से तुम्हें क्या काम है? यही नहीं उसने और भी बहुत से कुवचन कहे। सिना सुनकर स्तब्ध होगया और मनही मन विचारने लगा—'ऐसे महात्मा की ऐसी खराब औरत? न जाने उन्हें इसके कारण कितनी तकलीफ़ उठानी पड़ती होगी!' सोचता-सोचता वह वहाँ से चल पड़ा। थोड़ी देर में सामने से अबुहसन आते दिखाई दिए। उनके साथ एक बाघ था और बाघ पर लकड़ियाँ लदी थीं। अबुअली देखकर चकित होगया। उसने उनसे पूछा—महात्मन्! यह कैसे अचरज की बात है?

महर्षि—मैं अपनी बाघिन औरत का बोझा ढोता हूँ तो यह बाघ मेरा बोझा ढोता है।

एक रात को उपासना करते समय उन्होंने दैवी वाणी सुनी—अबुहसन ! तू क्या चाहता है ? तेरी गुप्त बातें लोगों के सामने ज़ाहिर करके तुझे हैरान करूँ ?

वे बोले—हे प्रभो ! आपकी क्या मरजी है ? आपकी दया के जिन तत्त्वों को मैं जानता हूँ, आप के जिस प्रेम का मैं अनुभव कर रहा हूँ, उसे सब को बताकर तुम्हारी ओर आने के लिए कहना-सुनना छोड़ दूँ ?

एक बार उन्होंने एक और दैववाणी सुनी थी—अबुहसन ! क्या तू विरोधियों और उनके कोलाहल से डरता है ?

'ना, ना, मुरदे का डर कैसा ? सधा हुआ ऊँट नगारों से और ठठेरे की बिल्ली जड़ हथौड़ों की आवाज़ से नहीं डरते;' उन्होंने उत्तर दिया।

एक बार वे बोले—हे प्रभो ! आप यम को मेरे पास न भेजें। मैं उसे अपने प्राण नहीं सौंपूँगा। मैंने यह प्राण उससे थोड़े ही पाया है ? उसे कैसे दूँगा ? मैंने जो कुछ आपसे पाया है, आपही को सौंपूँगा।

मौत नज़दीक आने पर उन्होंने कहा था—मेरे इस रुधिरपूर्ण अंतर को छेदकर कोई देखे, तो उसे मालूम हो जायगा कि चैतन्य पूजा के साथ जड़ पूजा का कोई सम्बन्ध नहीं है।

उन्होंने बाद में कहा था—मेरे शव को दफ़नाने के लिए तीस गज़ गहरी क़ब्र खोदना, कारण, बस्ताम की धरती इस जगह से तीस गज़ नीची है। मेरा शव महर्षि बायजीद से ऊँचा रहे, यह ठीक नहीं।

उपदेश-वचन

१—एक ईश्वर-प्रेमी के लिए सभी स्थल मसजिद हैं, सभी दिन शुक्र हैं और सभी महीने रमजान हैं। वह जहाँ रहता है, ईश्वर के साथ रहता है।

२—उसके अस्तित्व का ज्ञान होते ही मैंने अपने अस्तित्व की ओर देखा, तो वहाँ भी मुझे उसी का अस्तित्व दिखाई दिया।

३—प्रभु अपने प्रेमियों को ऐसी जगह रखता है, जहाँ साधारण लोग पहुँच ही नहीं पाते। जो लोग उस जगह पहुँच गए हैं, उनको जन साधारण पहचान ही नहीं सकते कि वे प्रभु-प्रेमी हैं। जब कभी मैंने उस प्रभु के सौन्दर्य की बात लोगों से कही, तो उन्होंने मुझे पागल बताया। उस प्रभु का कहना है कि मैं तुझे ऐसे लोगों के सामने प्रसिद्ध न होने दूँगा, जो दुर्भागी हैं। तुझे प्रसिद्धि मिलेगी उन लोगों में जो मेरे प्रेमी हैं और जिनका मैं प्रेमी हूँ; वैसे लोग ही तेरा दर्शन कर पायेंगे। जो लोग तुझ तक नहीं पहुँच सकेंगे वे तेरा नाम सुनकर तुझे प्यार करेंगे। मैंने तुझे पवित्र जीवन दिया है, इसलिए पुण्यात्मा ही तुझे पहचान सकेंगे।

४—एक बार मैंने प्रभु की वाणी सुनी—ऐ मेरे सेवक! यदि तू दुखी होकर मुझसे सुख-संतोष माँगेगा, तो मैं तुझे सुख-संतोष दूँगा, यदि तू ग़रीब होकर मेरे पास आयेगा, मैं तुझे दौलत दूँगा और यदि तू अपनी अहमिता, ममता सब कुछ मुझे सौंप देगा, तो मैं भी अपनापन और अपना सब कुछ तुझे दे दूँगा।

५—जब मैंने अपना अस्तित्व देखने का प्रयत्न किया, तो उस प्रभु ने मुझे दिखाया मेरा अनस्तित्व, और जब मैं अपने अनस्तित्व को देखने लगा, तो उसने मुझे अपना अस्तित्व और प्रभुत्व दिखाकर कहा—ऐ मेरे अनन्य स्वरूप! अब तू अपने अस्तित्व को देख। मैंने उत्तर दिया—तेरे बिना और दूसरा कौन मेरे अस्तित्व का प्रमाण दे सकेगा? तूने ही तो कहा है कि ईश्वर सब का साक्षी है। आपके मार्ग का यह भेद जब मेरे लिये दूर हुआ तभी से उसके प्रकाश के सहारे मैं अविश्वास के अन्धकार से निकलकर विश्वास की ओर बढ़ता चला आया हूँ।

६—एक बार मेरे हृदय में मुझे ईश्वर की यह वाणी सुनाई दी—'अबुहसन ! मेरी आज्ञा के पालन में सदैव तत्पर रहना; कारण, मैं सदा जीता-जागता हूँ और मृत्यु से परे हूँ, तुझे भी ऐसी शक्ति प्रदान करूँगा, जिससे मौत का तुझपर अधिकार ही नहीं रह जायगा; पर मैंने जिन बातों का निषेध किया है, उनसे परे रहना। मेरी जिस अपार सत्ता-सामर्थ्य और अटूट ऐश्वर्य का कभी विनाश नहीं होनेवाला है, वे सभी अविनाशी स्वराज्य मैं तुझे दे दूँगा।

७—ईश्वर का कहना है कि जिसने मुझे पहचाना है, उन्होंने सत्य से प्रेम किया है और सत्य ने भी उन्हीं से प्रेम किया है। जिस किसी ने साधु-पुरुषों का सहवास किया है, वही ईश्वर को पा सका है।

८—जब मेरी जीभ अद्वितीय ईश्वर की महिमा और गुण गाने लगी, तब मैंने देखा कि भूलोक और स्वर्गलोक मेरी प्रदक्षिणा करते हैं। हाँ, लोग उसे नहीं देख पाये।

९—एक बार अन्तर में ऐसी ध्वनि उठी कि लोग मुझसे स्वर्ग पाने की प्रार्थना कर रहे हैं। उन्होंने जो विश्वास पाया है, उसके प्रति कृतज्ञता तो वे दिखाये बिना ही और बहुत-सी चीज़ें माँगने लगे हैं।

१०—तीस वर्ष से मैं लोगों को कथा सुना रहा हूँ; लोग समझते हैं मैं उनसे बातें कर रहा हूँ; पर मैं तो बात करता हूँ उस ईश्वर से।

११—एक बार मेरे हृदय में सुनाई दिया—अबु हसन ! मैं तुझे सब कुछ दे दूँगा; पर प्रभुत्व तो नहीं दूँगा। मैंने उत्तर दिया—प्रभो ! मुझे तो एक तुम्हारे सिवा और किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं। जिन लोगों का तुम्हारे साथ सम्बन्ध नहीं है, उन्हीं को अपना यह सब कुछ दो।

१२—हे प्रभो ! जो कुछ मेरा था, वह सब मैंने तो तुम्हारे काम ही में लगा दिया है और जो कुछ तुम्हारा था वह भी तुम्हीं को सौंप दिय है। अब तुम मेरा अपमान नष्ट करके स्वयं अपने पूर्ण रूप से मुझमें विराजमान होओ।

१३—मैं सब जगह तुम्हारा भक्त हूँ। तेरे भेजे हुये पैग़म्बर और ऋषि मुनियों का चाकर हूँ और तेरे सिरजे हुये नर-नारियों का ग़ुलाम हूँ।

१४—हे प्रभो ! तुम जब मेरा सदा स्मरण रखते हो, तो मेरे आख़िरी साँस तक के हरएक साँस के साथ तुम्हारा नाम रहे, मन भी सदा तुम्हारे स्मरण में लगा रहे और तन व जीवन भी तुम्हारा अनुसरण करता रहे।

१५—हे प्रभो ! तुमने मुझे अपने लिये सिरजा है और तुम्हारे लिये ही मैं जन्मा हूँ। कृपाकर अपनी सिरजी हुई किसी भी चीज़ के प्रति मेरे मन में मोह न पैदा होने देना।

१६—मैं किसी को गुरु नहीं मानता, क्योंकि मेरा गुरु और नेता तो वह ईश्वर है; तो भी मैंने अनेक धर्माचार्यों की संगति तो की ही है।

१७—मनुष्य जबतक यह मानता है कि वह कुछ भी नहीं जानता, तभी तक उसे नई-नई बातें जानने की अभिलाषा रहती है। ज्योंही वह यह मानने लगता है कि वह कुछ तो जानने लगा, तभी से उसके ज्ञान के द्वार बंद होजाते हैं।

१८—यदि तुम कहो कि मैं उसे जानता हूं, तो मैं कहूंगा कि तुम उसे जानते ही नहीं।

१९—स्वयं ईश्वर जब अपने दास को अपना रास्ता दिखाता है, तभी उसकी गति और स्थिति अध्यात्म के राज्य में हो पाती है।

२०—ईश्वर को पाने के लिए जिसका हृदय तरस रहा है, उसी

का जन्म धन्य है, उसी की माता धन्य है; कारण, उसका सर्वस्व तो उस ईश्वर में समाया रहता है।

२१—जो मनुष्य ईश्वर में लीन रहता है और सुनने तथा देखने लायक उसी को समझता है, उसने सब कुछ सुन लिया है, देख लिया है और जान लिया है।

२२—प्रभु के मार्ग में एक बाज़ार है, जिसे साधु संत धर्म-कर्म का बाज़ार कहते है। इस बाज़ार में परलोक, तप, कोमलता, स्वर्गीय स्वभाव आदि की भाँति-भाँति की तस्वीरे हैं। जो भाग्यशाली यात्री उस बाज़ार में जाकर उन तसवीरों को देखने के लिए खड़ा होता है और उन सब के प्रति अनुराग दिखाता है, वह प्रभु को प्राप्त करता है। किन्तु, वहाँ पहुँचने के पहले सब दुनियावी बातों को छोड़कर एकांत में ईश्वर का योग प्राप्त करे, मस्तक नत रखे, कृपा रूपी नदी के द्वारा ईश्वर रूपी महासागर में मिलकर एकता की साधना करे—आत्मविसर्जन करे।

२३—ज्ञान के दो विभाग हैं, एक बाहरी दूसरा आध्यात्मिक। बाहरी भाग से दुनिया की जानकारी होती है और आध्यात्मिक ज्ञान से साधु पुरुषों का ईश्वर के साथ गूढ़ योग होता है। उसमें दुनियावी विचारों का प्रवेश भी नहीं हो पाता।

२४—अगर तुम दुनिया की खोज में जाओगे, तो दुनिया तुम पर चढ़ बैठेगी, उससे विमुख होओगे तो ही उसे पार कर सकोगे।

२५—फ़क़ीर वह है जिसे आज और कल किसी दिन की परवा नहीं, जो अपने और प्रभु के सम्बन्ध के आगे लोक और परलोक दोनों को तुच्छ समझता है।

२६—वीरता एक विशाल नदी है, इसकी तीन धारायें हैं—दानशीलता, प्राणीमात्र पर दया और ईश्वरेतर सबसे अयाचकता।

२७—मनुष्य पुण्य से उन्नति प्राप्त करता है, ऊपरी धर्मानुष्ठानों से नहीं।

२८—सारी दुनिया की साधुता इकट्ठी की जाय तो भी वह प्रभु की साधुता की एक बूँद के बराबर भी नहीं होगा।

२९—पुस्तक पढ़कर पण्डित बने हुए लोगों का दावा है कि वे पैगम्बरों के वारिस हैं, किन्तु मैं कहता हूँ उनके वारिस हैं त्यागी, तपस्वी। उन पैग़म्बरों के पास जो अमूल्य धन था, उसका कुछ अंश यदि किसी के पास मिलेगा तो तपस्वियों के पास ही। वे दानशील थे, लोगों के प्रति दयावान् थे। वे किसी का अहित नहीं करते थे, सबको सन्मार्ग दिखाते थे, वे काल के अधीन न थे, लोग उनसे डरते; पर वे लोगों से नहीं डरते, लोग उनसे आशा रखते, पर वे किसी की आशा नहीं रखते; उनके इन गुणों के वारिस त्यागी-तपस्वियों के सिवा और कौन होंगे?

३०—फ़क़ीरों के दल के सामने परमेश्वर है, पीछे पैग़म्बर हैं, एक ओर अनुयायी और दूसरी ओर धर्मग्रंथ व धर्माचरण हैं।

३१—कोई अपना ज्ञान बघारते हैं तो कोई अपना तपोबल दिखाते हैं, पर ईश्वर का मार्ग ऐसा है जहाँ ये सब अहमिता और ममता के आवरण को दूर किए बिना काम दे सकें।

३२—बिना ईश्वर का नाम लिए कोई भी बात विचारने अथवा करने से बड़ी विपत्ति का सामना करना पड़ता है।

३३—सभी चाहते हैं कि इस दुनिया की कोई चीज़ भगवान् को भेंट देने के लिए ले जायँ; पर वे इस दुनिया की कोई चीज अपने साथ नहीं ले जा सकते। साथ ले जाते हैं अपनी अहमन्यता और ममता के उत्पन्न विनाश का भार!

३४—जगत के साधारण प्राणियों की अपेक्षा ऊँचा आसन पाकर

यदि मन में यह भाव उठे कि लोग मेरी इस ऊँचाई की ओर देखें, तो वह मनुष्य सच्चा भक्त अथवा साधु नहीं हो सकता।

३५—संसार व स्वर्ग और उनके निवासियों को जानने के बाद ईश्वर को जानने का इरादा करोगे, तो तुम्हारी मंजिल बहुत लम्बी हो जायगी: किन्तु प्रभु-विश्वास के मार्ग में क़दम बढ़ाओगे तो मंजिल तय होते देर ही नहीं लगेगी।

३६—साधुओं का समागम करने से प्रभु-प्रेम रूपी सुन्दर बादल उमड़ेंगे और उनसे ईश्वर के अनुग्रह का स्वच्छ जल बरसेगा; किन्तु जब तुम उस प्रभु ही का समागम करने लग जाओगे, तब तो उन बादलों से प्रेम के अमृत की बरसा होने लगेगी।

३७—पुण्यात्मा श्रद्धालुओं के सिवा सब में ईश्वर-प्रेमी निंदित होता है।

३८—जो ईश्वर की ओर जाता है, उसे वह कुछ ऐसी चीज़ दे देता है, जिससे उसका अपना सब कुछ चला जाता है, और उसके बदले में उपासना, प्रार्थना, जप, तप, दान, व्रत, उपवास आदि दैवी पदार्थ प्रभु की ओर से उसे मिलते रहते हैं।

३९—स्वयं ईश्वर जिसका मार्ग-दर्शक है, उसका रास्ता अपने भरोसे ही चलनेवाले के रास्ते से कहीं अधिक छोटा है; क्योंकि ईश्वर अपने आश्रित को दिव्य-दृष्टि प्रदान करता है, जिससे वह अपने सीधे रास्ते को सरलता से देख लेता है।

४०—रास्ते दो हैं—एक लम्बा दूसरा छोटा। लम्बा रास्ता भक्त के पास से शुरू होकर भगवान् के पास जाता है, और छोटा रास्ता भगवान् के पास से शुरू होकर भक्त के पास आता है।

४१—जो यह कहता है कि मैं उसके पास पहुँच गया, वह झूठा है; किन्तु जो कहता है कि मैं उसके पास नहीं पहुँच पाया, वही उसके पास पहुँचा हुआ होता है।

४३—जो उसे पाता है वह अपने रूप में न रहकर उसके रूप में समा जाता है।

४४—मुँह बंद रखो। ईश्वर के सिवा दूसरी बात ही मत करो। मन में भी ईश्वर के सिवा और किसी बात का चिंतन न करो। इंद्रियों और अपने कार्यों के द्वारा वैसे ही काम करो, जिनसे ईश्वर ख़ुश हो।

४४—जब तुम पूरी तरह से अपना विनाश कर लोगे, तभी तुम 'पूर्ण' बनोगे।

४५—सूफ़ी के पास मन होता है; पर वह उससे छीना हुआ होता है। उसके पास शरीर होता है; पर वह उसका अपना नहीं होता। उसके पास प्राण होते हैं, पर वे भी प्रभु-प्रेम पर निछावर होते हैं।

४६—स्वर्ग और मृत्युलोक के सारे जीवन में किए धर्मानुष्ठानों की अपेक्षा एक पल भर का प्रभु-समागम श्रेष्ठ है।

४७—तू ईश्वर को ख़ुश करने के लिए जो कुछ करता है वही काम का है, लोगों को ख़ुश करने के लिए जो कुछ करता है वह वृथा है।

४८—तुम अपना जीवन उसे अर्पित करोगे, तो वह अपना जीवन तुम्हें देकर सारे अनिष्टों से तुम्हें बचायेगा।

४९—एकांत में प्रभु के साथ बैठनेवाले का लक्षण है दुनिया की सब वस्तुओं और दूसरे सब मनुष्यों की अपेक्षा प्रभु ही को अधिक प्यार करना।

५०—ईश्वर के प्रेमियों के लिए है उसका प्यार और पापियों के लिए है उसकी दया।

५१—जो छोटे-छोटे प्राणियों से प्यार नहीं कर सकता, वह ईश्वर से क्या प्यार करे

५२—जो आदमी अपना सारा संसार और अपने जीवन को प्रभु को अर्पण नहीं कर देता, वह दुनिया के इस भयानक जंगल को पार कर ही नहीं सकता।

५३—पल भर का ईश्वर का सहवास अनेक वर्षों के रोज़ा और नमाज़ से अधिक उत्तम है।

५४—भीतर की शुद्धि और वाणी की सत्यता बहुत ही उत्तम हैं; किन्तु ईश्वर के प्रति श्रद्धालु हुए बिना वे भी अधूरी ही रह जाती हैं।

५५—फ़क़ीरों का बाना तो बहुत पहन लेते हैं; पर ईश्वर तो चाहता है मन की शुद्धि और व्यवहार की सात्विकता का बाना।

५६—ऊन कपड़ों ही से अधिक फ़क़ीरी आजाती तो पशु भी फ़क़ीर हो गए होते, उनका शरीर तो बालों ही से ढका रहता है।

५७—यदि ईश्वर में तुम्हारा अनुराग है, तो सारी पृथ्वी के मालिक होने पर भी तुम्हारी हानि नहीं होगी; किन्तु बिना ईश्वर में प्रीति हुए फ़क़ीरी पोशाक भी नुक़सान पहुँचा देगी।

५८—अपने आप को ईश्वर में देखने से पूर्णता प्राप्त होती है, अपने आप में ईश्वर को देखने से निर्वाण प्राप्त होता है और अपने आपको बिलकुल न देखकर एक मात्र ईश्वर ही को देखने से नित्यता प्राप्त होती है।

५९—ऐसे लोगों ही की संगति करना जो ज्ञानाग्नि से शुद्ध होकर प्रभु-ममता रूपी अमृतसागर में डूबे हैं।

६०—ईश्वर का स्मरण करो तो ऐसा कि फिर दूसरी बार उसे याद ही न करना पड़े।

६१—जो श्रोता प्रभु को पाने की इच्छा नहीं रखता, उससे बात मत करो, और जिस वक्ता को प्रभु के दर्शन नहीं हुए, तो उसकी बात मत सुनो।

६२—मेरा तो कोई शिष्य नहीं, जिसके गुरु होने का मैं गर्व

करूँ ? मैं तो यही मानता हूँ कि सब बातों के लिए एक वह ईश्वर काफी है। अगर तुम कभी किसी के अन्तर्यामी प्रभु को पीड़ित करोगे, तो तुम्हें अपनी सारी ज़िन्दगी रोते-रोते बितानी होगी। पीड़ित की क्षमा पाकर भी उसे दुःख देने का कलंक तो तुमसे नहीं छूटेगा!

६३—जो ईश्वर के लिए तरस रहा है, वह सारी सृष्टि को पाकर भी तरसता ही रहेगा।

६४—पोथियों के पण्डित भले ही ज्ञान बघारते रहें, वैरागी भले ही वेश बदलते रहें और तपस्वी तप करते रहें, पर सावधान! पवित्रता और निष्कामता प्राप्त करके ही तुम ईश्वर की ओर बढ़ना, कारण, वह स्वयं पवित्र और निष्काम है और तुम्हें भी वह वैसा ही देखना चाहता है।

६५—तन, मन, धन से लोग ईश्वर के अपराध करते रहते हैं। उसके बदले यदि वे अपने शरीर को उसकी सेवा में, वाणी को उसके गुणानुवाद में लगाए रखें, तो मन के सब अपराध रुक जायँ। मन भी प्रभु ही को अर्पित कर देना चाहिए, पर यह तभी संभव है जब अपना सर्वस्व प्रभु को अर्पण कर दिया गया हो। अपना तन, मन, धन और सर्वस्व उसे अर्पित कर देने पर वह तुम्हें बदले में देगा—प्रभु प्रेम, तेजस्विता, प्रभुमय जीवन और प्रभु के साथ एकीकरण!

६६—बहुत-से लोग चलते-फिरते दिखाई देते हैं, पर दर असल में वे मरे हुए हैं, और बहुत से लोग क़ब्र में सोए हैं तो भी वे जीते जागते हैं।

६७—सच्चे प्रभु-प्रेमी बनकर जिस ओर देखोगे वहीं ईश्वर दिखाई देगा, कारण, आरंभ ही से ईश्वर सर्वत्र विद्यमान है।

६८—अदृश्य जगत् में प्रभु-कृपा की एक नदी बह रही है, किन्तु बहुत-से लोगों का उस पर विश्वास उसमें तैरते हुए एक तिनके के बराबर भी नहीं होता; दूसरे संयोगों का धक्का खाकर वह कमज़ोर विश्वास ठहरने ही नहीं पाता।

६६—जिस प्रकार घर की औरत को ज़नानखाने के आदमियों के सिवा दूसरा नहीं देख पाता उसी तरह महापुरुषों को भी सब आदमी नहीं देख पाते। प्रभु के सच्चे प्रेमी ही उनकी ओर आकर्षित होते हैं, उन्हें पहचान सकते हैं और उनके दर्शन कर सकते हैं।

७०—शिष्य गुरु के प्रति जितनी ही अधिक श्रद्धा रखता है, गुरु की उसके प्रति उतनी ही अधिक उदारता बढ़ती है।

७१—जबतक मानुषी भावों में फँसे रहोगे, कड़वा और तीखा सब तरह का स्वाद चखना होगा। किन्तु जब उससे मुक्त होकर प्रभु की ओर झुकोगे, तो प्रभुमय—सच्चिदानन्दमय—जीवन प्राप्त करोगे।

२७—शरीर, वाणी, मन तीनों मेरे नहीं; उन्हें तो मैं ईश्वर को सौंप चुका हूँ। मेरा न लोक है, न परलोक; दोनों की जगह है परमेश्वर।

७३—कर्म करनेवाले बहुत होते हैं; पर पूरी लगन से करनेवाले नहीं; पूरी लगन से करनेवाले होते हैं तो वे अपना किया प्रभु को समर्पित नहीं करते। पूरी लगन से काम करके उसे ईश्वर को समर्पित कर देनेवाला ही सच्चा साधु है।

७४—प्रभु-प्रेमी ही प्रभु को पाता है और जो प्रभु को पा लेता है, वह अपने आपको भूल जाता है, उसका 'अहंभाव' नष्ट हो जाता है।

७५—पोथियों के पण्डित धर्म का उपदेश दूसरों को सुनाने में ही लगे रहते हैं; किन्तु सच्चे साधु अपने आपको सुनाते हैं और ख़ुद उस पर आचरण करते हैं।

७६—सच्चा ज्ञानी वह है, जो आत्मज्ञानी और अनुभवी भी है। केवल पढ़ा-लिखा और बोलना जाननेवाला ज्ञानी नहीं होता।

७७—पश्चात्ताप के पेड़ लगाओगे, तो कड़वे नहीं मीठे ही फल लगेंगे। लोगों के आगे रोने की अपेक्षा प्रभु के आगे रोओगे तो सच्चा लाभ होगा।

७८—तुमने उसे कहाँ देखा?—जहाँ मैं ख़ुद खोगया! अपने-आपको मैं नहीं देख पाया वहाँ!

७६—मैं नहीं कहता कि काम मत करो। काम ज़रूर करो; किन्तु अपनी शक्ति और सम्पत्ति के सहारे नहीं, उस प्रभु की शक्ति और सम्पत्ति के सहारे करो। जिस प्रकार एक व्यापारी का मुनीम अपने काम का सारा नफा मालिक ही को सौंप देता है, उसी प्रकार दुनिया के अपने सब कामों का नतीजा अपने मालिक प्रभु पर छोड़ देना।

८०—साधु पुरुषो! सावधान रहना। फ़क़ीरी, फ़क़ीरी पोशाक और नमाज़ वग़ैरह ही से तुम्हें उसके दर्शन नहीं हो सकेंगे। इन बाहरी साधनों ही में साधुता मान बैठने से तो नुक़सान ही होगा।

८१—जबतक लोगों से तुम्हारा कार्य छिपा रहेगा और कर्त्ता के रूप में तुम लोगों की नज़र में नहीं आवोगे, तभी तक धर्म के मार्ग में तुम्हें सुख रहेगा। दान और दूसरे धर्म कार्यों में ख्याति के आते ही उसका सारा मज़ा किरकिरा होजाता है।

८२—हाथ में लाया हुआ काम जबतक पूरा नहीं हो जाता, साधु लोग उसे नहीं छोड़ते।

८३—अपने सब काम भूलकर सदा ईश्वर का स्मरण करते रहो।

८४—सेवा क्या है? निःस्वार्थ भाव और कर्त्तव्य बुद्धि से काम करना।

८५—किसी के प्रति द्वेष होने से अधिक दुखदायक बात कोई नहीं है।

८६—जो ईश्वर की ओर गए हैं, उन्होंने ईश्वर की सारी देन उसे वापस अर्पित कर दी हैं। ईश्वर-कृपा से प्राप्त उपासना, स्मरण—चिंतन, रोज़ा आदि सभी वे उसी को अर्पित करते रहते हैं।

८७—मैं यह नहीं कहता कि स्वर्ग नरक नहीं हैं। मैं तो कहता हूँ कि स्वर्ग नरक दोनों दुनियावी पदार्थ हैं; किन्तु मैं जहाँ हूँ, वह स्थान इस दुनिया से बाहर है, वहाँ स्वर्ग नरक कुछ भी नहीं।

८८—मुर्दे को देखकर तुम डरते हो? मैं तो नहीं डरता। क्यों डरूँ? एक मरे हुए को मरने का क्या भय?

८९—क्या करने से जाग्रत रहा जा सकता है? हर एक श्वास के साथ यही समझो कि यह तुम्हारा अंतिम श्वास है।

९०—अगर उस करुणासागर की करुणा की एक बूँद भी तुम पर गिर जाय, तो दुनिया के किसी से कुछ भी माँगने की तुम्हें ज़रूरत नहीं रह जायगी।

९१—नमाज़ और रोज़ा अच्छे साधन हैं, किन्तु मन में से राग-द्वेष और गर्व दूर करना उससे भी अधिक कल्याण करनेवाली साधना है।

९२—इस दुनिया के कँटीले झाड़ के नीचे बैठकर प्रभु का ध्यान भजन करना मुझे पसंद है, किन्तु स्वर्ग के कल्पतरु के नीचे बैठकर ईश्वर को भूल जाना मुझे पसंद नहीं।

९३—मैं जिस स्थान पर खड़ा हूँ, वहाँ मुझे कभी-कभी सर्व-शक्तिमान् ईश्वर की ओर से ऐसा बल प्राप्त होता है कि मैं नभोमण्डल को उलट दूँ, एक लात मारकर पृथ्वी को रसातल भेज दूँ; पर जब अपने स्वरूप की ओर देखता हूँ, तो मुझे सारा विश्व मेरे सारे शरीर में दिखाई देता है।

९४—ईश्वर के मार्ग में पहले व्याकुलता, तीव्र जिज्ञासा और पीछे निर्बलता, पश्चात्ताप, प्रभु की महिमा का कीर्त्तन और परमात्म-दर्शन क्रमशः आते हैं।

९५—चालीस वर्ष से मैंने अपने लिए नहीं, पर केवल अतिथियों के लिए ही रोटी पकाई है। मैं तो अतिथियों का प्रसाद ही पाता रहा हूँ।

९६—जो आदमी ईश्वर की वाणी का स्वाद चखे बिना ही इस लोक से चला जाता है, वह शांति और कल्याण से वंचित ही रह जाता है।

९७—लोगों के साथ सद्व्यवहार रखना, प्रभु-प्रेरित महात्माओं की सेवा करना और प्रभु के ध्यान-स्मरण में जीवन बिताना हमारा प्रथम कर्त्तव्य है।

९८—पवित्र बनो। ईश्वर स्वयं पवित्र है और वह पवित्रात्मा ही पर अपने प्रेम की वृष्टि करता है।

९९—जहाँ अपनापन है वहाँ भक्ति नहीं, वहाँ तो केवल पाखण्ड है।

१००—सच्चा विश्वास कभी तो एक मक्खी का ठोकर भी नहीं सह सकता और कभी पलक के बल पर सात भुवन का भार उठा लेता है।

२५—अबुबकर सबली

तपस्वी अबुबकर सबली की जन्म-भूमि बग़दाद में थी। वे बड़े ज्ञानी और प्रेम में मस्त फ़क़ीर थे। उनके जीवन में कभी दुर्बलता और उदासीनता देखने में नहीं आई। उनकी प्रज्वलित प्रेमाग्नि कभी मंद नहीं हुई। अनेक शास्त्रों का अध्ययन करके उन्होंने बहुत-से ग्रंथ रचे थे। मन्सूर की भाँति वे भी 'अनलहक़' का जप करनेवाले थे। वे ७७ वर्ष तक जीवित रहे और हिजरी ३३४ में स्वर्गवासी हुए।

मूर्खों ने उन्हें बहुत पीड़ित किया था। उनकी सारी ज़िन्दगी लोगों की ओर से तकलीफ़ भोगने ही में बीती थी। उन्हें क़त्ल करने की भी बहुत कोशिश की गई थी।

४. उनके जीवन का परिवर्त्तन आश्चर्यजनक रीति से हुआ था। बग़दाद के ख़लीफ़ा के मातहत नेहाउन्द प्रांत के वे जागीरदार थे। ख़लीफ़ा का हुक्म पाकर वे राज-दरबार में हाज़िर हुए। किसी कारण से नाराज़ होकर ख़लीफ़ा ने उनकी जागीर छीन ली। पदभ्रष्ट और अपमानित होकर वे नेहाउन्द लौट आए। कुछ समय के बाद ख़लीफ़ा ने उन्हें फिर जागीर बख़्श दी, तोहफ़े के तौर पर कुछ कपड़े भी भेजे। सबली ने उन बेशक़ीमत कपड़ों को देखकर नाक-भौं सिकोड़ लिए। ख़लीफ़ा तक यह बात पहुँची। उसने क्रुद्ध होकर उनकी जागीर फिर छीन ली। सबली ने सोचा कि—मनुष्य के लिये कपड़ों को और ऐसी बेदरकारी दिखाने का यह नतीजा हुआ, तो उस परमात्मा के दिए इस शरीर का दुरुपयोग करने पर तो न जाने कितनी कड़ी सज़ा भोगनी होगी। वे ख़लीफ़ा के पास गए और बोले—राजन्! आप अपने दिए कपड़ों को बेदरकारी को नहीं सह सके; सबके मालिक उस परमात्मा ने मुझे बहुमूल्य प्रेम और तत्त्वज्ञान प्रदान किया है। मैं उसकी अवगणना करके अब किसी आदमी की ग़ुलामी करूँगा?

ऐसा कहकर वे वहाँ से चल दिए। तपस्वी खैय्यार नोस्साज के पास जाकर उन्होंने फ़क़ीरी की दीक्षा ली।

५. जुन्नेद खैय्यार नोस्साज के कुटुम्बी थे। खैय्यार के मन में उनके प्रति बहुत अधिक सम्मान था। उन्होंने सबली को उनके पास भेजा। सबली ने जुन्नेद के पास जाकर कहा—आपके पास ईश्वर के प्रेम का मोती है, कृपाकर वह मुझे दें। अगर उसे ख़ैरात में नहीं दे सकें तो मोल लेकर बेच दें।

जुन्नेद बोले—मेरी धारणा है कि उस मोती को ख़रीदने की ताक़त तुम्हारे में नहीं। अगर मैं उसे तुम्हें ख़ैरात में दे दूँगा तो तुम उसको सँभाल कर नहीं रख सकोगे, खो बैठोगे। हिम्मत करके बहादुर की तरह साहस के सागर में कूद पड़ो और धैर्य श्रद्धापूर्वक प्रयत्न करो

तो शायद उस मोती को पा लो।

कहिए, उसके लिए मुझे क्या करना होगा?

जाओ, एक वर्ष तक गंधक बेचो।

सबली उनके हुक्म के मुताबिक एक वर्ष तक गंधक बेचने का काम करते रहे। वर्ष के अंत में जाकर उन्होंने फिर प्रश्न किया—अब क्या करूँ?

"काम-धंधे से हाथ खींचकर एक वर्ष तक घर-घर भीख माँगो," जुन्नेद ने आज्ञा दी।

सबली ने आज्ञा का पालन किया; पर कोई भीख देता ही नहीं था। जुन्नेद के पास आकर उन्होंने अपना हाल कह सुनाया। जुन्नेद ने उन्हें समझाया—देखा भाई? लोग तुम्हारी तिल-मात्र भी चिंता नहीं करते। इसलिए तुम्हें भी उनमें ज़रा-सी भी आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। बाद में वे बोले—अब तुम नेहावन्द जाओ। तुमने अमीरी और हाकिमी भोगी है। उस समय जिस किसी के साथ तुमने ज़ुल्म अथवा अनुचित व्यवहार किया था, उन सबसे जाकर क्षमा माँगो।

गुरु की आज्ञा पाकर वे नेहावन्द गए और द्वार-द्वार पर भटककर सबसे क्षमा माँगने लगे। किसी एक को उन्होंने पहले पीड़ित किया था, उसके घर पर न मिलने के कारण वे उससे क्षमा न माँग सके। उसका प्रायश्चित्त उन्होंने ग़रीबों को एक लाख तांबे के सिक्के बाँटकर किया। चार वर्ष तक वे माफी माँगते फिरते रहे। फिर भी जुन्नेद ने उनके अहंकार को पूरी तौर से दूर नहीं हुआ देखकर एक वर्ष तक और भीख माँगने का उन्हें आदेश दिया।

सबली ने स्वयं कहा है—मैंने और एक वर्ष के लिए द्वार-द्वार पर माथा टेककर भीख माँगी। भीख में जो कुछ मिल जाता गुरु के सामने उपस्थित करता और वे उसे ग़रीबों को बाँट देते। हरएक रात वे मुझे भूखा ही रखते। इस प्रकार एक वर्ष बीत जाने पर उन

गुरु ने मुझे एक वर्ष तक धर्म-प्रेमी साथियों की सेवा करने का आदेश दिया।

सबली ने गुरु के पास रहकर उनके धर्म-बंधु अनुयायियों की एक वर्ष तक सेवा की। उसके बाद जुन्नेद ने उनसे प्रश्न किया—सबली! अब तुम्हें अपने जीवन का क्या मूल्य मालूम देता है?

सबली—मैं अपने आपको सबसे अधम मानता हूँ और देखता हूँ।

जुन्नेद—जाओ, अब तुम्हें सच्चे ज्ञान की प्राप्ति हुई है।

सबली बच्चों को मीठे का और बड़े बूढ़ों को सोने चाँदी का लालच देकर उनसे 'अल्लाह-अल्लाह' कहलाते। कुछ समय के बाद उन्हें इसकी निरर्थकता मालूम होगई और अब वे नंगी तलवार हाथ में लेकर कहने लगे कि जो कोई अल्लाह का नाम लेगा उसकी वे गर्दन काट डालेंगे।

किसी ने उनसे पूछा—जिस नाम के लिए आप आज तक मीठा, सोना, चाँदी बाँटते थे उसी नाम के लिए आज आप लोगों के सिर काटने के लिए तैयार हैं?

सबली—मैं समझता था कि वे लोग सच्चे मन से अल्लाह का नाम लेते होंगे; पर वे तो अल्लाह का नाम लेते थे बेइज़्ज़ती और मज़ाक के साथ। ऐसे अपवित्र मनोभाव को मैं नहीं सह सकता।

जिस किसी जगह ईश्वर का नाम सुनाई देता वहाँ वे सिर झुका-कर वन्दना करते। एक दिन उन्हें अन्तर्ध्वनि सुनाई दी—सबली! तू नाम का और कितने दिनों तक आशिक रहेगा? अब तो उस नामवाले की खोज कर।

यह सुनते ही उनके हृदय में प्रभु-प्रेम की तरंगें उछलने लगी और वे बहुत ही व्याकुल होकर पास की नदी में कूद पड़े। वे डूबे नहीं, नदी की ऊँची तरंगों ने उन्हें किनारे पर ला पहुँचाया। उसके बाद अपने प्यारे के विरह में वे एक बार धधकती अग्नि मे जा गिरे। वहाँ भी

ईश्वर की कृपा से उनका बचाव हुआ। इस प्रकार अनेक वार मौत का सामना करके भी वे मरे नहीं। ईश्वर ने उनके जीवन की रक्षा की। धीरे-धीरे उनकी व्याकुलता बढती गई और वे पुकार-पुकारकर कहने लगे—अरे ! जिसे पानी, अग्नि, पर्वत और हिंसक जीव भी नहीं मार सकते वह अब क्या करे ?

'जो मनुष्य प्रभु-प्रेम से घायल हुआ है उसे दूसरा कोई घायल नहीं कर सकता है,' किसी अज्ञातवाणी से उन्हें उत्तर मिला।

वे प्रभु-प्रेम में इतने पागल होगए थे कि दस वार उन्हें साँकलों से बाँधकर रखना पड़ा था। वे किसी भी तरह शान्त नहीं हो पाए तो पागलों के शफ़ाख़ाने में भेज दिए गए। वे वहाँ क़ैदी की तरह रखे गए और लोग सबली के पागलपन की चर्चा करने लगे। पर सबली कहते—हाँ, तुम लोगों की नज़र में मैं और मेरी नज़र में तुम लोग पागल हो। मैं तो चाहता हूँ कि ईश्वर दया करके मेरे इस पागलपन को बढ़ाता ही रहे।

एक दिन कुछ आदमी उनके पास आए। उनसे उन्होंने पूछा—तुम लोग कौन हो ?

'हम लोग आपके सम्बन्धी हैं,' उत्तर मिला।

उत्तर सुनते ही सबली पत्थर उठाकर उनकी ओर फेंकने लगे। पत्थरों की मार से वे लोग भाग खड़े हुये। सबली ने पुकारकर कहा—अरे झूठो ! मेरे सम्बन्धी होने का दावा करके मेरी इतनी सी ज़्यादती भी नहीं सह सकते ?

एक दिन दोनों छोरों पर से जलती हुई लकड़ी हाथ में लेकर उन्होंने कहा—एक तरफ़ स्वर्ग और दूसरी ओर नरक प्रज्वलित हैं। इसीलिए लोग स्वर्ग के लोभ से और नरक के भय से ईश्वर की सकाम भक्ति करते हैं, इस सकाम भक्ति को छोड़कर निष्काम भक्ति करना सीखना चाहिए।

कई दिन तक सबली पेड़ की डाली पर चढ़कर हू हू हू हू...... करते रहे । किसी ने उनसे इसका कारण पूछा, तो उन्होंने कहा—एक पंखी इस झाड़ पर बैठकर कू-कू......पुकार रहा है, मैं भी उसकी तान में तान मिला रहा हूँ । जबतक वह कू-कू करता रहेगा, तबतक मैं भी हू-हू करने से नहीं रुकूँगा ।*

ईद के दिन वे उदासी के काले कपड़े पहनते । किसी ने उनसे पूछा—ईद का त्योहार होने पर भी आपने काले कपड़े क्यों पहने ?

उन्होंने जवाब दिया—ये सब लोग ईश्वर-विमुख हैं । ये लोग प्रभु का स्मरण न करके तुच्छ दुनिया का सुख भोगते हैं । इन लोगों की ऐसी दुर्दशा देखकर मैं ग़मगीन होकर ये उदासी के कपड़े पहनता हूँ ।

जीवन के प्रारम्भिक भाग में वे काले कपड़े ही पहना करते थे, पर नवजीवन की प्राप्ति के बाद उन्होंने वह पोशाक छोड़ दी थी ।

साधना की प्रथमावस्था में वे रात्रि के समय आँखों में नमक डालकर नींद दूर किया करते थे । जुन्नेद ने इसका कारण पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया—सत्य प्रकट हुआ है और उसके तेज़ को सहने की मुझमें शक्ति नहीं है । घबड़ाकर मैं ऐसा इस आशा से करता हूँ कि थोड़ा समय भी आत्म-संयम में अधिक बीते तो ठीक ।

एक दिन जुन्नेद के साथी सबली की बड़ाई उनके सामने ही करने लगे । उन्होंने कहा—सबली के समान सत्य-निष्ठ, प्रभु-प्रेमी और उच्च आशयवाले महात्मा इस दुनिया में मिलने मुश्किल हैं ।

जुन्नेद ने इसका विरोध करते हुए कहा—यह तुम्हारी भूल है । तुम जो बड़ाई कर रहे हो, वह ठीक नहीं । इतना कहकर उन्होंने किसी मिस से सबली को वहाँ से बाहर भेज दिया और कहा—तुम बड़ाई

---

*फ़ारसी में कू-कू का अर्थ है कहाँ है, कहाँ है ? और अरबी में हू-हू का अर्थ है वह यहाँ है ।

करके सबली को घायल कर रहे थे। उन घावों से वह कहीं मर न जाय, इसीलिए मैंने उसे बाहर भेजकर बचाया है।

साधना के लिए सबली एक खाई में जा बैठते थे और हाथ में लकड़ी रखते थे। साधना करते-करते यदि आलस्य आ घेरता, तो लकड़ी से अपने शरीर को पीटते। कभी-कभी तो वे अपने आप को इतना पीटते कि लकड़ी ही टूट जाती। लकड़ी के टूट जाने पर वे हाथ पाँव पीटने लग जाते।

एक दिन सबली ने नया कपड़ा पहना; पर थोड़ी ही देर में उसे उतारकर उन्होंने जला डाला। लोगों ने तर्क किया कि सम्पत्ति का नाश करना शास्त्र में निषिद्ध है।

सबली—ईश्वर का कहना है, यदि तेरा मन मुझे छोड़कर दूसरी चीज़ पर आसक्त होगा, तो मैं तुझे उस चीज़ के साथ ही अग्नि में जला डालूँगा। मेरे मन में इस कपड़े का मोह होगया था, उसीसे दुःखित होकर मैंने इस कपड़े को जला डाला है।

एक दिन सबली ने बाज़ार में जाकर डेढ पैसे में एक सूफ़ी की पुरानी कफ़नी और आधे पैसे में पुरानी टोपी ख़रीदी। कफ़नी और टोपी पहनकर वे ज़ोर-ज़ोर से कहने लगे—अहो! दो पैसे में सूफ़ी को ख़रीद लेने के लिए कोई तैयार है?

उन्नत जीवन का लाभ पाकर सबली उपदेश देने और उत्तम तत्त्वों का प्रचार करने लगे। हरएक बात का रहस्य साधारण लोगों को सुनाने का जुन्नेद ने विरोध किया। इस पर सबली बोले—बोलनेवाला मैं हूँ और सुननेवाला भी मेरे सिवा दूसरा कौन है? जो कुछ बोला और सुना जाता है वह सब ईश्वर की ओर ही से तो आता है। सभी कुछ उस ईश्वर में से आता है और उसी में चला जाता है। इसके बीच में सबली क्या चीज़ है?

जुन्नेद—ऐसा है तो तुम्हारे लिए सर्वसाधारण को उपदेश उचित ही है।

एक दिन सबली सभा में बार-बार "अल्लाह-अल्लाह" का उच्चारण कर रहे थे। इतने में एक फ़क़ीर पूछ बैठा—'ला इल्लाहा इलिल्ला!' क्यों नहीं बोलते? सबली ने उत्तर दिया—मुझे डर मालूम होता है कि ला का उच्चारण करने के बाद अल्लाह के नाम तक पहुँचने के पहले ही कहीं मेरा प्राण न निकल जाय! इस क्षणभंगुर शरीर का भरोसा ही क्या?

इस बात का उस फ़क़ीर पर ऐसा असर पड़ा कि तुरंत कँपकँपी आकर उसके प्राण निकल गये। फ़क़ीर के सगे संबंधी दौड़े आए और नाराज़ होकर सबली को पकड़कर इन्साफ़ कराने ले चले। सबली अपनी भावना में मस्त थें। उसी हालत में वे न्यायाधीश के सामने लाए गये। फ़क़ीर के संबंधियों ने सबली पर हत्या का आरोप लगाया।

न्यायाधीश ने सबली से पूछा—तुम्हें कुछ कहना है?

सबली बोले—एक प्राण था, वह परमेश्वर के दर्शन को बाट देखता-देखता अंत में प्रेम की धधकती अग्नि में कूद पड़ा। मनुष्य जीवन के गुण दोषों और इस दुनिया के संबंधों से वह मुक्त होगया है। उस पर ईश्वर की उस सुन्दर वाणी की बिजली पड़ते ही प्रकाश फैला, देह-पिंजर जल उठा और उसमें का प्राण-पखेरू उड़ गया। सबली का इसमें क्या अपराध?

न्यायाधीश—सबली को यहाँ से जल्दी हटाओ। उसकी बातों से मेरे मनोभावों में और मेरी हालत में बहुत उलट-पलट होने लगा है। मुझे डर है कि कहीं मैं भी बेहोश न हो जाऊँ।

जो कोई सबली के पास आकर उनसे अपने जीवन को सुधारने और धर्म-मार्ग पर चलने की तरकीब पूछता, उससे वे कहते—ईश्वर का सम्पूर्ण विश्वास करके जङ्गलों में भटको। खाली हाथ मक्का की ओर चले जाओ और वहाँ से लौटकर तब मेरे साथ रहने के लिए आना।

इस प्रकार उपदेश देकर उन्होंने अपने बहुत से शिष्यों को जङ्गलों में भेज दिया था। इस पर किसी ने उनसे पूछा—महात्मन्! आप ऐसा करके तो उनकी जान जोखिम ही में डालते हैं।

सबली—नहीं यह बात नहीं है। कहीं उनका लक्ष्य मैं ही न बन जाऊँ, इसके लिए मैं ऐसा करता हूँ। कहीं मैं उनका लक्ष्य बन गया, तो मैं जड़ मूर्त्ति बन जाऊँगा और वे मेरे पूजक। ईश्वर का विश्वास किए बिना यदि वे मेरा आसरा मान बैठेंगे, तो अपनी पूजनीया प्रतिमा के स्थान में वे मुझे बैठा लेंगे और उससे बड़ा अनर्थ होगा। वे लोग मेरे पास आते हैं प्रभु को खोजने के लिए। उस खोज के रास्ते ही में यदि उनका अन्त होगया, तो वे अपने लक्ष्य पर पहुँच ही जायेंगे, अथवा उस यात्रा से सकुशल लौट आए, तो उसकी साधना उन्हें इतना पवित्र बना देगी कि वैसी पवित्रता मेरे पास दस वर्ष तक रहकर भी वे नहीं पा सकते।

एक दिन सबली ने बहुत-से विषयासक्त धनवानों को देखा। वे मौज-शौक में समय काट रहे थे। उन्हें देखकर वे ज़ोर से चिल्ला उठे, "अफसोस! अफसोस! इन लोगों की ज़िन्दगी के बारे मे लाखों बार अफसोस! ये लोग ईश्वर-स्मरण में आलसी बन रहे हैं, इसीलिए विषयी संसार उनसे चिपका हुआ है।

एक दिन कई लोग एक शव को ले जा रहे थे और उनके पीछे-पीछे एक आदमी कहता जा रहा था—हाय रे! बेटे का विछोह! उसे देखकर सबली भी अपना सिर पीटकर चिल्लाने लगे—हाय रे! प्रभु का विछोह!

एक दिन सबली के पास हरी लकड़ी जल रही थी। आगे से लकडी में लपट निकल रही था और पीछे पानी छनछना रहा था। यह देखकर उन्होंने अपने साथियों से कहा—भाइयो! तुम कहते हो कि हृदय में ईश्वर के प्रेम की अग्नि जल रही है; यदि यह

बात सच है, तो इस लकड़ी की भाँति आँखों से आँसू क्यों नहीं टपकते ?

९. एक दिन सबली पागल-से होकर जुन्नेद के घर पर आए। वहाँ जुन्नेद की स्त्री अपने बाल सँवार रही थीं। सबली को देखकर वे अपना तन ढकने की उतावली करने लगीं तो जुन्नेद बोले—ज़रा भी न घबड़ाओ, जैसी हो वैसी बैठी रहो। प्रभु के प्रेम में मस्त जीव नरक की चीज़ों की ओर आँख उठाते ही नहीं, उनकी नज़र तो रहती है उस दूसरी दुनिया की चीज़ों पर।

एक फ़क़ीर खिन्न चित्त से सबली के पास आया और बोला—महात्मन् ! मेरी विनती सुनें, मुझे उपाय बतायें। मैं बहुत ही दुखी हो रहा हूँ, निराश हो रहा हूँ। फ़क़ीरी छोड़कर क्या मैं अपनी असली हालत को वापस लौट जाऊँ ?

सबली—फ़क़ीर ! क्या तुम फिर नास्तिकों की टोली में जा मिलोगे ? 'ईश्वर की करुणा से निराश नहीं होना' क्या ये वचन तुमने नहीं सुने ?

फ़क़ीर—आपके उपदेश से मेरा चित्त स्थिर होगा।

सबली—तुम प्रभु को देखने की इन्तज़ारी में हो, पर क्या ये वचन नहीं सुने कि नास्तिक के सिवा दूसरा कोई ईश्वर की कृपा पर अविश्वास नहीं करता ?

एक दिन तपस्वी सबली अपने साथियों के साथ जङ्गल में चले जा रहे थे। वहाँ उन्होंने आदमी की एक खोपड़ी पड़ी देखी। उस खोपड़ी पर लोक और परलोक को चूर्ण करनेवाला लिखा मालूम देता था। उसे देखकर वे पुकार उठे—यह खोपड़ी तो किसी महात्मा की अथवा किसी पैग़म्बर की होनी चाहिए।

एक ने पूछा—आपने यह कैसे जाना ?

उन्होंने उत्तर दिया—यह मस्तक ज़रूर किसी महापुरुष का है;

कारण, इस लोक और परलोक को पूर्ण किए बिना उस ईश्वर के दरबार में जा ही नहीं सकते, वही सत्य इस खोपड़ी पर अंकित है।

एक बार सबली बीमार पड़े। वैद्य ने उनसे कहा—धैर्य रखना। उन्होंने उत्तर दिया—किस बात का धैर्य रखूँ? जीविका के बारे में आप धैर्य रखने के लिए कहते हों तो जिस चीज़ की मुझे ज़रूरत है, ईश्वर ने मुझे वे दे रखी हैं; और जो उसने नहीं दी हैं उनकी मुझे ज़रूरत नहीं है। मेरे अधैर्य का क्या कारण हो सकता है?

एक बार तपस्वी सबली बहुत दिनों तक ग़ायब रहे। बहुत कुछ खोजने पर भी उनका पता नहीं लगा। बहुत दिन बीत जाने पर वे एक दिन नपुंसकों की बस्ती से बाहर आते दिखाई दिए।

लोगों ने पूछा—महात्मन्! इनके साथ रहना क्या आपको शोभा देता है?

सबली—हाँ, यही मेरे लिए उचित स्थान था। इस दुनिया में जिस तरह नपुंसक न स्त्री है न पुरुष, उसी तरह धर्मराज्य में मैं न स्त्री हूँ न पुरुष!

किसी ने उनसे पूछा—परलोक का भय कैसे दूर हो?

सबली—संसार की आसक्ति से दूर हो जाओ, परलोक का भय अपने आप दूर हो जायगा।

सबली ने एक बार कहा था—हे प्रभो! यदि तू आकाश में मेरी फाँसी लटकाये, पृथ्वी को मेरी बेड़ियाँ बनाये और दुनिया के सारे आदमियों को मेरा ख़ून चूसने के लिए कहे तो भी मैं तुझ से लेश-मात्र भी विमुख नहीं होऊँगा।

मृत्यु-काल समीप आने पर सबली की आँखों ने काम देना बंद कर दिया था। पागल होकर वे अपने सिर पर धूल डालने लगे थे और ऐसी व्याकुलता दिखाने लगे थे, जिसका वर्णन नहीं हो सकता। दूसरी बातों के साथ वे यह भी कहते सुने जाते—दो प्रकार की हवा चल रही

है, एक स्नेह की दूसरी कोप की। जिसकी ओर स्नेह-वायु का प्रवाह है, वह सहज ही अपने लक्ष्य को प्राप्त होता है; पर जब कोप-वायु बहती है, तब ऐसी धूल उड़ती है कि कोई दिशा दिखाई नहीं देती। मुझे स्नेह-वायु मिलती है, इसीलिए मैं ये सब दुःख सहन कर सकता हूँ। इसके बदले यदि कोप वायु आकर मुझे घेर ले तो उसके प्रबल आघातों से ऐसा दुख हो कि उसके आगे ये सब दुख दब जायँ।

जिस रात को उन्होंने प्राण-त्याग किया, उस रात को वे बार-बार ये वचन कह रहे थे—जिस घर में तुम्हारा निवास है, उस घर में दीए की क्या ज़रूरत है? जो आँखें तेरी सुन्दरता से लुभा गई हैं, उन्हें किस बात का डर है?

बहुत-से लोग उनके पास प्रार्थना के लिए इकट्ठे हुए। उस समय उनके प्राण नहीं गए थे। लोगों को देखकर उन्होंने कहा—ओ हो! मुर्दों की एक टोली एक जीते जागते के लिए नमाज़ पढ़ने आई है! कैसे अचरज की बात है यह!'

उनके साथी बोले—'ला इल्लाहा इल्लिल्ला'* का कल्मा पढ़ें। बात सच्ची है तो फिर 'दूसरा कोई नहीं' कहना-सुनना किस मतलब का? बिना कल्मा पढ़े भी चलेगा।

तो भी एक आदमी ऊँचे स्वर से कल्मा पढ़ने लगा। उसे सुनकर सबकी बोल उठे—कैसे अचरज की बात है, मरा हुआ जीते को पढ़ा रहा है!

थोड़ी देर बाद किसी ने उनसे पूछा—क्यों महात्मन्! अब कैसी हालत है?

'सखा से मिल गया हूँ', कहकर उन्होंने तुरंत प्राण-त्याग कर दिए!

---

* अर्थात्, ईश्वर के सिवा दूसरा उपाय नहीं।

किसी ने एक बार वे स्वप्न में दिखाई दिए। स्वप्न देखनेवाले ने उनसे पूछा—परलोक के बाज़ार में आपने क्या देखा?

उन्होंने कहा—उस बाज़ार में जले दिलों ही की पूछ है। उन जले दिलों के सिवा और किसी से वहाँ सहानुभूति नहीं पाई जाती। वहाँ जले दिलों पर दवा का लेप किया जाता है; टूटे हुए दिल जोड़े जाते हैं। और दूसरी किसी बात पर वहाँ ख़याल ही नहीं किया जाता।

उपदेश-वचन

१—सच्चा सूफ़ी ईश्वर की गोद में खेलता-मुस्कराता सुन्दर बालक है। ईश्वर की गोद में सूफ़ी बिना किसी संकोच के खेलता-कूदता और गाता-बजाता रहता है।

२—अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु का अपने परम प्रिय सखा परमात्मा के लिए परित्याग करो, यही प्रभु-प्रेम का लक्षण है।

३—जो मनुष्य प्रभु-प्रेम का विरोध करता है, प्रेम करने योग्य परमात्मा को छोड़कर दुनियावी चीज़ों में फँसा रहता है, उस परमेश्वर को छोड़कर दूसरों को खोजता फिरता है, वह तो उपहास के योग्य ही है।

४—गहरे उतरकर तुम उसकी खोज नहीं करते, इसीलिए तो उसे नहीं पा सकते।

५—ईश्वर जब किसी की विपत्ति टालना चाहता है, तो उसे त्यागी तपस्वी का जीवन प्रदान करता है।

६—मनुष्य ने प्रभु को देखा नहीं है, इसीलिए वह दुनियावी चीज़ों के पीछे दौड़ता फिरता है। उसने उसे देख लिया होता, तो वह दूसरी चीज़ों के पीछे क्यों दौड़ता फिरता?

७—जिसने ईश्वर को पा लिया है, वह दूसरों का उपदेशक नहीं बनता; वह ईश्वर के सिवा किसी दूसरे को अपना रक्षक, शिक्षक अथवा मार्ग-दर्शक नहीं बनाता।

८—जिस प्रकार वर्षा-ऋतु के आने पर जल बरसता है, बिजली चमकती है, मेघ गर्जना करते हैं, हवा ज़ोर से चलने लगती है, फूल खिल उठते हैं और पक्षी ख़ुश होकर गाने लगते हैं; उसी प्रकार परमात्मा के दर्शन हो जाने पर आनन्दित होकर नेत्र जल-वर्षा करने लगते हैं, ओठ मृदु हास्य करने लगते हैं, अंतर की कली खिल उठती है, आनन्द की हवा से मस्तक हिलने लगता है, प्रति क्षण उस प्रिय सखा के नाम की गर्जना होने लगती है और प्रेम की मस्ती प्रभु के गुणगान में मशग़ूल कर देती है।

९—सत्य ज्ञान क्या है? परमात्मा और अपने स्वरूप को ठीक-ठीक समझ लेना।

१०—विश्वस्त निःशंक ज्ञान कौन-सा है? वह ज्ञान जो प्रभु प्रेरित पैग़म्बरों और अनुभवी महात्माओं की वाणी के द्वारा प्राप्त हुआ है।

११—एक निष्काम मनुष्य का किसी भी प्रकार पतन नहीं होता; किन्तु एक सकाम व्यक्ति की बहुत शीघ्र अधोगति हो जाती है।

१२—जो मनुष्य ईश्वर के सिवा और किसी चीज़ से संतोष नहीं मानता वही सच्चा त्यागी फ़क़ीर है।

१३—एक वैरागी के चढ़ने के लिए चार सौ सीढ़ियाँ होती हैं। दुनिया की अपनी सारी सम्पत्ति का त्याग करके भी यदि मन में यह भाव आजाय कि खाने-पीने के लिए टुकड़ा बच रहता तो ठीक होता, तो यही समझना चाहिए कि वह त्यागी अभी पतली सीढ़ी पर ही है, उसके वैराग्य के पूर्ण होने में बहुत देरी है।

१४—प्रभु की पूजा करना ही सच्चा कर्त्तव्य है। उसकी खोज करना ही सच्चा रास्ता है, उस परमात्मा का दर्शन होना ही एक सच्ची बात है।

१५—परमात्मा के दर्शन में लीन होकर उसका स्मरण करना भी भूल जाओ, यही ऊँचा से ऊँचा स्मरण है।

१६—वैराग्य है निवृत्ति, संसार है शून्य; उस शून्य के प्रति वैराग होना ही निवृत्ति है।

१७—प्रभु-स्मरण के लिए संसार को भूल जाओ और परलोक की बात भी मत सुनो।

१८—सृष्टि में से मन को खींचकर उसे स्रष्टा मे लगाना भी वैराग्य ही है।

१९—दुनियावी चीज़ों और दुनिया के लोगों पर आसक्त रहना नीचता है।

२०—ईश्वरेतर किसी विषय में जीभ हिलाना दुश्मन को मदद देना है।

२१—ईश्वरेतर सब चीज़ों से परे रहना ईश्वर के नज़दीक जाना है।

२२—लोक-कल्याण को अपने कल्याण से भी अधिक मानना ही सच्ची साधुता, महत्ता और उदारता है।

२३—धन-दौलत की ओर नज़र न डालकर सब के स्वामी परमात्मा की ओर दृष्टि रखना ही सच्ची कृतज्ञता प्रदर्शित करना है।

२४—इस समय तुम्हें जो क्षण प्राप्त है, वही तुम्हारा सबसे क़ीमती धन है। आध्यात्मिक जगत में काल नाम की वस्तु ही नहीं है, इसीलिए भूत व भविष्य भी नहीं हैं।

२५—जगत में ऐसे भी बहुत-से लोग हैं, जो उपासना करते हैं, नियमानुसार शास्त्र सुनते हैं तो भी उनकी उपासना आदि का कोई फल नहीं होता।

२६—जिस समय मैं ईश्वर के ध्यान-भजन में तन्मय—तद्रूप हो जाता हूँ, तभी मैं कृतार्थ होता हूँ।

२७—यदि मैं ईश्वर की सत्ता और सामर्थ्य को याद रखता, तो

ईश्वर के सिवा और किसी के भय को अपने मन में जगह न करने देता।

२८—सारे संसार का एक ग्रास वनाकर भी यदि वालक के मुँह में दे दिया जाय, तो वह भूखा ही रहेगा। इस संसार में ऐसे वालक सरीखे बहुत-से प्राणी देखकर मुझे उन पर बहुत दया आती है।

२९—यदि सारा संसार भी मेरे अधिकार में होता, तो मैं उसे एक नास्तिक अथवा लोभी को दान में दे देता और वह उसे स्वीकार कर लेता, तो मैं उसका अपार उपकार मानता।

३०—दुनियावी चीज़ों में ऐसा ताक़त नहीं कि वे प्रभु-प्रेमी पर अधिकार जमा सकें।

२६—अबु इसाक इब्राहिम गारजोनी

तपस्वी अबु इसाक इब्राहिम ऐसे थे कि उनके पवित्र चरित्र और सद्गुणों का पूरा वर्णन किया ही नहीं जा सकता। अध्यात्म-विद्या में वे निपुण थे। धर्म-विधियों और शास्त्राज्ञा के अनुसरण में उनका व्यवहार विशेष प्रशंसनीय था। साधना और सूक्ष्मज्ञान के वे विशेष अधिकारी थे। वे सब तपस्वियों के आदर्श थे। अनेक साधु-महात्माओं का उन्होंने सत्संग किया था। वे गारजा के रहनेवाले थे।

अबु इसाक के माता-पिता इस्लाम-धर्म के अनुयायी थे और उनके दादा अग्निपूजक थे। बचपन में पिता ने उन्हें .कुरान पढने के लिए मौलवी के पास भेजा। दादा ने इसका विरोध करते हुए कहा कि हम लोग बहुत ग़रीब हैं। बालक को ऐसी शिक्षा देनी चाहिये, जिससे वह दो पैसे पैदा कर सके। किन्तु अबु इसाक के मन में .कुरान सीखने की लगन लगी थी। वालक की ऐसी लगन देखकर सब उसकी इच्छा से सहमत होगए। पढने में उन्होंने ऐसा मन लगाया कि सब विद्यार्थियों से ऊँचे होगए। उन्होंने स्वयं कहा है—जब मैं पढ़ने में लगा था, किसी साधु पुरुष से

धर्म-दीक्षा ग्रहण करने की मेरी इच्छा हुई। मन ही मन नम्र भाव से प्रार्थना की थी—हे प्रभो ! दया करके मुझे बताओ अब्दुल्ला ख़फ़ीफ़, हारस महासवी और अबु उम्मर इन तीन में से किसे गुरु बनाऊँ ?

"उसके बाद एक रात को मैंने स्वप्न में देखा कि एक आदमी ऊँट पर चढ़कर मेरे पास आया है। ऊँट की पीठ पर पुस्तकों का बोझा लदा है। उस आदमी ने मुझसे कहा—इन ग्रंथों के मालिक महात्मा अब्दुल्ला ख़फ़ीफ़ ने ये सब तुम्हारे पास भेजे हैं। मैं चमककर जाग उठा और मुझे मालूम हुआ कि मैं अब्दुल्ला ख़फ़ीफ़ के चरणों में अर्पित किया गया हूँ। थोड़ी देर बाद शेख़ हुसेन ने आकर वे पुस्तकें नीचे उतारकर मेरे पास रख दीं। मेरा विश्वास और भी दृढ़ होगया। मैंने अब्दुल्ला ख़फ़ीफ़ का अनुसरण किया और उनके बताए हुए धर्म-मार्ग पर चलने लगा।"

एक बार अबु इस्हाक को उनके पिता ने कहा—हम लोग ग़रीब हैं, जितने अतिथि आते हैं उन सब का यदि हम सत्कार करेंगे, तो घर पूरा हो जायगा।' यह सुनकर इसाक कुछ न बोले। थोड़े दिन बाद रमज़ान का महीना आया। एक दिन फ़क़ीरों का एक झुण्ड उनके आँगन में आ उपस्थित हुआ, पर घर में एक भी दाना नहीं था। रात का समय था, क्या किया जाय ? इसाक बहुत ही चिंता में थे, उसी समय एक आदमी रोटियों की दो टोकरी, सूखी दाख और अंजीर उन्हें भेंट देने के लिये ले आया और बोला—मेरे मालिक ने ये चीज़ें आपके पास फ़क़ीरों और ग़रीबों को खिलाने के लिये भेजी है, मेहरबानी करके मंज़ूर करें।

ऐसी अचरज भरी घटना देखकर इसाक के पिता के मन में हिम्मत आगई। उन्होंने फिर कभी पुत्र को अतिथि-सत्कार करने से नहीं रोका। इसाक को उत्साहित करते हुये उन्होंने कहा—वत्स ! जितनी होसके लोक-सेवा करो, ईश्वर तुम्हारा कल्याण करेगा।

तपस्वी अबु इसाक जब मक्का की यात्रा के लिये गये थे, तब बसरा में बहुत-से यात्रियों से उनकी भेंट हुई। खाने-पीने की बहुत-सी सामग्री

उनके साथ थी, बहुत-सा मांस भी उनके पास था। इसाक को मांस खाने से परहेज़ न था, पर उन यात्रियों ने यही सोचा कि तपस्वी इसाक मांस नहीं खाते होंगे। यात्रियों के मन की बात जानकर इसाक ने सोचा कि जब ये लोग उनके बारे में इतना अच्छा विचार रखते हैं, तो उन्हें ज़रूर वैसा होना चाहिये। उसी दिन से उन्होंने मांस-भक्षण न करने की प्रतिज्ञा की। खजूर और शक्कर न खाने का भी उन्होंने संकल्प किया था। एक बार वे रोग से पीड़ित थे। वैद्य ने शक्कर में दवा देनी चाही; पर उन्होंने वैसा नहीं किया। वे अपने शिष्यों को कहा करते थे—ईश्वर के नाम पर किसी चीज़ का नियम ज़रूर रखना।

तपस्वी इसाक अपने गुज़रान के लिये थोड़ा अन्न संग्रहीत रखते और उसे अपनी पवित्र भूमि में बोते, जिससे ज़रूरत के मुआफ़िक उन्हें अन्न मिल जाता। वे बहुत ही सादे कपड़े पहना करते। अपने खेत में कपास बोते और उसकी रूई के कपड़े पहनते, कभी-कभी ऊनी कपड़े भी पहना करते थे। उनके कुटुम्ब की स्थिति बहुत ही ख़राब थी। उन्हे फटे-पुराने कपड़े पहनकर और कई बार भूखे ही रह जाना पड़ता था।

एक दिन वे उपदेश दे रहे थे। बहुत-से श्रोता उपस्थित थे, जिनमें एक मौलवी भी थे। उनका उपदेश सुनकर लोग मुग्ध होगये। मौलवी मन ही मन विचारने लगे कि मैंने अनेक शास्त्रों का अभ्यास किया है, इसाक से मैं कहीं अधिक विद्वान् हूँ, तो भी लोग मेरा आदर न करके इनका आदर इतना अधिक क्यों करते हैं? तपस्वी इसाक़ मौलवी के इस मनोभाव को ताड़ गये। पास ही जलते हुये दीपक की ओर इशारा करके वे बोले—भाइयो! इस दीए के प्याले में जल और तेल दोनों भरे हैं। उसमें का जल तेल से कहता है कि मैं तुमसे श्रेष्ठ हूँ फिर भी तू मेरे सिर पर सवार है। तेल जवाब देता है कि मैंने बहुत तकलीफ़ें सही हैं, तिल के रूप में धरती में गड़ा रहा, उगा, काटा गया,

कुचला गया, पेरा गया और अब लोगों को प्रकाश देने के लिये अग्नि में जल रहा हूँ। तुम्हारी अपेक्षा मुझमें यही विशेषता है। इतना कहकर इसाक़ नीचे उतरे। वह मौलवी दौड़कर उनके चरणों में गिर पड़े और पछतावा करके माफ़ी माँगने लगे।

एक दिन उनके मन में यह विचार उठा कि एक ओर दान लेकर दूसरी ओर उसे फ़क़ीरों को बाँटने के काम से मुझे क्या प्रयोजन? कहीं गुनहगार बनकर मुझे परलोक में इसका दण्ड तो नहीं भोगना पड़ेगा? इस तरह सोचते-विचारते उन्हें नींद आगई। स्वप्न में उन्होंने देखा, पैग़म्बर मुहम्मद साहब उनसे कह रहे हैं—इसाक इब्राहिम! तू पूरा निःस्वार्थी है; दान लेता और बाँटता रहा। इस विषय में तुझे डरने की ज़रूरत नहीं।

एक बार दो आदमी उनके पास आये। दोनों दुनियादारी में फँसे थे। तपस्वी इसाक खड़े उपदेश दे रहे थे। एक जगह उन्होंने कहा—जो मनुष्य मेरे पास आये, उसके मन में ईश्वर के प्रति विश्वास और दुनिया के प्रति वैराग्य अवश्य होना चाहिये। जो आदमी यहाँ दुनियादारी और विषय-वासना में प्रीति रखकर आता है, उसे कोई लाभ नहीं हो सकता।

एक बार अमीर अब्बुल अफ़ज़ल उनके दर्शन करने के लिये आये। तपस्वी इसाक ने उनसे शराब छोड़ने का आग्रह किया, तो अफ़ज़ल बोला—महात्मन्! मैं खखरोल मुल्क के मंत्री की मजलिस में बैठनेवाला हूँ। उनकी मजलिस में शराब का दौरदौरा रहता है। मैं आपके सामने प्रतिज्ञा भी कर लूँगा तो उसका पालन कैसे कर सकूँगा?

इसाक—तब की तब देखी जायगी, अभी तो प्रतिज्ञा करो कि शराब नहीं पीओगे। मजलिस में अगर तुम्हें शराब पीने के लिए दबाया जाय और तुम निरुपाय हो जाओ, तो मेरा स्मरण करना। अबुल अफ़ज़ल उनकी इच्छा के अनुसार प्रतिज्ञा करके लौट गये।

कुछ दिन बाद अफ़ज़ल को मंत्री की हाज़िरी में जाना पड़ा। शराब के प्याले दौड़ने लगे। अपनी बारी आई देखकर अफ़ज़ल ने तुरन्त इसाक को याद किया। सहसा एक बिलाव दौड़ता हुआ आया। उससे टकराकर कई प्यालों की शराब गिर गई। अफ़ज़ल का प्याला भी खाली होगया। इस अद्भुत घटना को देखकर अफ़ज़ल रोने लगे। मंत्री ने रोने का कारण पूछा तो अफ़ज़ल ने सारी हक़ीक़त कह सुनाई। उस घटना से प्रभावित होकर मन्त्री ने भी सदा के लिये शराब छोड़ दी।

एक बार एक पक्षी आकर इसाक के हाथ पर बैठ गया। उसे देखकर वे बोले—यह पक्षी मुझसे डरता नहीं तभी तो मेरे हाथ पर आकर बैठ गया है। दूसरी बार एक हरिण दौड़ता हुआ आकर उनकी गोद में बैठ गया। इसाक ने उसके शरीर पर हाथ फेरकर उसे जंगल में सुरक्षित पहुँचा दिया। एक दिन पींजरे में बन्द एक बाघ मुसाफिरखाने के पास से ले जाया जा रहा था। उसे देखकर तपस्वी इसाक बोल उठे—अरे बाघ! तूने कौन-सा अपराध किया है, जिसके लिये तुझे पींजरे में बन्द होना पड़ा? बाद में वे आस-पास के लोगों को सुनाकर बोले—भाइयो! अपने आपके लिये निश्चिन्त न हो जाना। शैतान के पास फँसाने के लिये बहुत-से जाल हैं। शैतान कई महात्माओं को भी फँसा चुका है। उससे सचेत रहना।

उनके पास आकर किसी ने फ़क़ीरी दिलाने के लिये विनती की। उन्होंने उसे समझाया—भाई, फ़क़ीर अथवा त्यागी बनना बहुत मुश्किल है। फ़क़ीर बनकर तो अन्न-वस्त्र का दुःख और बार-बार अपमान सहना पड़ता है। लोग तुम्हें भिखमंगा कहेंगे, तुम्हें दुतकारेंगे। यह सब सहने की ताक़त है? नहीं है, तो जा लौट जा। अपने दूसरे काम में लगा रह।

एक दिन वे किसी नई जगह गये। बहुत-से लोग उनके दर्शन

करने के लिये इकट्ठे होगये, जिनमें कई बालक भी थे। किसी ने उनसे पूछा—बालक तो अज्ञानी होते हैं, वे आपको क्या पहचानेंगे ?

"रात को जब सब बालक सो जाते हैं, तब मैं उनके कल्याण के लिये प्रार्थना किया करता हूँ," इसाक ने उत्तर दिया।

किसी ने उनसे पूछा—यदि राज्य के अधिकारी और उनके संबंधी आपके उपयोग के लिये कोई वस्तु यह कहकर दें कि न्याय की कमाई है, तो आप उसे ग्रहण करेंगे या नहीं ?

'जो लोग अपने कल्याण ही से विमुख हैं, वे दूसरों का कल्याण कर सकेंगे ? जो अपना कल्याण कर सकते हैं, उन्हीं से दूसरों का भी कल्याण होना संभव है।'

उनका मरणकाल समीप आने पर उनके अनुयायी उनके पास एकत्रित होगये। सबको सुनाकर उन्होंने कहा—इस लोक को छोड़कर मैं जल्दी ही परलोक को चला जाऊँगा। मैंने चार बातें निश्चित की हैं, उनका पालन करते रहना—(१) जो मेरा स्थान ग्रहण करे उसका सम्मानपूर्वक आज्ञा-पालन करना। (२) रोज़ सवेरे क़ुरान का अध्ययन करना कराना। (३) कोई त्यागी अथवा दुःखी यहाँ आये, तो उसका आदर-सत्कार करना और (४) अपने मन को निष्कपट रखना।

वे अपने पास एक किताब रखते थे, जिसमें उन्होंने अपने शिष्यों, बन्धुओं और पश्चात्ताप करनेवालों के नाम लिखे थे। उस किताब को अपने साथ ही क़ब्र में दफ़नाने की आज्ञा दी। उनका देहान्त ७२ वर्ष की उम्र में, हिजरी सन् ४२६ के ज़िल्काद महीने की आठवीं तारीख़ को हुआ था।

उपदेश-वचन

१—जिसका मन खानपान और गहने-कपड़े ही में बसा है, उसकी स्थिति पशु से भी बदतर है।

२—ईश्वर को तो दूर रखकर दुनिया को जिगर से लगाए हो, उसके बदले दुनिया को दूर करो और ईश्वर को जिगर से लगाओ।

३—श्रद्धालु अपने हृदय की आँखों से प्रभु के दर्शन कर सकता है; कारण, परलोक अंतर की ज्योति है और ईश्वर भी अदृश्य है। अदृश्य का दर्शन अदृश्य ही से होना संभव है।

४—ईश्वर के कीर्त्तिन व कथन के माधुर्य में बाधा पहुँचानेवाला काम करना अथवा कहना, ईश्वर ज्ञान के दाता व भोक्ता दोनों को दुःखदायी मालूम देता है।

५—राज के कर्मचारी तो लोगों को शारीरिक अपराधों ही का दण्ड देते हैं; कारण, वे बाहरी कामों ही को देख सकते हैं। परन्तु ईश्वर तो आन्तरिक पापों का भी दण्ड देता है; क्योंकि वह भीतर की छोटी से छोटी बात को भी देखने में समर्थ है।

६—दुनिया की सारी चीज़ों से मुँह मोड़कर एकमात्र प्रभु की ओर लग जाओ। इस दुनिया को आज नहीं तो कल छोड़ना ही है।

७—जो मनुष्य दान देता है पर लेता नहीं, वह उत्तम है; जो दान लेता है और देता भी है, वह मध्यम है; जो दान लेकर उसे दूसरों को देने के बदले अपने लिए भी रख लेता है, वह कनिष्ठ है और जो दान लेता ही है देता नहीं, वह तो अधम है।

८—साधना करते रहो। यदि महापुरुष न भी बन पाओगे, तो कम से कम उनके अनुयायी तो बनोगे ही।

९—शुभ कार्यों में श्रद्धापात्र बंधुओं को तुम आज आगे रखोगे, तो कल ईश्वर भी तुम्हें अग्रसर बनायेगा।

१०—जबतक मनुष्य दुनिया का तुच्छ, क्षणिक और अधोगति करनेवाला स्वाद नहीं छोड़ देता, तबतक वह ईश्वर के गुणानुवाद का उत्तम और उन्नतिदायक स्वाद नहीं पा सकता।

११—ईश्वर अपने भक्तों को एक न एक अच्छी बात देता ही है।

उसने मुझे स्तोत्र-स्तवन की मिठास चखने का स्वभाव दिया है। अपने प्रत्येक भक्त के मन में वह किसी बात पर प्रीति भी देता है। उसने मुझे अपने आप पर प्रीति दी है।

१२—इस दुनिया में करोड़ों मानव प्रभु के उपासक गिने जाते हैं; परन्तु कौन सच्चे उपासक हैं, और प्रभु किनके साथ है? जो ईश्वर से डरकर चलनेवाले और अपने हित का भोग देकर भी दूसरों का हित करनेवाले हैं, वे ही सच्चे उपासक हैं और ईश्वर भी उन्हीं का साथ देता है।

१३—जो एकांत और लोगों के बीच में भी प्रभु का स्मरण करने से न थकते हैं, न उकताते हैं, ईश्वर उनके भी साथ रहता है। किसी काम के लिए ईश्वर की आज्ञा पाकर वे तुरंत उसे करने में लग जाते हैं, और जब निषेध-आज्ञा पाते हैं, तो बिना विलम्ब उस काम से दूर हो जाते हैं।

१४—जिसके मन में काम-वासना प्रबल हो, उसके लिये विवाह कर लेना ही उचित है। ऐसा करने से वह दूसरे पापों और संकटों से बच जाता है। मेरी भी नज़र में अगर दीवार और औरत एक सी न लगती होती; तो मैंने भी विवाह कर लिया होता।

१५—मुझे ऐसा मालूम देता है, मानो मैं नदी में पड़ा हूँ। कभी-कभी मेरे मन में आशा का संचय होता है कि तैरकर पार उतर जाऊँ, तो कभी-कभी मन में बहुत ही निराश हो जाता हूँ।

१६—ईश्वर अपने भक्त से बार-बार कहता है कि तू दुनिया से विमुख हो जा और मेरी ओर आ। और कुछ चाहे जितना करता रह, बिना मेरी ओर आए तुझे सच्ची शांति और सुख नहीं मिलेगा। इसीलिए कहता हूँ, कबतक तू मुझसे भागता फिरेगा? कबतक मुझसे विमुख रहेगा?

१७—हतभागी कौन ? ईश्वर की उपासना और उसके प्रेम का स्वाद चखे बिना ही जो इस लोक से चल देता है वह ।

१८—भाग्यशाली कौन ? ईश्वर की उपासना और उसके प्रेम का स्वाद चखकर जो इस लोक और परलोक में शांति पाता है वह ।

१९—राजा की अवगणना करने पर तो दुनिया की दौलत ही से हाथ धोना पड़ता है; किन्तु सत्पुरुषों की अवगणना करने पर तो यह लोक, परलोक और आंतरिक संपत्ति भी नष्ट हो जाती है ।

२०—दाता की थैली का मुख दान के लिये खुला रहता है, इसीलिये उसके वास्ते स्वर्ग का द्वार खुला रहता है । पर कंजूस की थैली का मुख तो केवल मरने के लिये ही खुलता है, इसलिये उसके वास्ते नरक का द्वार ही खुलता है ।

२१—हे प्रभो ! तूने मुझे अगणित दान दिए हैं, उनमें से तूने मुझे अपना गुणानुवाद और कृतज्ञता प्रदर्शित करनेवाला जो हृदय तथा वाणी दी है, उन्हें मैं सर्वोपरि वस्तु मानता हूँ ।

२२—हे प्रभो ! तू अपार कृपालु है और मैं हूँ दीन दुर्बल दास ! मेरे लिए तो इस जगत में कृतज्ञता का स्थल तू ही है, प्रशंसापात्र भी तू ही है और सारी सम्पत्ति भी तेरी कृपा ही में समाई है ।

२३—जो प्रभु-प्रेमी को पीड़ा पहुँचाता है, वह हमारा साथी नहीं ।

२४—कुटुम्ब, रोगी, प्रभु-प्रेमी और राजा इन चार के पास खाली हाथ नहीं जाना चाहिए ।

२५—यदि तुम ख़ुद समझ रहे हो कि तुम्हारे हाथ विरुद्धाचरण में, जीभ असत्य और परनिन्दा में, और दूसरी इन्द्रियाँ अशुभ काम में लगी हैं तो बताओ प्रभु की आवाज़ तुम्हें कैसे सुनाई देगी ?

२६—सावधान रहना, जो आदमी तुम्हारे आगे दूसरों की निंदा करता है, वह दूसरों के आगे तुम्हारी निंदा ज़रूर करता होगा । ऐसे आदमी की बातों में मत फँसना, नहीं तो बड़ी भारी विपत्ति का सामना करना होगा ।

२७—सदा प्रभु से डरकर चलना और किसी का अहित न चाहना, न करना; कारण, अहित करनेवाले का बदला लेने के लिए ईश्वर किसी न किसी को प्रेरित करता ही है।

२८—जो ईश्वर-प्रेमी होगया, वह संसार-प्रेमी नहीं रह सकता। और संसार-प्रेमी जबतक इस संसार की असारता और उसके दुःखों को नहीं समझ लेता, ईश्वर प्रेमी नहीं बन सकता।

२९—पैग़म्बर मुहम्मद साहब और हज़रत इब्राहिम मूसा और ईशा सरीखे महान् पुरुष भी जबकि ईश्वर से डरकर चले हैं, तो मैं भी उससे क्यों न डरूँ ?

३०—दुनिया के लोग अपने धन-दौलत में मोह रखते हैं, पर मेरा मोह है अपने धर्म-ग्रंथों और प्रभु-स्मरण में।

३१—एक सामान्य मनुष्य भी अपने भाई को मैल से परे रखता है, तो फिर ईश्वर अपने दास को पाप में जाने से क्यों नहीं रोकता ?

प्रभु का इसमें एक अतीव हितकारक प्रयोजन है। ऐसा होने से प्रभु-भक्त अपने बल के अतिरिक्त प्रभु की कृपा, उदारता और महत्ता को समझता है, पश्चात्ताप करना सीखता है, निरभिमानी बनता है, प्रभु से प्रेम और दया की भीख माँगने लगता है और इन सबसे वह साधना के रहस्य को समझने में शक्तिमान् बनता है। भूख और प्यास के कारण ही अन्न-जल की क़ीमत मालूम देती है। रोग पीछे लगने पर ही तन्दुरुस्ती का मज़ा मालूम देता है।

३२—धर्म है साधारण लोगों के लिये और विश्वास—श्रद्धा—है असाधारण लोगों के लिये।

३३—ईश्वराज्ञा का ज्ञान धर्मग्रंथों-द्वारा प्राप्त करना और उसका नित्य-प्रति पाठ करना आवश्यक नित्यकर्म ही नहीं है, किन्तु वह है अपने कर्त्तव्य को खोज निकालना। प्रभु की आज्ञा के ज्ञान ही से धर्म-अधर्म की समझ बढ़ती है, अज्ञान और भ्रान्ति का नाश होता है,

अवगुण और बुरे आचरण दूर होते हैं और सद्गुण तथा सदाचरणों के बढने से पाप मिटते हैं, पुण्य की वृद्धि होती है।

३४—प्रत्येक क्षण प्रभु की कृपा प्राप्त करने और अपने ज्ञान को आचरण में लाने का प्रयत्न करते रहना; कारण, जिस ज्ञान का आचरण नहीं हुआ, वह प्राण-विहीन देह के समान है।

३५—वारवार सावधान रहना—ईश्वरीय-ज्ञान ले-देकर, और अनुष्ठान करके-कराके दुनिया की तुच्छ चीज़ों अथवा धन-धाम की कामना विलकुल मत करना। ईश्वरीय-ज्ञान और अनुष्ठान तुच्छ चीज़ों की प्राप्ति के लिये नहीं; किन्तु अपार अनुपम सच्चिदानन्द प्राप्त करने के लिये हैं।

३६—पैग़म्बर मुहम्मद साहव ने भी कहा है कि जो मनुष्य धार्मिक ज्ञान और अनुष्ठान के द्वारा दुनियावी चीज़ों को खोजता है, उसकी शोभा नष्ट होती है, इज़्ज़त-आवरू घट जाती है और नारकीय जीवों की श्रेणी में उसका नाम लिखा जाता है। और जो मनुष्य सांसारिक-कार्यों के द्वारा भी परलोक ही की साधना करता है, उसे तो लाभ ही लाभ है।

३७—विद्या पाकर भी अन्न-वस्त्र सात्विक रीति ही से पाने के समान उत्तम काम दूसरा नहीं है। खाने की प्रार्थना अथवा अनुष्ठान को प्रभु स्वीकार नहीं करता।

३८—पहनने-ओढ़ने मे सादगी का ख़याल रखना। शौकीनी की पोशाक और आडम्बर से परे ही रहना।

३६—सदा ध्यान में रखना कि ईश्वर की साधना और सेवा में तुम्हारा ही गौरव, तुम्हारी ही उन्नति समाई है।

४०—वैराग्य को सदा सन्मुख रखना। हज़रत मुहम्मद साहव ने भी फ़र्माया है कि जो इन्द्रिय-सेवा और शरीर-पोपण में लगा है, वह मेरे सम्प्रदाय में निकृष्ट कोटि का है।

४१—सदा सत्पुरुषों की संगति में रहना।

४२—साधु होकर भी जो असाधु के दर्शन के लिये जाता है, कनिष्ठ आदमी को श्रेष्ठता देता है अथवा उसकी ख़ुशामद करता है, उस पर ईश्वर अप्रसन्न होकर उसका अपमान करवाता है, उसे कलंकी और दुःखी दरिद्र बनाता है, जिससे उसकी कुवृत्ति प्रबल होती है और वह क्लेश तथा नरकाग्नि में पड़ा रहता है।

४३—सावधान! परस्त्री की ओर दृष्टिपात भी न करना। उस दृष्टि में शैतान का वास है।

४४—शास्त्रीय विधियों को कभी मत छोड़ना।

४५—अपने सहचरों को सदुपदेश देना अपना कर्त्तव्य समझना।

४६—जो स्वच्छन्द आचरण का है, उसकी कभी संगति न करना।

४७—दिवस का पहला व आखिरी प्रहर धर्म-पुस्तकों के पठन व कथा-श्रवण ही में बिताना।

४८—ईश्वरोपासना को परम कर्त्तव्य मानकर उसमें लगे रहना।

४९—धर्म-ग्रन्थ सुननेवाले और प्रभु की प्रीति के लिये सुनानेवाले दोनों पर कृपासिन्धु प्रभु की कृपा-वारि प्राकृतिक नियम के अनुसार अपने आप आकर्षित होती है।

५०—साधना के लिये निर्जनता का आसरा बहुत ही उत्तम है। उस वन के एकान्तवास में भी यदि साधना में लगे रहोगे, तो ही शैतान तुम्हें पाप के गड्ढे में नहीं धकेल सकेगा। ऐसा एकान्त सेवन करने की यदि तुममें सामर्थ्य नहीं है, तो कर्मवीर सत्पुरुष की भाँति कमर बाँधकर निष्काम भाव से लोक-सेवा में जुड़ जाओ।



२७—अब्दुल्ला ख़फ़ीफ़ पारसी

तपस्वी अब्दुल्ला ईश्वर के परम भक्त, पुण्यात्मा थे। वे पारस देश के वासी थे। अपने समय के वे अद्वितीय तपस्वी थे। सभी धर्म-साधक उनसे उपदेश लिया करते थे। चालीस-चालीस दिन में वे धर्म के गूढ़ तत्त्वों पर एक-एक ग्रन्थ लिखा करते थे। दूसरी विद्याओं के सम्बन्ध में भी उन्होंने कई अच्छे ग्रन्थों की रचना की थी। उनके कई ग्रन्थ अब भी प्राप्त हैं। अनेक कष्ट उठाकर भी वे जैसी साधना करते, वैसी साधना दूसरों के लिये तो प्रायः असम्भव ही थी। आध्यात्मिक तत्त्वों में उनकी जैसी सूक्ष्म दृष्टि थी, वैसी सूक्ष्म दृष्टि शायद ही किसी की थी। उनके मरण के बाद वैसा विद्वान् पारस देश में दूसरा हुआ ही नहीं, जिससे उनकी तुलना की जा सके। वे राजवंशीय थे। अनेक देशों का पर्यटन उन्होंने अकेले किया था। वोयेम, जुनैद, मन्सूर आदि तपस्वियों के उन्होंने दर्शन किये थे। बीस वर्ष तक उन्होंने वृक्षों की छाल के कपड़े पहने थे। हर साल वे चार बार 'चेल्ला' (अर्थात् चालीस-चालीस दिन के व्रत) किया करते थे। अपने चालीसवें चेल्ला के आख़िरी दिन वे परलोक-वासी हुये थे।

उनके समय में पारस देश में मुहम्मद जेकर नाम के एक धर्माचार्य थे। वे कभी गुदड़ी नहीं ओढ़ते थे। एक बार उन्होंने अब्दुल्ला ख़फ़ीफ़ से पूछा—फ़क़ीरी गुदड़ी पहनने की क्या रीति-नीति है? किसे वह ओढ़नी चाहिये?

अब्दुल्ला ने उत्तर दिया—जेकर! सफ़ेद कपड़े पर तो उसे पहनते हैं, पर पेड़ों की छाल पर उसे पहनते हैं या नहीं, मुझे मालूम नहीं।

'ख़फ़ीफ़' शब्द का अर्थ है छोटा। तपस्वी अब्दुल्ला क़द में बहुत ओछे थे, इसीलिये उनका नाम ख़फ़ीफ़ पड़ गया था। दिन भर में वे सात ग्रास का आहार करते थे। एक रात को उनके नौकर ने भूल

से उन्हें आठ ग्रास दे दिये, जिसके फल-स्वरूप वे रात सुखपूर्वक ईश्वराराधन में नहीं बिता सके।

दूसरे दिन उन्हें जब आठ ग्रास की बात मालूम हुई, तो उन्होंने नौकर से इसका कारण पूछा।

नौकर बोला—आपके कमज़ोर शरीर को देखकर मुझे बहुत दुःख होता है। आपके शरीर में थोडा बल आये, इसीलिये मैंने ऐसा किया था।

यह सुनकर अब्दुल्ला बोले—तू मेरा हितकारी नौकर होता, तो तू सात के बदले छः ग्रास ही देता। उन्होंने उस नौकर की जगह दूसरा नौकर रख लिया।

ख़फ़ीफ ने कहा है—मेरे यौवन-काल में एक मनुष्य मेरे पास आया। उस समय मैं भूखा था। मुझे भूखा देखकर वह मुझे अपने घर ले गया। मेरे लिये उसने बहुत बढिया खाना पकवाया: पर मुझे उसमें से मांस की गन्ध आती मालूम दी। ग्रास मुँह में रखते ही मैं समझ गया कि उसमें मांस पडा था। मैंने खाना वहीं छोड़ दिया। वह आदमी बहुत लज्जित हुआ। मैं वहीं से दूसरे यात्रियों के साथ मक्का की ओर चल पडा। कादसीया नामक जगह पर हम रास्ता भूल गये और हमें कई दिन तक खाने के लिये कुछ भी नहीं मिला। भूख के मारे जान निकलने की नौबत आ पहुँची। और कोई उपाय न देखकर हमारा एक साथी समीप की एक झोपड़ी से एक कुत्ता ख़रीद लाया। उसका मांस पकाकर खाने के लिये तैयार किया गया। इतने ही में वहाँ वही आदमी आ उपस्थित हुआ, जिसे मैंने मांस का भोजन तैयार कराने के लिये शर्मिन्दा किया था। उसे देखते ही मैंने उस खाने से हाथ खींच लिया। मेरी लज्जा का कोई पार नहीं रहा। मक्का की यात्रा से लौटकर मैंने उस आदमी से अपनी भूल के लिये बारबार क्षमा माँगी।

एक दिन किसी ने मुझे बताया कि मिश्र देश में एक वृद्ध और

एक युवक ध्यान-भजन में मग्न बैठे हैं, वे बड़े त्यागी हैं। मैं उनके दर्शन के लिये गया। जाकर देखा वे मौन बैठे थे। मैंने उन्हें तीन बार सलाम किया; किन्तु मुझे मेरे सलाम का जवाब नहीं मिला।

मैं बोला—ख़ुदा की क़सम, आप मेरा सलाम मंज़ूर करें।

वह युवक सिर हिलाकर बोला—सलाम, ख़फ़ीफ़! सलाम। संसार तुच्छ से भी तुच्छ है; परन्तु तू उस तुच्छ पदार्थ में से उत्तम जीवन प्राप्त कर ले।

इतना कहकर वह फिर मौन होगये। मैं उस समय भूख-प्यास के मारे तरस रहा था, तो भी भूख-प्यास को भूलकर उनके साथ उपासना करने में संलग्न होगया। थोड़ी देर बाद मैंने उनसे उपदेश के लिये विनती की। वे बोले—अब्दुल्ला ख़फ़ीफ़! जल में डूबता हुआ जिस प्रकार संकट से घिर जाता है, ठीक वैसी ही हालत हम सब की है। ऐसे संकट में पड़ा हुआ एक आदमी कुछ कहे यह उचित है क्या? इतना कहकर वह फिर ध्यान में लग गये।

मैं वहाँ तीन दिन व रात बिना खाये-पिये ध्यान में लगा रहा। बाद में मैंने फिर उपदेश के लिये आग्रह किया। युवक बोले—भाई! जिसका दर्शन करने से ईश्वर का स्मरण हो, जिसकी समीपता से तुम्हारे अंतःकरण के दुर्विचार दूर होकर सद्विचार जाग्रत हों और जो तुम्हें जीभ से उपदेश न देकर आचरण के द्वारा उपदेश दे, ऐसे सज्जन की संगति करो। इतना कहकर वह फिर ध्यान-मग्न होगये।

ख़फ़ीफ़ ने आगे जाकर कहा है—जब मैं एक साल रोम शहर में था, एक दिन वहाँ के जङ्गल में गया। वहाँ मैंने एक अग्नि-पूजक धर्माचार्य के शव को जलते देखा। उसकी भस्म हो जाने के बाद मैंने कई लोगों को उस भस्म की वंदना करते देखा। कई अंधों ने वह भस्म आँखों में लगाई, उनको आँखों से दिखाई देने लगा। कई रोगियों ने उस भस्म को मुख में डाला, उनके रोग दूर होगए। मैं

देखकर चकित होगया। मैं सोचने लगा कि दूसरे धर्मों में भी क्या ऐसे अलौकिक चमत्कार होते हैं? उसी रात को मैंने स्वप्न में हज़रत मुहम्मद साहब को देखा। मैंने उनसे पूछा—पूज्य पैग़म्बर साहब, आज आपने दर्शन देने की कृपा क्यों की?

वे बोले—मैं तेरी शंका दूर करने आया हूँ।

मैंने कहा—मैंने यह जो दृश्य देखा, उसका क्या कारण हो सकता है?

उन्होंने बताया—असत्य धर्म में भी श्रद्धा रखनेवाले यदि पवित्रता से साधना करते है, तो उनका जीवन भी चमत्कारी बन जाता है। सोच, जो सत्यधर्म मे रहकर साधना करता है, उसका जीवन तो कितना चमत्कारी हो जाना चाहिए?

दूसरी बार एक रात को मैंने स्वप्न में हज़रत पैग़म्बर साहब को देखा। उन्होंने अपने पैर से मेरे माथे को ठुकराकर मुझे जगाया। जागकर मैं उनकी ओर देखने लगा। वे बोले—जो आदमी सन्मार्ग को जानकर भी उस पर नहीं चलता, वह तो बहुत पिछड़ा हुआ है, प्रभु ऐसे आदमी को बड़ी-कड़ी सज़ा देता है।

ख़फ़ीफ़ एक रात को नौकर को पुकारकर कहने लगे—मुझे विवाह करना है, जा, कोई कन्या ले आ।

नौकर—कन्या कहाँ है? मैं तो किसी को पहचानता भी नहीं। आप हुक्म करें वहाँ से लाऊँ।

अब्दुल्ला—चाहे जहाँ से ला।

उस अँधेरी रात में नौकर कन्या की खोज में निकला। कहीं से एक कन्या लाकर उसने उसे अपने मालिक के सामने हाज़िर किया। तपस्वी ने उस कन्या के साथ शादी करली। समय बीतने पर उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

नौकर ने एक दिन अपने मालिक से आधी रात को कन्या खोज

लाने का कारण पूछा तो उन्होंने बताया—उस रात को मैंने स्वप्न में परलोक का दर्शन किया। वहाँ अनेक आदमी खड़े थे। आगे कोई रास्ता न देखकर वे सब निरुपाय-से हो रहे थे। इतने में अकस्मात् एक बालक वहाँ दौड़ता आया—उसने अपने पिता का हाथ पकड़कर उस दुर्गम मार्ग के पार पहुँचा दिया। यह देखकर मेरे मन में भी इच्छा उत्पन्न हुई थी कि मेरे भी कोई मार्ग-दर्शक पुत्र होना चाहिए। इसलिए मैंने तुम्हें ऐसी आज्ञा दी थी। आज वही इच्छा पूर्ण हुई है।

अब्दुल्ला खफ़ीफ़ धनाढ्य राजवंश में जन्मे थे। उन्होंने चार सौ स्त्रियों से शादी की थी। मंत्री की पुत्री का तो उनके साथ चालीस वर्ष तक वैवाहिक संबंध रहा था।

एक दिन उनकी पत्नियों ने एकचित्त होकर चर्चा की।

एक ने कहा—बहनो, अपने तपस्वी पति का हम सब के साथ कैसा संबंध है?

सभी ने कहा—हमारा उनका कभी लेशमात्र भी सहवास नहीं हुआ। इसके बारे में यदि कोई कुछ जानती है, तो वह है मंत्री की पुत्री।

सब ने मन्त्री की पुत्री से वही बात पूछी तो उसने उत्तर दिया—मेरा भी उनके साथ कभी सहवास नहीं हुआ। मैं केवल इतना जानती हूँ कि एक रात को वे मेरे द्वार पर आए थे। आने-पधारने का समाचार सुनकर मैंने भोजन-सामग्री सजाई, वस्त्रालंकारों से सजकर मैं उनके सामने उपस्थित हुई। बहुत देर तक मेरे मुख की ओर वे एकटक देखते रहे। मैं भी उनके सामने सिर नीचा करके चुपचाप खड़ी रही। उन्होंने मेरा हाथ लेकर उसे अपनी छाती और पेट पर फिराकर अपने शरीर में पड़ी हुई गांठें मुझे दिखाईं। वे गाँठें देखकर मैंने उनसे उनका कारण पूछा।

वे बोले—युवति! ऐसे-ऐसे सुन्दर मुखड़े और सुस्वादु भोजन का

उपभोग न करने के लिए मुझे मन में जो गाँठ बाँधनी पड़ती हैं, वे ही गाठें शरीर पर दिखाई देती हैं। धीरज के फल स्वरूप ये दुःख की ग्रंथियाँ हैं।

इतना कहकर वे तुरंत चले गए। वे दिन-रात कठोर साधना में लगे रहते हैं। उनके साथ वे अदब होना हमें शोभा नहीं देता।

अहमद और अहमद माह नाम के उनके दो शिष्य थे। अहमद के प्रति उन्हें विशेष स्नेह था। दूसरे के मन में यह बात खटकती थी; क्योंकि वह अधिक चतुर और विद्वान् था। उसने भी अनेक प्रकार की साधनायें की थीं। अब्दुल्ला अहमद माह के मन की बात ताड़ गए।

अहमद को बुलाकर उन्होंने कहा—जा, घर के बाहर जो ऊँट बैठा है, उसे सामने की भीत पर खड़ा कर दे।

'बहुत ठीक, आज्ञा के अनुसार करूँगा,' कहकर वह बाहर चला गया और ऊँट को भीत पर चढाने की कोशिश करने लगा

अहमद माह को बुलाकर भी उन्होंने उसे वही आज्ञा दी। वह तर्क करने लगा—गुरुवर, ऊँट भीत पर किस तरह चढ़ेगा?

अब्दुल्ला ने अहमद को वापस बुलाकर दोनों शिष्यों को सुनाकर कहा—अहमद के मन के भाव को मैं समझ गया हूँ। उसने अपने कर्त्तव्य का पालन किया है, आज्ञा-पालन में वह विमुख नहीं हुआ। कार्य की सिद्धि होगी या नहीं, इसका ध्यान रखे बिना वह आज्ञा-पालन में जुट गया था। अहमद माह तो मेरी आज्ञा को शंका से देखता है, उसने मेरी अवज्ञा की है, उसके बाहरी आचरण से उसके मन का भाव साफ़ ज़ाहिर होता है।

एक दिन एक आदमी सिर से पैर तक काले कपड़े पहनकर उनके पास आया और उनका अतिथि बनकर रहा। उनके काले कपड़े देखकर अब्दुल्ला तनिक नाराज़ हुए। उन्होंने पूछा—भाई, तुम काले कपड़े क्यों पहने हो?

अतिथि ने उत्तर दिया—मेरे काम-क्रोधादि बंधुओं की मृत्यु हुई है, उसी के ग़म में मैंने ये काले कपड़े पहने हैं।

यह सुनकर अब्दुल्ला ने उस अतिथि को घर से बाहर निकाल देने का अपने नौकर को हुक्म दिया।

नौकर ने आज्ञा का पालन किया।

थोड़ी देर बाद उन्होंने उस अतिथि को वापस बुलाया। इस प्रकार सत्तर बार उन्होंने उसको बुलाया और निकलवाया, तो भी उसके चेहरे पर हर्ष और विषाद का कोई चिह्न दिखाई नहीं दिया, उसकी मुख-मुद्रा प्रसन्न ही बनी रही।

तपस्वी अब्दुल्ला ने आख़िर आगे बढ़कर अपने अतिथि का माथा सूँघा और उससे क्षमा माँगते हुए कहा—आप ज़रूर काबे पहनने के लायक़ हैं; कारण, सत्तर बार अपमानित होने पर भी आपका मनोभाव नहीं बदला।

९—एक दिन दो सूफ़ी अब्दुल्ला ख़फ़ीफ़ के दर्शन करने के लिए दूर देश से आए। जिस समय वे आए, अब्दुल्ला अपनी कुटिया में नहीं थे। पूछने पर मालूम हुआ कि वे पादशाह आसदद्दौला के यहाँ गए हुए हैं। दोनों सूफ़ी आपस में चर्चा करने लगे कि जो निष्काम तपस्वी है उसे राजा से सरोकार? इस विचार से उनके मनमें तपस्वी अब्दुल्ला के प्रति थोड़ी अश्रद्धा उपजी। वे शहर में घूमने के लिए चले गए। बाज़ार में जाने पर उनमें एक अपनी फटी कफ़नी सिलवाने के लिए दरजी के पास गया। संयोगवश उसी समय उस दरजी की अँगूठी गिरकर खोगई और उसने उसका चोर उन दोनों सूफ़ियों को समझा। अँगूठी का चोर ठहराकर दरजी उन दोनों सूफ़ियों को आसदद्दौला की अदालत में ले गया। अदालत के अधिकारी ने दोनों के हाथ काटने का हुक्म फ़र्माया। उसी समय ख़फ़ीफ़ उधर से निकले और उन्होंने दोनों सूफ़ियों को यह कहकर मुक्त करवा दिया कि उनका कोई क़ुसूर

नहीं है। ख़फ़ीफ़ दोनों को इज़्ज़त के साथ अपनी झोपड़ी में ले चले और रास्ते में उनसे बोले—आप जो विचार करते थे वह सच है, परन्तु ऐसे प्रसंगों पर अन्याय न हो जाय इसीलिए मैं राज-दरबार में जाया करता हूँ।

यह सुनकर दोनों सूफ़ी शर्मा गए और सदा के लिए उनके शिष्य बन गए।

एक दिन एक अतिथि उनके घर आया। रात को उसे क़य होने लगी, बार-बार क़य होने से वह बहुत ही कमज़ोर होगया। रातभर अब्दुल्ला ख़ुद उसकी क़य साफ़ करते रहे। पचास बार उन्होंने क़य साफ़ की होगी, पर बाद में उन्हें नींद आगई। अतिथि को फिर क़य होने लगी, तो उसने चिल्लाकर कहा—अरे, मूर्ख! कहाँ चल दिया? आ जल्दी आ!

पुकार सुनकर अब्दुल्ला नींद से चौंककर झटपट बर्त्तन हाथ में लेकर उसकी ओर दौड़े। इसपर उनके शिष्यों ने पूछा—गुरुवर! ऐसी कड़वी बातें बोलनेवाले का भी आप इतना सत्कार करते हैं? बड़े अचरज की बात है कि ऐसे बेहूदे शब्द सुनकर भी आप धीरज रखते हैं!

"शांत रहो। मैंने भी उसकी बोली सुनी है, पर इससे क्या हुआ? हमें अपना कर्त्तव्य करते रहना चाहिए, उसका स्वभाव चाहे जैसा क्यों न हो"—तपस्वी ने उत्तर दिया।

मरते समय उन्होंने अपने नौकर से कहा था—मरने के बाद मेरे शव को एक अपराधी के शव की तरह गले मे फाँसी बाँधकर लटका देना तथा दोनों हाथ व पैर बाँधकर मेरा मुँह मक्का की ओर कर देना। ऐसा करने से शायद ख़ुदा मुझे मंज़ूर कर ले।

मृत्यु के उपरांत नौकर उनकी आज्ञा का पालन करने के लिए तत्पर हुआ; पर इतने ही में आकाशवाणी हुई—अरे मूर्ख! ऐसा मत कर। मेरे प्रेमास्पद भक्त को अपमानित न कर।

उपदेश-वचन

१—एक सूफ़ी ने कहा था—मैं शैतान की लुचाई देखकर बहुत दुःखी हुआ हूँ। उस सूफ़ी ने ऐसे बहुत सूफ़ी देखे थे, जिन्होंने शैतान को अपने क़ाबू में कर लिया था। पर अब तो शैतान ने सूफ़ियों पर क़ब्ज़ा कर रखा है, उन्हें कनक, कामिनी, देह, विद्या व पद के अभिमान तथा बाहरी फ़क़ीरी बाने के वश में कर रखा है।

२—जो मनुष्य पुण्य का कपड़ा पहनता है और प्रलोभन के रूप में आए हुए शैतान को निग्रह का भोजन खिलाकर उसे उसके घर लौटा देता है, वही सच्चा सूफ़ी है।

३—दुनियावी कामनाएँ अनन्त दुःखों के कारणरूप व शांति का नाश करनेवाली हैं।

४—सब बातों को छोड़कर अपने एकमात्र परममित्र परमात्मा में लीन होना योग की ऊँची अवस्था है।

५—जो चीज़ें तुम्हें ईश्वर से दूर रखती हैं, उनसे तुम ख़ुद दूर रहो, यही निवृत्ति है।

६—जो तुम्हारे पास नहीं, उसे पाने के लिए और जो तुम्हारे पास है उसे देने में उदार व निष्काम होना ही सच्चा धैर्य है।

७—सांसारिक सम्पत्ति छोड़कर परमात्मा में समाई हुई सच्ची शांति पाना ही सच्चा वैराग्य है।

८—अध्यात्म-ज्ञान की प्राप्ति करना ही सच्चा विलास है। सद्गुणों की प्राप्ति व सांसारिक पदार्थों के त्याग में उत्साह रखना ही उच्चतम योग्यता है।

९—जब मनुष्य अपने सब कार्य ईश्वर को अर्पण कर देता है और विपत्ति में धैर्य धारण करता है, तभी प्रभु के प्रति उसका फ़र्ज़ अदा होता है और उसे प्रभु के दरबार में स्थान व सत्कार मिलता है।

२८—मुहम्मदअली हकीम तरमोज़ी

तपस्वी मुहम्मदअली हकीम महान् साधु, अत्यंत क्षमाशील व शांत-स्वभाव थे। अपने जीवन में उन्होंने अनेक कठोर साधनायें की थीं। वे तरमोज़ नामक स्थान के रहनेवाले थे। वे जैसे साधु-प्रकृति थे वैसे ही गुणी व ज्ञानी भी थे। तरमोज़ के रहनेवाले बहुत-से आदमी उनके अनुयायी थे। अनेक विद्याओं, विशेषतः तत्त्व-विद्या में वे पारंगत थे। उनके रचे हुए कई ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध हैं। उनके उपदेशों के मर्म को समझनेवाले लोग उन दिनों तरमोज़ में नहीं थे। अबुतोराब इयहा आदि अनेक तपस्वियों की संगति का उन्होंने लाभ उठाया था।

मुहम्मदअली बचपन में दो बालकों के साथ पढने के लिए परदेश जाने को तैयार हुए। यह देखकर उनकी माता ने कहा—बेटा! मैं वृद्धी और निराधार हूँ। तू मुझ अंधी का सहारा है। मुझे किसे सौंपकर बाहर जायगा?

माता के ये वचन सुनकर मुहम्मदअली का अंतःकरण पिघल गया। वह परदेश जाने से रुक गये, पर उनके वे दोनों साथी चले गए। इस घटना के पाँच मास बाद एक दिन वे क़ब्रिस्तान में अकेले बैठे रो रहे थे और विचार रहे थे कि इस गाँव में अकेला बिना काम बैठा हूँ, मेरे मित्र तो विद्वान् हो जायँगे और मैं तो मूर्ख ही बना रहूँगा।

इतने में एक तेजस्वी वृद्ध पुरुष वहाँ आये और उन्होंने पूछा—बालक, क्यों रो रहा है?

उन्होंने अपनी हक़ीक़त कह सुनाई।

वृद्ध—तू रोज़ मेरे पास यहाँ पढने आएगा? मैं जल्द ही तुझे तेरे मित्रों से अधिक विद्वान् बना दूँगा।

मुहम्मदअली ने पढना मंज़ूर कर लिया। तीन वर्ष तक रोज़

वे उस वृद्ध के पास पढ़ने के लिये गये। वृद्ध ने उन्हें अनेक गूढ़ विषयों की शिक्षा दी। कहते हैं, वह वृद्ध पुरुष धर्मगुरु वेजर थे। मुहम्मदअली अपने उस महान् लाभ की प्राप्ति का कारण अपनी माता की कृपा ही मानते थे। उनका कहना था—मैंने अपनी प्रकृति को वश में करने के लिये अनेक उपाय किये; पर सफलता न मिलने के कारण मैं निराश होगया। मैंने विचार किया कि ईश्वर ने मेरा निर्माण नरक ही के लिये किया है। अगर ऐसा ही है तो फिर इस नारकीय शरीर का पालन-पोषण क्यों किया जाय? मन में ऐसा विचार आने पर मैं जयहू नदी के किनारे गया। अपने एक मित्र से मैंने अपने हाथ पैर बँधवा लिये। अपनी छाती पर बोझा रखकर मैं नदी में कूद पड़ा। मैं सोचता था कि अभी डूब मरूँगा; किन्तु प्रवाह में पड़ते ही मेरे हाथ-पाँव खुल गये और मैं किनारे पर आ लगा। जान देने का मेरा प्रयत्न असफल हुआ; पर मेरे मन में एक गूढ़ रहस्य का भेद प्रकट होगया।

उनके रहने के लिये सिर्फ़ एक झोपड़ी थी। मक्का से लौटकर उन्होंने देखा, उस झोपड़ी में एक कुतिया ने बच्चे दिये हैं। कुतिया और उसके बच्चों पर दया करके उन्होंने उन्हें झोपड़ी के बाहर नहीं निकाला। खुद बाहर रहकर इस बात की चौकसी रखने लगे कि उन्हें कोई तकलीफ़ न हो। उनके प्रति एक फ़क़ीर के मन में बहुत तिरस्कार का भाव था; किन्तु पशुओं के प्रति उनके ऐसे प्रत्यक्ष सद्भाव को देखकर वह अपने आप को धिक्कारने लगा और मुहम्मदअली की सेवा करने लगा।

किसी ने उनके परिवारवालों से पूछा कि तपस्वी मुहम्मद कभी क्रोध भी करते हैं क्या? उसे उत्तर मिला कि जब कभी उन्हें क्लेश पहुँचाया जाता है, तो क्रोध करने के बजाय वे अधिक स्नेह दिखाते हैं। कुछ खाते नहीं और रोकर कहते हैं—हे प्रभु! मैंने तुझे

कौन-सी पीड़ा पहुँचाई है जो तू इन लोगों को मुझे पीडित करने के लिये प्रेरित करता है ?

एक दिन शुक्रवार को वे साफ़ कपड़े पहनकर मसजिद की ओर जा रहे थे। अचानक ऊपर से किसी नौकरानी ने बच्चे का मैला उनके ऊपर डाल दिया। उनका सारा बदन गंदा होगया, तो भी उनके चेहरे पर क्रोध का कोई भाव दिखाई नहीं दिया।

वे बहुत ख़ूबसूरत थे। जवानी में एक धनवान सुन्दरी युवती काम-वासना से उनके पास आई। उसने अपनी मन्शा उन्हें कह सुनाई; पर उन्होंने उसे ऐसी बात के लिये साफ़ इन्कार कर दिया। कुछ दिन बाद वे एक दिन बग़ीचे में बैठे थे। वही युवती सजधजकर वहाँ आई। मुहम्मदअली उसे देखते ही वहाँ से चल दिये। युवती ने उनके पीछे दौड़कर कहा—बिना किसी क़ुसूर के मेरी जान क्यों ले रहे हो? उसके शब्दों को सुने बिना ही वे दीवार फांदकर भाग गये। बुढ़ापा आने पर उन्होंने उस पुरानी बात को याद करके विचार किया कि मैं उस दिन उस जवान औरत की मन्शा पूरी कर देता तो क्या हर्ज़ था? पीछे पश्चात्ताप करके प्रायश्चित्त कर लेता। ऐसा विचार मन में आते ही उनकी घृणा का पार न रहा और अपने मन से उन्होंने कहा—अरे दुराचारी पापी मन! जवानी में जिस भाव को तू दबाये रहा, वही भाव इस बुढ़ापे में यों उठ रहा है। तू कितना दुष्ट है! इसी बात को लेकर वे तीन दिन तक बिना खाये-पिए रोते रहे।

उपदेश-वचन

१—जबतक एक भी पैसा देना रह जाता है, तबतक मनुष्य कर्ज़ से छुटकारा नहीं पाता। उसी प्रकार जबतक मनुष्य में एक पैसे भर भी घमण्ड, ममता और दुनियावी विचार बाक़ी रहते हैं, तबतक वह इस दुनिया से छुटकारा नहीं पा सकता। जिसे इस दुनिया से छुटकारा पाना है, उसे इस दुनिया के हरएक बन्धन से छूटना चाहिये।

जो सब तरह से अनन्यभाव से प्रभु के शरण होता है, उसी को प्रभु कृपा करके अपनी ओर खींच लेता है।

२—उन्नत कौन ? जिसे पाप नहीं दबा सकता।

मुक्त कौन ? दुनिया के लोभ जिसे वश में नहीं कर सकते।

मर्द कौन ? शैतान जिसे क़ैद नहीं कर सकता।

ज्ञानी कौन ? जो ईश्वर-प्राप्ति के लिये सर्वभाव से एकनिष्ठ बन सकता है।

३—जो मनुष्य से डरता है वह मनुष्य ही को ख़ुश करने की कोशिश करता है; पर जो ईश्वर से डरता, है वह ईश्वर की ओर ही आगे बढ़ता है।

४—जिसका लक्ष्य धर्म है, उसके दुनिया के हरएक काम भी उस लक्ष्य के अनुसार धर्मरूप बनते हैं; किन्तु जिसका लक्ष्य ही यह संसार है उसके तो धर्म के कार्य भी अधर्मरूप ही होंगे।

५—जो वैरागी नहीं है तो भी ज्ञान की बात करता है, उससे बड़ा नास्तिक, ठग और पाखण्डी कोई नहीं।

६—जो अपने आपको जानना-पहचानना चाहता है, वह ज़रूर सफल होता है। किन्तु जो अपने आप ही को नहीं जानना चाहता, वह ईश्वर को तो कैसे जान सकेगा ?

७—धर्म-विरोधी लोगों से दोस्ती रखना और अपने आप को किसी काम का करनेवाला मानना, दोनों धर्म के मार्ग में हानिकारक हैं।

८—क्षण-मात्र में शैतान मनुष्यों का जितना अनिष्ट कर सकता सकता है, उतना अनिष्ट एक शेर भेड़ों के एक झुण्ड पर टूट कर नहीं कर सकता।

९—भक्त जब प्रभु का सर्वभाव से आश्रय लेता है, तभी परमेश्वर उसकी रक्षा, योग-क्षेम अपने हाथ में लेता है।

१०—जिससे तुम्हारा कुछ भी छिपा नहीं और जिसके पास किसी

बात का टोटा नहीं उसी का स्मरण करने में तुम्हारी बुद्धिमानी है और यही तुम्हारा कर्त्तव्य है।

११—जिसकी करुणा से कोई वंचित नहीं रहता, उसके प्रति कृतज्ञ होना ही तुम्हारा मुख्य कर्त्तव्य है। जिसके राज्य के बाहर तुम एक कदम भी नहीं रख सकते उसके और उसकी संतान के प्रति तो तुम्हें नम्र होना ही चाहिये।

१२—जिसकी नज़र में जन्म और मरण समान हैं, वही सच्चा साधु है।

१३—जो उत्तम साधना, धर्म-नीति का पालन और अपने चरित्र को पवित्र करेगा, उसी के हृदय में ईश्वर की करुणा प्रकटेगी, उसका हृदय विशाल होगा, जीवन अद्वैत-ज्ञान से पूर्ण विकास पायेगा और वही सच्चा सुखी बनेगा। ऐसा बनकर वह अकेला रहना छोड़ देगा, वक्ता बनेगा, धर्म का प्रचार करेगा और लोग भी उसके ज्ञान और कथन में श्रद्धा करेंगे।

२६—तपस्वी अब्दुल्ला

तपस्वी अब्दुल्ला मुबारक के पुत्र थे। लोग उन्हें विद्वानों का शाहन्शाह मानते थे। उन्होंने कई ग्रंथों की रचना की थी। जैसे वे विद्वान् थे वैसे ही वीर भी थे। धर्म-युद्धों में उन्होंने कई बार नास्तिकों को हराया था। उनका पहले का निवास-स्थान मरभ में था और वहाँ वे सबके प्रिय बने हुये थे।

पहले वे एक ख़ूबसूरत स्त्री पर बहुत ही आसक्त होगये थे। उस आसक्ति में उनके धैर्य और ज्ञान का लोप होगया। सरदी की रात थी। वे अपनी प्रियतमा से मिलने चले। उसके घर के आगे पहुँचकर वे उसके बाहर निकलने की प्रतीक्षा करने लगे। सारी रात बरफ़ पड़ती

रही। उस स्त्री को नींद आरही थी, वह घर के बाहर निकली ही नहीं। अब्दुल्ला की मन्शा पूरी नहीं हो पाई। सवेरे की बाँग सुनकर वे समझे कि यह तो पहली रात की नमाज़ की आवाज़ है; किन्तु थोड़ी देर में चारों तरफ़ रोशनी फैलने से उनका भ्रम दूर हुआ। एक स्त्री की राह देखते सारी रात विता देने की बात पर अपने आप को धिक्कार कर वे बोले—हज़ार बार शर्म। मैं मुबारक का बेटा, मेरी यह हालत? ऐसी रात मैंने तुच्छ इन्द्रियों के सुख की मन्शा से यों विता दी? अगर मैं नमाज़ पढ़ने के लिये खड़ा हुआ होता तो क़ुरान का बहुत-सा हिस्सा मैंने पढ़ लिया होता। कितना पुण्य हुआ होता?

उनके मन में पश्चात्ताप की आग धधकने लगी। फिर कभी इस प्रकार इन्द्रियों के वश में न होने और धर्म-साधना में रत रहने की उन्होंने प्रतिज्ञा की। अपनी तपस्या से उन्होंने अलौकिक उन्नत जीवन प्राप्त किया। साधना के बाद वे मरभ छोड़कर बग़दाद गये, वहाँ सत्संगति करके वे मक्का गये। मक्का से मरभ लौटे और फिर हिजाज़ में जाकर बस गये। मरभ के रहनेवाले उनसे बहुत स्नेह रखते थे। वे दो पंथों में बँटे हुये थे। एक पंथ व्यवहार-शास्त्र को और दूसरा 'हदीस' अर्थात् ऐतिहासिक-शास्त्र को मानकर उसका प्रचार करता था। दोनों ही पंथों में आपस में सद्भाव था और दोनों की देख-रेख अब्दुल्ला रखते थे। मरभ शहर में इन दोनों सम्प्रदायों के लिये उन्होंने दो सरायें बनवा दी थीं।

वे लगातार एक वर्ष तक मक्का में रहे थे। उसके बाद उन्होंने एक वर्ष धर्म-युद्ध में और एक वर्ष व्यापार में विताया। व्यापार में जो लाभ होता था, उसे वे सब को बाँट देते थे। ग़रीब फ़क़ीरों को खजूर खिलाते और जो खजूर नहीं खाते उन्हें नक़द ख़ैरात देते।

एक बार एक दुराचारी उनके साथ होगया। जब वह दुराचारी उनका साथ छोड़कर जाने लगा तो वे रोने लगे। लोगों के पूछने पर

उन्होंने इसका कारण बतलाया—यह कमनसीब जैसा आया, वैसा ही चला जा रहा है। इसकी आदतों में मैं कोई सुधार नहीं कर सकता इसी के दुःख से मुझे रोना पड़ रहा है।

एक बार अब्दुल्ला ऊँट पर चढ़कर जङ्गल में होकर जा रहे थे। रास्ते में एक फ़क़ीर उनके साथ होगया। वे बोले—साँई बाबा ! हम दोनों को एक ही जगह जाना है, ऐसा मालूम देता है। मुझे तो निमंत्रण मिला हुआ है, पर तुम्हें भी मिला है क्या ?

फ़क़ीर—न्यौता देनेवाला बहुत दयावान है, बिना न्यौते पहुँचने वालों का वह ज़्यादा सत्कार करेगा।

अब्दुल्ला—मैं तो धनवान हूँ। न्यौता देनेवाले को मुझ से कुछ पाने की आशा है।

फ़क़ीर—तब तो वह रकम मेरे ही काम आयेगी।

उत्तर सुनकर तपस्वी अब्दुल्ला शर्मा गए।

तपस्वी अब्दुल्ला के मन में किसी चीज़ का मोह न था। एक जगह वे घोड़े के नीचे उतरकर नमाज़ पढने लगे। घोडा छूटकर आसपास के खेत ख़राब करने लगा। उन्होंने उस घोड़े का त्याग करके पैदल मुसाफिरी करना ही ठीक समझा। एक बार वे शाम देश गए। भूल से किसी की कलम उनके साथ आगई। उसे लौटाने के लिए वे ख़ुद अरब से शाम देश गए।

एक बार अब्दुल्ला मक्का में काबा के पास सोये थे। नींद में उन्हें स्वप्न दिखाई दिया कि दो फ़रिश्ते आपस में इस तरह बात कर रहे हैं—

इस साल कितने यात्री मक्का में आए ?

छः लाख।

प्रभु ने कितने जनों की यात्रा ग्रहण की ?

एक की भी नहीं।

अब्दुल्ला इस बात को सुनकर बड़े दुःखी हुए। उन्होंने विचारा कि दुनिया के कोने-कोने से इतने यात्री अनेक दुःख उठाकर यहाँ आते हैं; कोई पर्वत लाँघकर आता है तो कोई समुद्र पार करके, तो भी उनकी सारी मेहनत फ़ज़ूल जाती है ?

इतने में एक फ़रिश्ता बोला कि दमस्क शहर में एक चमार रहता है, उसका नाम है अलीमोफक। वह कभी मक्का नहीं आया तो भी उसे तीर्थ-यात्रा का फल प्राप्त है।

यह सुनकर तपस्वी अब्दुल्ला उसकी तलाश में दमस्क गए। ढूँढते-ढूँढते अलीमोफक का घर मिला। अब्दुल्ला ने उसे अपने स्वप्न का हाल सुनाया और अपना नाम बताया तो उसे सुनते ही वह बेहोश होगया। होश आने पर उन्होंने उससे इस अद्भुत घटना का कारण पूछा। मोफक ने बतलाया तीस वर्ष से हज करने की मेरी मन्शा चली आ रही है, मैं उसके लिए धन भी जुडा रहा था। इस साल मैं हज के लिए तैयार हुआ; किन्तु इन दिनों मेरी स्त्री सगर्भा है। एक दिन पडोसी के घर से छौंक की गंध आई तो मेरी स्त्री ने मुझे छौंक की वह तरकारी ला देने को ताकीद की। उसकी मन्शा को देखकर मैं पडोसी के यहाँ गया, तो मालूम हुआ कि छः दिन से उस घर के बाल-बच्चे भूखे हैं और आज उन्हें एक मरा जीव मिला है। उसी को पकाकर खाने की तैयारी कर रहे हैं। पड़ोसी की यह हालत देखकर मैं बड़ा दुःखी हुआ। मेरे पास जितनी रकम हज के लिए जुटी थी, उसे लाकर मैंने पड़ोसी को उसके बाल-बच्चों के अन्न-वस्त्र के लिए सौंप दी। मेरे मन ने उसी को तीर्थ-यात्रा करके मान लिया।

उसकी बात सुनकर अब्दुल्ला अपने स्वप्न की सचाई को जान गए।

तपस्वी अब्दुल्ला का एक ग़ुलाम था। एक दिन किसी ने उनसे शिकायत की कि वह ग़ुलाम रोज़ रात को क़ब्रिस्तान में जाकर कब्र

खोदकर कपड़े चुरा लाता है। अब्दुल्ला इस बात की तलाश करने के लिए एक रात को चुपके से क़ब्रिस्तान में पहुँचे। ग़ुलाम ने वहाँ पहुँचकर एक कब्र को खोला और उसके पास बैठकर प्रार्थना करने लगा। अब्दुल्ला दूर से यह सब देखते रहे। ग़ुलाम फकीरी पोशाक पहने था। धरती पर माथा टेककर वह आर्त्तनाद करता हुआ प्रभु की प्रार्थना कर रहा था। यह दृश्य देखकर अब्दुल्ला चकित होगए। धीरे-धीरे वे वापस लौटे और आँखों में आँसू भरकर मैदान मे जा बैठे। रात भर वह ग़ुलाम उसी तरह प्रार्थना करता रहा। सवेरा होने पर कब्र को फिर मूँदकर वह पास की मस्जिद मे नमाज़ पढ़ने गया। ग़ुलाम की ऐसी भक्ति देखकर अब्दुल्ला विह्वल होगए। ग़ुलाम को छाती से लगाकर वे बोले—तेरे जैसे ग़ुलाम पर मेरे जैसे मालिक के सैकड़ों जीवन न्योछावर हैं। अगर तू मालिक होता, तो मै ख़ुशी-ख़ुशी तेरा ग़ुलाम होता।

ग़ुलाम यह सुनकर बोल उठा—हे प्रभो! अब मुझे इस दुनिया मे शांति नहीं। तेरी कसम, मुझे अब ज़्यादा दुःखी मत कर। मुझे इस दुनिया से जल्दी उठा ले।

कहा जाता है कि अब्दुल्ला की छाती मे माथा टेके-टेके ही उस ग़ुलाम का प्राण छूट गया। उसी वेश मे अब्दुल्ला ने उसे दफनाया।

गहरी सरदी के दिनों एक बार अब्दुल्ला नेशापुर के बाज़ार मे गए। वहाँ किसी का एक नौकर नाममात्र का एक कपड़ा ओढ़े काँप रहा था। उन्होंने उससे कहा कि तू अपने मालिक से मोटा कपड़ा क्यों नहीं माँगता?

नौकर बोला—मैं उससे क्यों कहूँ? वह तो ख़ुद देखता है और जानता है।

अब्दुल्ला यह उत्तर सुनकर आनन्द में विह्वल होगए और बोले—इस नौकर का यह धर्मबोध!

एक बार वे किसी विपत्ति में आ पड़े। बहुत-से लोग सहानुभूति दिखाने को आए। उनमें एक अग्निपूजक भी आया। वह बोला—विपत्ति में पड़ने पर जो मूर्ख होता है, वह भी तीसरे दिन उपाय कर लेता है; किन्तु समझदार तो पहले दिन ही उपाय खोज लेता है।

इस ज्ञान की बात को सुनकर उन्होंने उसे अपने हृदय में लिख लिया।

एक मनुष्य अब्दुल्ला के पास उपदेश लेने आया। उन्होंने उससे कहा—हमेशा ईश्वर की तरफ़ नज़र रख।

उसने इसका मतलब समझाने को कहा तो उन्होंने बतलाया—हमेशा इस तरह रह कि ईश्वर को देख सके।

वह मनुष्य उपदेश लेकर घर लौट गया। वहाँ जाकर उसने अपनी सारी दौलत ग़रीबों को बाँट दी। रही-सही दौलत एक दिन अतिथि-सत्कार में समाप्त कर दी। उसकी पत्नी उसकी इस बात को लेकर घर में सदा कलह करती रहती। उसने स्त्री को भी त्याग दिया।

दैवयोग से एक दिन एक धनवान की बेटी उसका उपदेश सुनकर उसपर मुग्ध होगई। उसने अपने पिता से उससे शादी करने की अपनी मन्शा ज़ाहिर की। उस धनवान ने पचास हज़ार मुद्रा के साथ अपनी बेटी उसे ब्याह दी। उसे स्वप्न में सुनाई दिया—मेरे लिये तूने एक स्त्री का त्याग कर दिया, तो मैंने उसके बदले में धन-दौलत के साथ तुझे यह दूसरी स्त्री दे दी है। विश्वास रख, मेरे लिए त्याग करनेवाला कभी घाटे में नहीं रहेगा।

तपस्वी अब्दुल्ला ने भी मरते समय अपनी सारी दौलत ग़रीबों को बाँट दी थी। उनके शिष्यों ने उन्हें उनकी तीन बेटियों की याद दिलाकर उनका कुछ इन्तज़ाम कर जाने की प्रार्थना की।

साधु की गति तो ईश्वर है। यह क़ुरान का वचन सुनाकर वे

बोले—अब्दुल्ला, किसी का भाग्यविधाता बने, उससे तो प्रभु ही भाग्यविधाता बने यह उत्तम है।

प्राण छूटने के समय आँखें मूँदकर, एक-दो धर्म के वचन सुनाकर वे हँसते-हँसते इस लोक से विदा होगए।

उपदेश-वचन

१—जो मनुष्य भक्ति रूपी महाभोजन का स्वाद नहीं लेता, उसमें आंतरिक आस्वाद लेने की शक्ति कभी नहीं होती।

२—लोगों की नज़र में जिसका दरजा ऊँचा होगया है, समझ लो वह बहुत ही हलका मनुष्य है।

३—दुनिया में भिखारी तो बहुत देखे; परन्तु ईश्वर के भिखारी कैसे होते हैं? जो प्रभु के आँगन में भीख माँगने पहुँच सका हो, वही बता सकता है।

३०—अबु हाफ़िज़ ख़ुरासानी

तपस्वी अबु हाफ़िज़ भजन-साधन, उत्साह और सरलता में सबसे बढ़े-चढ़े थे। वे सत्यपरायण, प्रेमोन्मत्त और आनन्दी स्वभाव के थे। वे अबु उस्मान हयरी के शिष्य थे। तपस्वी शाहशुजा किरमान से उनके दर्शन करने के लिए बग़दाद तक गए थे। अबु हाफ़िज़ ख़ुरासान के निवासी थे।

पहले उनका चरित्र बहुत ही ख़राब था। एक बार एक जवान स्त्री पर मोहित होकर उन्होंने उसे अनेक उपायों से वश में करने की कोशिश की; पर सफल नहीं हुए। वे उस स्त्री के पीछे पागल-से होगए।

किसी ने उन्हें सलाह दी कि नेशापुर में एक यहूदी जादूगर है। वह किसी जादू टोने से उनका मतलब पूरा कर देगा। अबु हाफ़िज़ ने

उसके पास जाकर अपना सारा हाल सुनाया। यहूदी ने उन्हें समझाया कि अगर वे चालीस दिन तक कोई भी धर्म का काम नहीं करेंगे, उपवास नहीं करेंगे, मन में किसी भी प्रकार का अच्छा विचार नहीं आने देंगे तो अपने जादू टोने से वह किसी तरह उस युवती को वश में कर देगा।

यहूदी के कहे मुताबिक़ चालीस दिन बिताकर वे उसके पास गए। यहूदी ने जादू टोना शुरू किया, पर उसका कोई नतीजा नहीं निकला। यह देखकर यहूदी ने कहा कि चालीस दिन में उसने ज़रूर कोई न कोई भला काम किया है या भलाई का कोई बात मन में उठी है और उसी से उसके जादू टोने का असर नहीं होरहा है।

अबु हाफ़िज़ ने बतलाया कि इन चालीस दिनों में उन्होंने कोई भला काम नहीं किया। हाँ, एक दिन रास्ते चलते उन्हें एक पत्थर की ठोकर लगी थी। किसी दूसरे को चोट न लग जाय इस मतलब से उन्होंने उसे उठाकर एक ओर फेंक दिया था।

यहूदी ने उन्हें समझाया यही उसकी असफलता का कारण है। चालीस दिन तक ईश्वर की हुक्म-उदूली करते रहने पर भी उसने कितनी मेहरबानी की है। एक छोटे-से भले काम के कारण उसने उन्हें इतने बड़े पाप से बचा लिया है। उस प्रभु का विरोध और नहीं करना चाहिए।

यहूदी की इन बातों से अबु हाफ़िज़ के मन में पश्चात्ताप की ज्वाला धधकने लगी। आगे से कोई बुरा काम न करने का पक्का इरादा करके वे भलाई के रास्ते चलने लगे। वे लोहार थे। अपने काम से उन्हें क़रीब तीन रुपए रोज़ की आमदनी थी, जिसे वे दीन-दुःखियों को बाँट देते अथवा बिना माँगे किसी अनाथ के घर में चुपचाप रुपया दो रुपया फेंक आते, जिससे दान पानेवाले की किसी प्रकार बेइज़्ज़ती न होने पाये। रोज़ शाम को नमाज़ के बाद वे थोड़ा खाना खाते और सादगी से जीवन बिताते।